सुधर्म जैन संस्कृति-रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का २२ वां रत्न

समर्थ-समाधान

भाग १

सम्पादक

रतनलाल डोशी

संग्राहक

श्रीमान् सेठ किशनलाल जी
पृथ्वीराजजी गणेशमल जी मालू, खीचन

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म
जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा - नेहरू गेट बाहर, ब्यावर

द्रव्य सहायक

श्री डागा चेरिटेबल ट्रस्ट, जोधपुर

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, शाखा-ब्यावर
२ श्री जैन ज्ञान श्रावक संघ, सिटी पुलिस, जोधपुर
३. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन
पो बॉ नं २२१७ बम्बई-२
४. श्रीमान् भंवरलालजी बांठिया नं ९ पुलियान तोप हाईरोड, मद्रास-१२
५. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन ६७ बालाजीपेठ, जलगांव-१
६. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट,
दिल्ली-६ ✆ : ३२३३५२१
७. श्रीमान् सन्तोषचन्द जी जैन, रामपुरा बाजार, कोटा (राज)
८ श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट,
अहमदाबाद-२२ ✆ · ५३२१२३४
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भ० महावीर मार्ग, बुलडाणा-४४३००१
१०. श्री श्रुत ज्ञान स्वाध्याय प्रचार समिति सागानेरी गेट, भीलवाड़ा

मूल्य: १०-००

चतुर्थ आवृत्ति
२०००

वीर संवत् २५२३
विक्रम संवत् २०५४
अप्रेल सन् १९९८

मुद्रक : स्वस्तिक ऑफसेट प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

प्रथम आवृत्ति में प्रकाशित-

संग्राहक का निवेदन

बहुश्रुत पूज्य श्री १००८ श्री समर्थमल जी म. सा. हमारे समाज में एक आदर्श संत हैं। आपका ज्ञान, दर्शन और चारित्र अद्वितीय है। आपकी सैद्धान्तिक दृष्टि इतनी विकसित है कि जिसकी जोड़ कहीं दिखाई नहीं देती। आपकी आगम साधना इतनी गहरी है कि बड़े-बड़े संत और आचार्य तक आपसे सैद्धान्तिक प्रश्न पूछ कर जानकारी प्राप्त करते, परामर्श लेते और संतुष्ट होते रहे।

हमारे क्षेत्र खीचन का यह सौभाग्य ही था कि गुरुवर्य पूज्यश्री रत्नचन्द्रजी म. सा. की रुग्णावस्था और बाद में तपस्वीराज श्री सिरेमल जी म. सा. की वृद्धावस्था के कारण लगभग ३४ वर्ष तक खीचन में विराजना हुआ। इन ३४ वर्षों में पूज्य बहुश्रुतजी म. सा. कुछ अन्यत्र विचरे भी, परन्तु अधिक समय आप का भी खीचन विराजना हुआ। पूज्य बहुश्रुतजी म. सा. की विकसित बुद्धि और आगमिक सूक्ष्म धारणाो से परिचित धर्म बन्धुओं, संतों और सतियों की ओर से शास्त्रीय प्रश्न हमारे द्वारा आते और हम उन प्रश्नपत्रो को पूज्य बहुश्रुतजी म. सा. की सेवा उपस्थित करते। पूज्य श्री जो उत्तर फरमाते, वे हम लिखा लेते और उनकी नकल रख कर प्रश्नकर्त्ता को भेज देते। इस प्रकार संग्रह करते-करते हमारे पास छह रजिस्टर भर गए।

जब श्री रतनलाल जी डोशी खीचन आये, तो रजिस्टर

देखकर बहुत प्रभावित हुए और अपने देखने के लिए हमसे ले गये। इसके बाद वे सम्यग्-दर्शन में प्रकाशित करने लगे।

पूज्य श्री बहुश्रुतजी म. सा. छपवाने के विरुद्ध हैं। वे इस प्रवृत्ति को सावद्य एवं साधु-मर्यादा से विपरीत मानते हैं। वे कभी छपवाने के लिए सहमत नहीं होते।

प्रश्नोत्तरों का संग्रह होता देखकर गुरुदेव को कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने मुझे (किसनलालजी को) इस संग्रह को छपवाने का प्रत्याख्यान करवा दिये। इसलिए हम तो नहीं छपवा सकते थे। पं. श्री घेवरचन्द जी बांठिया जब भगवती सूत्र अनुवाद करते थे तब उन्होंने भी इस संग्रह को देख कर प्रकाशित करने की सलाह दी थी। बीकानेर निवासी दानवीर श्रीमान् सेठ जेठमल जी साहब ने भी इन रजिस्टरों को मँगवा कर अवलोकन किया था और दामनगर के श्रीमान् सेठ विनयचन्दभाई ने तो सभी रजिस्टर देख कर खास-खास प्रश्नोत्तरों की नकल भी की। आप सब इस संग्रह को प्रकाशित होना आवश्यक समझते थे। हम विवश थे किन्तु श्री रतनलाल जी डोशी ने हमारी अनुमति लिये विना ही सम्यग्-दर्शन में लेखमाला चालू कर दी। उसी लेखमाला के ८०० प्रश्नोत्तर इस प्रथम भाग में संगृहीत किये गये हैं।

जब इसका प्रकाशन हो ही चुका है, तो समाज को इसका अधिक से अधिक लाभ लेना चाहिए-ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

संघोपासक

किसनलाल पृथ्वीराज गणेशमल मालू

खीचन

प्रथम आवृत्ति में प्रकाशित-

संपादक की ओर से

बहुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ पूज्य श्री १००८ श्री समर्थमल जी म. सा. निर्ग्रन्थ-परम्परा के आदर्श संत हैं। आपमें श्रमणधर्म की उज्ज्वल साधुता के दर्शन होते हैं। आपमें चारित्र निष्ठा, उत्तम साधना और ज्ञान-गरिमा साकार हो गई है। आपका आगमों का परिशीलन, तलस्पर्शी अवगाहन और सूक्ष्म विश्लेषण देख कर आश्चर्य होता है। जोधपुर चातुर्मास में मैंने जब आपसे स्थानांग सूत्र की चौभंगियों का विवेचन सुना, तो विचार हुआ कि इस महात्मा में बहुश्रुतता ही नहीं, गीतार्थता भी स्पष्ट झलक रही है। हमने वैसा विवेचन कभी सुना ही नहीं था। मूल के जिन शब्दों में जो गंभीर अर्थ भरा था, वह पहले कही सुनने में भी नहीं आया था, न कहीं पढ़ने में आया था। आपकी सूक्ष्म एवं प्रामाणिक सूत्रस्पर्शी विवेचन्ना से प्रभावित होकर मेरे मन में विचार हुआ था कि-"इस विवेचना को सुन कर तो केवलज्ञानी की सर्वज्ञता में संदेह करने वाला मनुष्य भी एक बार विचार करेगा। जब आज भी इस प्रकार अप्रकट अर्थ को स्पष्ट करने वाले महापुरुष हैं,तो उस समय केवलज्ञानी सर्वज्ञ भी होंगे ही।' उस व्याख्यान के पूर्ण होते ही पं. मु. श्री पारसकुमार जी म. सा. ने श्रमणश्रेष्ठ की अद्भूत ज्ञानगरिमा से प्रभावित होकर लगभग आधे घण्टे तक जो उल्लास पूर्ण उद्गार व्यक्त किये, वे सचमुच मेरे ही भाव व्यक्त हो रहे थे। इसी प्रकार इसके पूर्व व बाद में भी मैं कई बार आपके अद्भुत ज्ञान से आश्चर्यान्वित हुआ था।

आपकी बहुश्रुतता और गीतार्थता का प्रमाण भगवती सूत्र के

उन स्थलों के अर्थ से भी मिलता है, जिसमें बारहवीं शताब्दी के समर्थ व्याख्याता श्री अभयदेवसूरि से भी चूक हो गई थी और उस चूक की धारणा परम्परा से अब तक चलती रही। जैसे-

१. भगवती सूत्र श. १ उ. १ में आत्मारंभादि विषय में प्रमत्त-संयती में टीकाकार ने कृष्णादि तीन लेश्या का निषेध किया है। किन्तु उनका यह निषेध भगवती सूत्र श. ८ उ. २ और प्रज्ञापना सूत्र पद १७ उ. ३ के मूल से विपरीत है। वहाँ कृष्णादि छहों लेश्याओं में चार ज्ञान भी बतलाये हैं और चार ज्ञान में मनः-पर्यय ज्ञान भी होता है, जो संयती में ही होता है।

२. भगवती श. १ उ. २ में आयु-बन्ध के विषय में टीकाकार ने वृद्धों की धारणा पर से लिखा कि अंतिम वासुदेव ने ७ वीं पृथ्वी का आयुष्य बांधने के बाद उसी भव में दूसरी बार तीसरी का बांध लिया। इसे श्रमणश्रेष्ठ ने खुद टीकाकार के ही श. उ. १ में किये विधान के विपरीत सिद्ध किया है। ऐसे और भी दा।९२५ हैं (देखो भगवती सूत्र भाग-१ की प्रस्तावना)।

३. टीकाकार जन्म-नपुंसक की सिद्धि नहीं मानते और हमारे समाज में भी परम्परा से यही मान्यता चली आ रही थी। किन्तु आपने भगवती सूत्र श. २६ के मूलपाठ से-जहाँ 'अनन्तरोपपन्नक नपुंसकवेदी' के विषय में विधान है कि उनमें आयुकर्म के 'अबन्धक' भी होते हैं, उस धारणा को बाधित बतलाया। जो 'अनन्तरोपपन्नक नपुंसकवेदी' हैं, वे तो जन्मनपुंसक ही हैं और वे आयुकर्म नहीं बाँधे, तो सिद्ध ही होंगे। इस प्रकार अनेक विषयों में आप के गहन चिन्तन एवं वस्तु तलस्पर्शी दृष्टि के दर्शन होते हैं।

श्रमणश्रेष्ठ में बहुश्रुतता एवं गीतार्थता का ऐसा सुमेल होते हुए भी विनम्रता भी बहुत है। एक छोटे और मामूली मनुष्य से भी आप

बड़े प्रेम एवं सौजन्य से बातचीत करते हैं, उसके मामूली से प्रश्न का भी उत्तर देते हैं, जैसा किसी विशिष्ट व्यक्ति के साथ किया जाता हो।

श्रमणश्रेष्ठ की ज्ञानगुण विशिष्टता, सहनशीलता एवं दृढ़ता का परिचय सोजत और भीनासर के श्रमण-सम्मेलनों में मिला था। उन मिटिंगों में विधिपक्ष का निर्वाह करते हुए आप ही ने चर्चा में भाग लिया था। दूसरी ओर विधि-बाह्य पक्ष मे कवि अमरचन्द जी म. सा. थे (जो मर्यादा की सीमा को बढ़ा कर लम्बी चौड़ी करने की रुचिवाले और लोकरुचि के कायल हैं। उनकी दूषित विचारणा का जाज्वल्यमान प्रमाण 'निशीथचूर्णि' के प्रकाशन से और अमरभारती में स्पष्ट देखा जा सकता है) बहुश्रुत गुरुदेव, कविवर के व्यंग-बाण और साथियों के ताने सहन करते हुए भी विधिवाद (आगम-पक्ष) का दृढ़ता पूर्वक रक्षण करते थे। सारे श्रमण संघ में अकेले आप ही इस पक्ष के प्रवक्ता थे। मेरे जानने में आया है कि उस समय विधिपक्ष में रुचि रखने वाले पूज्य उपाचार्य श्री, उपाध्याय पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. और कदाचित् एकाध और प्रमुख संत चाहते थे कि बहुश्रुत पं. श्री समर्थमल जी म. सा. श्रमण संघ की मिटिंगों मे बराबर भाग लेकर विधिपक्ष का निर्वाह करें और विपक्ष इस प्रयत्न में था कि श्रमणश्रेष्ठ यहाँ से चले जायँ। एक खमली चने ने तो भरी सभा में आपका कटु शब्दों में अपमान भी कर दिया था, किन्तु आप पूर्णरूप से शांत और प्रसन्न ही रहे।

प्रसिद्धि की कामना तो आण्को स्पर्श ही नहीं कर सकी। इसी से तो आप वास्तविक श्रमण-मर्यादा के पालक रह सके और खीचन के एक कोने में गुदड़ी के लाल की तरह अप्रसिद्ध रहे। समाज का बहुत बड़ा वर्ग इस आदर्श श्रमण के दर्शन से भी वंचित रहा। इतने वर्ष आप छुपे रहे, इसका प्रमुख कारण यही है कि आप स्वयं प्रसिद्धि के इच्छुक नहीं है। श्रमण सम्मेलन के

प्रसंगों के निमित्त से आपकी प्रसिद्धि हुई और रत्नों के पारखी जौहरी खीचन पहुँचने लगे। आज यह श्रमण-रत्न वीर-परम्परा का आदर्श श्रमण है-ज्ञान दर्शन और चारित्र तीनों से।

आपकी अद्‌भुत योग्यता से आकर्षित होकर स्व. पूज्य श्री जवाहिरलाल जी म. सा. ने आपके गुरुवर्य से कहा था कि - "आप मुनि समर्थमल जी को मुझे दे दीजिये और बदले में दस पन्द्रह साधु ले लीजिये।" पूज्य श्री ने आपके गुणों एवं बहुश्रुतता का मूल्यांकन किया था। आपमें सरलता, विनम्रता, सादगी, सतर्कता एवं दृढ़ता का दर्शनीय सम्मिलन हुआ है। इस वक्र-जड़ प्रधान युग में आप में चौथे आरे की साधुता के दर्शन होते हैं।

जब मैंने श्रीमान् सेठ किशनलाल जी पृथ्वीराजजी मालू से प्रश्नोत्तरों के संग्रह से भरे रजिश्टर देखे और दो चार पन्ने पढ़े, तो मन में भाव उठे - "जब सेठ की पूंजी से दरिद्र भी कमाई करके धनवान् बन सकता है, तो मैं भी इस ज्ञान-लक्ष्मी से अपनी रिक्त आत्मा को क्यों न भरूँ ?' मैं ललचाया और श्रीमान् सेठ किशनलाल जी सा. से कुछ दिनों के लिए रजिस्टर मांग लिया। इसके बाद ही तो सम्यग्-दर्शन में 'प्रश्नोत्तरमाला भाग २' प्रारंभ हुई। पहला ही लेख देख कर श्रीमान् मालू सेठ सा. ने पत्र द्वारा सूचित किया कि - "आप रजिस्टर के प्रश्नोत्तर छापते हैं, किन्तु मेरे इन्हें छपाने के प्रत्याख्यान हैं। आप छापना बन्द करें। गुरुदेव इसे पसंद नहीं करते।" मैंने उन्हें लिख दिया कि-"आपके प्रत्याख्यान है, मेरे नहीं। मैं समाज-हित में छाप रहा हूँ।" बस, प्रकाशन चलता रहा। इसके बाद तो पुस्तक की भी मांग होने लगी। मैंने प्रकाशन प्रारम्भ किया और जाहिरात भी कर दी। गुरुदेव ने अहमदाबाद में मुझे इसके लिए उपालंभ भी दिया। मैं मौन रह कर उपालंभ सुनता रहा। वे भी इसके सिवाय और क्या कर सकते

थे। सेठ किशनलाल जी की तरह प्रत्याख्यान कर लेना मेरे लिए असंभव था। मैंने एक दूसरा प्रश्न उपस्थित कर के उस बात को ही टाल दिया।

मैं समझता हूँ कि यह प्रकाशन गुरुदेव की इच्छा एवं रुचि के विपरीत है। उनकी अपनी मर्यादा है, आचार है। उन्हें या किसी भी साधु को छपवाने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। यदि कोई करे, तो यह दोष युक्त है। किन्तु मैं तो यह कार्य कर सकता हूँ। जब मैं और अन्य उपासक, जिनेश्वर भगवंतों की वाणी रूप आगम छपवाते हैं, तो यह आगमों के अर्थ एवं रहस्य को स्पष्ट करने वाला संग्रह क्यों नहीं छपवा सकते ? यदि श्रीमान् सेठ किशनलाल जी पृथ्वीराजजी इन रजिस्टरों को यों ही पेटी-पिटारे में बन्द कर रखते, तो सैकड़ों और हजारों पाठकों को लाभ होता ? नहीं। समाज में ज्ञान के प्रसार के लिए जितनी आवश्यकता आगमों के प्रकाशन की है, उतनी ही-उससे भी अधिक-ऐसे साहित्य की है। यह साहित्य आगमों के भावों को समझाता है।

मैं मानता हूँ कि साधु-साध्वी को अपनी संयम-मर्यादा का पालन पूर्णरूप से निष्ठापूर्वक करना चाहिए, बराबर करना चाहिए और छपवाने के सदोप कार्य से बचना चाहिए। मर्यादा के किंचित् उल्लंघन का कितना भयंकर परिणाम हुआ। इसका जाज्वल्यमान परिणाम ''निशीथचूर्णि' है। कई पठित एवं टाइटलधारी साधु, अपनी साधना भूल कर अपनी विद्वता का जौहर दिखाने के लिए, बिना अनुभवज्ञान के अंटसंट लेख लिखने और ग्रन्थकार तथा सम्पादक बनने में ही जुट जाते हैं। कोई-कोई तो पूरे पत्रकार तथा पत्र-सम्पादक ही बन बैठे हैं। पत्र पुस्तक एवं संस्था के व्यय-

भार को चलाने के लिए धन एकत्रित करवाते हैं। कोई-व
वेशधारी तो इतने उद्दण्ड हो गये हैं कि झूठे लेख लिखते अ
निर्दोष पर झूठा दोषारोपण करते भी नहीं लजाते। यह दुष्परिण
तो अब सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो चुका है।

वर्त्तमान के कुटिलता प्रधान युग में (जिसमें संस्कृति बिगा
के कुप्रयत्न खुलकर निरन्तर हो रहे हैं) सम्यक्श्रुत साहित्य
प्रकाशन एवं प्रचार आवश्यक ही नहीं, अत्यावश्यक है। सम
ज्ञान के प्रचार से ही निर्ग्रन्थ-परम्परा का रक्षण हो सकता
प्रसन्नता है कि इसके प्रकाशन का व्यय-भार धर्मप्रिय उ
महानुभावों ने सम्हाल लिया।

वैसे पुस्तक का कार्य गत जुलाई ६७ में ही पूरा हो चुका
किन्तु आठ सौ से भी अधिक प्रश्नों की विषय-सूची बनाने
अवकाश मुझे नहीं मिल रहा था और इसी से विलम्ब हो रहा थ
पुस्तक की मांग बराबर आ रही थी। मैं विवश था। किन्तु मेरी विवश
गोंडल सम्प्रदाय के पं. मु. श्री जनकराय जी म. सा. ने दूर कर द
आप श्रमणश्रेष्ठ की विशिष्ट ज्ञान गरिमा से बहुत प्रभावित हैं और व
तक सेवा में रह चुके है। आपने स्वयं परिश्रम पूर्वक यह कार्य कर
प्रकाशन की बाधा दूर कर दी। आपकी इस कृपा का मैं आभारी

इस प्रथम भाग में संगृहीत रजिस्टर के दो भाग पूरे हो गए। दू
भाग में आगे के प्रश्नोत्तर लिये जावेंगे। आशा है कि धर्म-रसि
महानुभाव इससे लाभान्वित होंगे।

सैलाना विनी

फाल्गुन शु. ५ वीर सं. २४९४ रतनलाल डोश

वि. २०२४ तारीख- ४-३-६८

निवेदन

जिनवाणी के रसिक वर्ग को जिनवाणी का स्वाध्याय चिन्तन-मनन, अनुशीलन, अनुप्रेक्षा आदि करते समय कई मुद्दों पर जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। उन जिज्ञासाओं का यथार्थ समाधान यदि उन्हें किन्ही महापुरुषों द्वारा मिल जाय तो वे जिनवाणी में विशेष दृढ़ीभूत हो जाते हैं। अन्यथा जिज्ञासा के समाधान न होने की स्थिति में कभी-कभी सामान्य साधक श्रद्धा से विचलित भी हो जाते है। इसलिए आज जितनी उपयोगिता आगम साहित्य के प्रकाशन की है उतनी और उससे भी कई मायनों में अधिक ऐसे साहित्य की है जो आगमों के रहस्यों को प्रश्नोत्तर के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। ऐसे प्रकाशनों को पढ़ने से स्वयं की अनेक जिज्ञासाओं का समाधान स्वतः ही हो जाता है। साथ ही अनेक लोगों की जिज्ञासाओं और उनके समाधानों की भी जानकारी मिलती है। यानी जितनी जानकारी सतत आगम साहित्य को पढ़ने से नही मिल पाती उससे कही अधिक जानकारी जिज्ञासा और समाधान को पढ़ने से मिल जाती हैं। प्रस्तुत पुस्तक ऐसे ही आगम रहस्यों को प्रकट करने वाला श्रुत भण्डार है।

इस पुस्तक का प्रकाशन क्यों हुआ, कैसे हुआ इसमें क्या विषय सामग्री है इत्यादि समस्त बातों का स्पष्टीकरण आदरणीय डोशी जी सा. ने इसकी प्रथम आवृत्ति के निवेदन में दे दिया

है। जो अन्यत्र इसी पुस्तक में छपा है। अतः इसकी पुनरा
करना उचित नहीं। मैं तो इतना मात्र निवेदन करना चाहूँगा कि
इस प्रकाशन को सामान्य पाठक ने तो क्या हमारे उपास
साधु-साध्वी वर्ग ने भी खूब पसंद किया। इसका कारण है कि
इसमें जिन जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है वह कि
सामान्य साधक का नहीं बल्कि आगमों के तलस्पर्शी ज्ञा
बहुश्रुत, गीतार्थ श्रमणश्रेष्ठ पूज्य समर्थमल जी म. सा. के द्वा
दिया हुआ है। अतः समाधान की प्रामाणिकता में संदेह रख
की कोई गुजाईश नहीं है। इसी का परिणाम है कि इसकी ती
आवृत्तियाँ पूर्व में संघ द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। यह चतु
आवृत्ति पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है।

यद्यपि कागज मुद्रण सामग्री के भावों में काफी वृद्धि हो
गई है। फिर भी धर्मप्रेमी दानवीर सुश्रावक श्री वल्लभचन्द ज
सा. डागा जोधपुर के आर्थिक सहयोग से इसका मूल्य लाग
से ५) पांच रूपया प्रति पुस्तक कम रखा है। अतः सं
आदरणीय डागा सा. के साहित्य प्रेम की प्रशंसा करता हुअ
आभार प्रकट करता है। पाठक नूतन आवृत्ति का अधिक
अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ !

ब्यावर **निवेदक**

दिनांकः ३-४-९८

नेमीचन्द बांठिया
उपाध्यक्ष
श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृ

प्रश्नान्तर्गत विषय

प्रश्नांक **विषय**

ांक	विषय	पृष्ठांक

प्रश्नांक	विषय	पृष्ठ
१५५.	जिन नाम कर्मोपार्जन के बाद मिथ्यात्व आवे ?	
१५६.	[illegible] जिननाम का या गोविंद का?	
१५७.	साधु को नदी उतरने की आज्ञा क्यों ?	
१५८.	साधु के १२५ अतिचार कौनसे ?	
१५९.	चारों जीव का मरण स्वाभाविक क्यों ?	
१६०.	[illegible] ?	
१६१.	'[illegible]' अतिचार का अर्थ ?	
१६२.	मन से करना, करवाना कैसे ?	
१६३.	मूल शरीर से देव आते हैं या वैक्रिय से ?	
१६४.	प्रत्येक पत्र में जीव एक या अनेक ?	
१६५.	वर्धमान परिणाम के बिना ७ वें गुणस्थान से छठे में कैसे ?	
१६६.	देवागमन में किया हुआ पौषध सम्यक् था ?	
१६७.	पाँचों सम्यक्त्व में जीव के भेद कितने ?	
१६८.	नरक गमन के समय क्षायिक-सम्यक्त्व रहती है ?	
१६९.	सम्यक्त्व प्राप्ति कितनी नरक तक है ?	
१७०.	'दोसु उड्ढकवाडेसु' का अर्थ क्या ?	
१७१.	तमस्काय में जीव अधिक हैं ?	
१७२.	जमाली मिथ्यात्वी कैसे ?	
१७३.	करणसत्तरी का पालन छठे गुणस्थान से आगे भी है ?	
१७४.	श्रावक की दया १८ ॥। विश्वा कैसे ?	
१७५.	मंडितपुत्र और मौर्यपुत्र की माता एक, पिता दो हैं ?	
१७६.	ग्रामोद्योग विषयक साधु-भाषा सावद्य है ?	

श्नांक	विषय	पृष्ठांक





प्रश्नांक	विषय	

****





श्नांक	विषय	पृष्ठांक
१०.	तिर्यच युगलिक मे भेद कितने ?	२४६
११	तिर्यच युगलिक में भेद कितने ?	२४६
१२	मार्गणा के भेद के विषय मे ?	२४८
१३.	क्रियावादी समवसरण का क्या अर्थ ?	२४८
१४	औदारिक शाश्वत का अर्थ क्या ?	२४८
१५.	शाश्वत मिश्र-योगी का अर्थ क्या ?	२४८
१६	एक गुण आदि पुद्गल विषयक ?	२४९
१७.	प्रदेशी राजा के मशक की हवा के प्रश्न विषयक ?	२४९
१८	प्रश्नव्याकरण सूत्र के पाठ विषयक प्रश्न ?	२५०
१९	'महावज्जकिरिया' वसति क्यो कही ?	२५१
२०.	असोच्चा केवली के श्रावक आदि विषयक प्रश्न ?	२५३
२१.	असोच्चा केवली के श्रावक लिंग विषयक प्रश्न ?	२५४
२२	मरुदेवी माता के कितने युगल उत्पन्न हुए थे ?	२५५
२३	मल्लि प्रभु की कल्प-मर्यादा कैसी थी ?	२५५
२४.	वीर प्रभु के नौवें स्वप्न का स्पष्टीकरण ?	२५५
२५	मल्लि प्रभु को साधु वन्दना करते थे ?	२५५
२६.	गर्भ मे अवधिज्ञान अन्य भी साथ लाते है ?	२५६
२७.	मस्तक मे मणि उत्पन्न होती है ?	२५६
२८	संवृत्त-विवृत्त योनि का अर्थ क्या ?	२५७
२९.	कूर्म-योनि मे उत्तम पुरुष ही उत्पन्न होते हैं ?	२५७
३०.	दो सौ छप्पन ढगले की लंबाई चौडाई कितनी ?	२५८
३१	इन्द्रिय विषय और उपयोग मे अन्तर क्या ?	२५८
३२.	चक्षुरिन्द्रिय का विषय कितना ?	२५८
३३	कार्मण-योग के साथ तैजस का क्या संबध है ?	२५९





****

प्रश्नांक **विषय**



समर्थ-समाधान

समाधानकार -

्रुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ पूज्य श्री समर्थमलजी म. सा.

१. प्रश्न - सुख क्या है? पौद्गलिक समृद्धि को सुख माना र या आध्यात्मिक समृद्धि को?

उत्तर - वास्तविक सुख वही है जो कभी नष्ट नहीं होकर याबाध रहे। पौद्गलिक सुख, परिणाम में दुःखजनक होता है- ावान् है। इसलिये वह वास्तविक सुख नहीं है। सच्चा सुख ध्यात्मिक सुख में ही है।

२. प्रश्न - जनता की सेवा करना उत्तम है, अथवा ध्यात्मिक उन्नति?

उत्तर - जनसेवा से तो आध्यात्मिक उन्नति अति उत्तम है। सर्वोत्कृष्ट उन्नति है ✷।

✷ 'कुछ वर्षो से कोई जैन-मुनि भी एक अजैन श्लोक को आगे रख सेवा को परम गहन और योगीनामप्यगम्य बतलाने लग गये हैं। सेवा करना म है और संसार के विषय कषाय मे लगे हुए जीवो के लिए दुष्कर हो ती है, किन्तु 'परम गहन और योगियो के लिए परम दुर्लभ' कहना ाशयोक्ति पूर्ण है। वास्तव मे परम गहन तो वही आध्यात्मिक उन्नति है कि सके द्वारा श्रेणी का आरोहण कर उत्तरोत्तर गुणस्थानो मे पहुंचा जाय। जीव ने -सेवा करके पुण्योपार्जन तो अनन्तबार कर लिया, किन्तु आध्यात्मिक

३. प्रश्न – मोक्ष क्या है और मोक्ष प्राप्त करने का कौनसा है?

उत्तर – सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त होना मोक्ष है और सम्यग् ज्ञान, चारित्र और तप, मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है।

४. प्रश्न – गृहस्थाश्रम में रह कर सत्यता तथा संयम जीवन व्यतीत करना ठीक है, अथवा संयम लेकर तपस्या करना उत्तम है?

उत्तर – गृहस्थाश्रम के शुद्ध श्रावक-जीवन से भी संन्यास (साधु) जीवन अति उत्तम और श्रेष्ठ है +।

५. प्रश्न – धार्मिक दृष्टि से गृहस्थ के लिये गरम (अ पानी पीना ठीक है। क्या गरम पानी करने से अप्काय अग्निकाय के जीवों की हिंसा नहीं होती? जब कि सचित्त पीने से केवल अप्काय के जीवों की ही हिंसा होती है?

उत्तर – अचित्त पानी पीने के अनेक लाभ हैं। इन्द्रिय रस-परित्याग और इच्छा का निरोध होता है। चावल तथा की परात आदि धोया हुआ पानी, छाछ और स्नान आदि के किया हुआ गरम पानी प्राप्त करने से गृहस्थ को भी अप्काय

उन्नति एकबार भी नहीं की। इसे प्राप्त करने वाले विरले ही होते हैं। सरल नहीं, किन्तु अति कठिन है। सतत अभ्यास और हजारों बार पिछड़ पर ही कभी किसी प्रबल पराक्रमी को सफलता मिलती है। वैयावृ अपेक्षा ध्यान और कायोत्सर्ग महाकठिन है। यदि ध्यान में उन्नति की शुक्लध्यान में पहुंच कर केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त हो सकता है। गहन और योगियों के लिये भी अगम्य स्थिति है' – डोशी।

+ हजारो लाखो ही नहीं, असंख्य गुण ऊँचा है। समस्त श्राव भी एक सुश्रमण श्रेष्ठ है–डोशी।

ग्निकाय जीवों की हिंसा टल सकती है। सचित्त पानी पीने के ाग होने से गृहस्थ को कभी अचित्त पानी अथवा अग्नि आदि योग के अभाव में और समय की कमी से व्रत में दृढ़ रह कर शेष लाभ प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। जैसे कि-म्बड़ संन्यासी के ७०० शिष्य श्रावक थे, वे सचित्त पानी पीते , किंतु बिना आज्ञा के पानी नहीं लेने की उनकी प्रतिज्ञा थी। वे क बार गरमी के दिनों में दूसरे गाँव जाते हुए रास्ते में प्यास से ीड़ित हुए। पास ही पानी की नदी बह रही थी, किंतु आज्ञा देने ाले के अभाव में उन्होंने संथारा कर लिया और परलोक के ाराधक बने। बिना आज्ञा पानी नहीं लेने के त्याग मात्र से इतना ाभ का प्रसंग आ सकता है, तो सचित्त जल-पान के त्याग की बात ही क्या है?

६. प्रश्न - गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपनी खुद की स्त्री के ाथ सुन्दर से सुन्दर धार्मिक सम्बन्ध क्या हो सकता है? क्या ासा कि 'रायचन्द्रजी' ने लिखा है "धर्म-बहिन" का सम्बन्ध ाक्य तथा उचित है?

उत्तर - पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी पुरुष का खुद की स्त्री के ाथ भी 'धर्म-बहिन' का संबंध शक्य एवं उचित हो सकता है।

७. प्रश्न - काल आशातना किसे कहते हैं?

उत्तर - पाँच समवायों की अनुकूलता से कार्य बनते है। नमें काल भी एक समवाय है। काल-लब्धि के परिपक्व होने पर ीव को सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति होती है। चरम-शरीरी अवश्य ोक्ष में जाते हैं, किंतु वे जन्मते ही सिद्ध नहीं हो जाते। कम से कम ९ वर्ष की अवस्था होने पर ही मुक्ति लाभ कर सकते हैं।

इत्यादि अनेक प्रकार से काल सहायक होता है। इसे नहीं मा
काल की आशातना करना है।

८. प्रश्न - सूखा साग खाने से खंद वाले को दोष लग
या नहीं?

उत्तर - जिसने हरी लीलोती का स्कन्ध उठा दिया है, यदि सूखा हुआ शाक खावे, तो त्याग में दोष नहीं लगता। ब सी चीजें तो आमतौर पर उबाली हुई, सूखाई हुई और अपने सूखी हुई काम में आती है। जैसे केर, सांगरी, कुमटिया अ वैसे हरा-शाक खाने वालों के भी सूखी हुई ही अधिक का आती है। अंगूर खाने वाले भी दाख, किसमिस आदि खा जिनके लीलोती का खंद होता है, उनके अनेक चीजें सह छूट जाती है, जैसे - गन्ने, अनार, सेव, खरबूजा, तरबूज, अंगूर आदि। इसलिये त्याग करना बहुत ही अच्छा है। अ संन्यासी के शिष्य कच्चा पानी पीते थे, किंतु बिना आज्ञा नहीं की प्रतिज्ञा थी। वह प्रतिज्ञा भी लाभ का कारण बन गई, तो लीलोती के स्कन्ध का त्याग करने वाला तो सभी हरी वस्तुअ त्याग करता है।

यदि ऐसे त्याग वाला, शाक सूखाने का आरम्भ छो बहुत ही उत्तम है। किंतु सूखाने और सूखा कर खाने की नहीं छूटे, तो भी त्याग में दोष नहीं लगता। आरम्भ का लगता है और आरम्भ का अभी उसके त्याग नहीं है। जिस तपस्या करने वाले बाई, भाई, तपस्या करते हुए भी रसोई बन दूसरों को जिमाते हैं, तो उन्हें आरम्भ का पाप लगता है, तपस्या भंग नहीं होती। इसी प्रकार सूखे शाक के विष समझना चाहिये।

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

९. प्रश्न - केवली भगवान् जितने भाव ज्ञान द्वारा जानते : देखते हैं, क्या वे सभी भाव वाणी द्वारा कह सकते हैं?

उत्तर - केवली सभी पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते और ते हैं, किन्तु सभी पदार्थों के भावों को वाणी द्वारा कह नहीं ते। क्योंकि पदार्थ और पदार्थों के भाव अनन्त हैं। उनमें से ाने तो कहने योग्य भी नहीं है। आयुष्य सीमायुक्त और अल्प समझाने पर भी दूसरे समझने वालों में समझने की शक्ति नी नहीं होती, इत्यादि कारणों से वे सभी पदार्थों के भावों को ं कह सकते।

१०. प्रश्न - क्या युद्ध में भी धर्म है?

उत्तर - युद्ध के कारणों और परिणामों की भिन्नता से पाप तरतमता अवश्य रहती है, किन्तु युद्ध में पाप ही होता है, धर्म ी होता। प्रभु ने हिंसा झूठ आदि १८ को 'पाप' और उनकी वृत्ति को 'धर्म' कहा है।

कोणिक राजा के पक्ष में इन्द्र आयेगा, करोड़ों मनुष्यों का ार होगा। मैं अचूक बाण वाला होकर भी विहलकुमार की रक्षा ी कर सकूँगा, इत्यादि बातों का पता चेटक महाराजा को पहले होता, तो वे ऐसा कदापि नहीं करते। उन्होंने राजनीति के रण युद्ध किया। राजनीति से धर्मनीति का दरजा विलक्षण और ते ऊँचा है। धर्मनीति से तो वे युद्ध को कमजोर ही मानते थे। ः शरण में नहीं रखने से युद्ध से भी अधिक पाप लगे, -'यह ा भी नहीं है।

युद्ध और रक्षा ये दोनों भिन्न वस्तुएं हैं। इन दोनों का फल भिन्न-भिन्न है। युद्ध के भावों का फल अशुभ और रक्षा के

भावों का फल-शुभ है। जो प्रभु-वाणी के रसिक हैं, उन्हें दोनों को समान नहीं मानना चाहिये।

११ प्रश्न - तीर्थंकर गर्भ में रहे हुए अवधिज्ञान से ... के पर्याय को देख सकते हैं क्या?

उत्तर - यह सम्भव नहीं है।

१२ प्रश्न - क्या अवधिज्ञान से लोक और ... पर्याय देखे जा सकते हैं?

उत्तर - जिस प्रकार अवधिज्ञान द्वारा लोक में कम ... देखते हैं, उसी प्रकार अलोक में भी कम-ज्यादा देखने की ... है, किन्तु सभी परम अवधिज्ञान वालों का क्षेत्र समान है।

१३ प्रश्न - कृषि (खेती करना) क्या आर्य-धन्धा है?

उत्तर - प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में कर्म-आर्य के ... आये हैं, उनमें कृषि का नाम नहीं है।

'आर्य' शब्द का अर्थ अभिधान राजेन्द्र कोष में ... (आर्य) और आयरिय (आर्य) शब्द में विस्तार से दिया गया है।

१४. प्रश्न - इंगालकर्म और स्फोटकर्म (फोडीकम्मे) ... क्या अर्थ है?

उत्तर - अंगारकम्म (इंगाल-कम्म) अंगारकर्मन् शब्द ... अर्थ 'अभिधानराजेन्द्र' कोष में इस प्रकार दिया है-

"अंगार विषयं कर्म अंगारकर्म अंगाराणां कर... विक्रयस्वरूपे कर्मादानत्वादकर्त्तव्य कर्मणि, (एवम् ... यदन्यदपीष्टका पाकादिकं कर्म तद् अंगारकर्मोच्यते। अं... शब्दस्य तदन्योपलक्षणत्वात्॥ भगवती सूत्र शतक ८ उद्दे... ५॥ समानस्वभावत्वात्॥ उपासकदशांग सूत्र अध्ययन १॥ ...

शास्त्रे अंगारभ्राष्ट्रकरणे कुंभायः स्वर्णकारिता। रत्वेष्टकापाकाविति ह्यअंगारजीविका॥ धर्म संग्रह सटीक अधिकार॥ प्रवचनसारोद्धार॥ आवश्यक बृहद्वृत्ति॥ "इंगाले ऊणं विक्कणेति तत्थे छक्काय पाणवधो तन्न कप्पति वा लोहकारादि"॥ आवश्यक चूर्णि ६ अध्ययन॥ श्रावक प्रज्ञप्ति॥ धर्म संग्रह सटीक॥ पञ्चाशक सटीक (टीका सहित)॥

अंगारकर्म (इंगालकर्म) का अर्थ - कोयले करके बेचना रकर्मादान है। इसी प्रकार जिसमें अग्नि का आरम्भ होता हो, सब अंगारकर्मादान है, जैसे कि - ईटें पकाना। योगशास्त्र में कहा है - कोयले बनाना, भड़भुजे की भाड़ करना, कुम्भार कजावा-निमाड़ा (ईंटें और मटकियें पकाने का काम) र्णकारिता, ठठारे का काम, ईट पकाना आदि सब अंगार कर्म आवश्यक बृहद्वृत्ति में भी कहा है कि अग्नि जलाकर यले बनाना और बेचना तथा लुहार आदि का धन्धा करना यह वक को नहीं कल्पता है-क्योंकि इसमें छह काय जीवों की सा होती है।

'फोडीकम्मे' शब्द का अर्थ अभिधान राजेन्द्र कोष में इस कार दिया है - 'स्फोटः पृथिव्यादिविदारणं एतदेव कर्म स्फोट र्म॥ धर्म संग्रह सटीक दूसरा अधिकार॥ स्फोटिर्भूमेः स्फोटनम् नकुद्दालादिभिः सर्वे कर्म स्फोटिकर्म॥ भगवती सूत्र शतक ८ देशक ५॥ स्फोट जीविकायाम् तद्रूपे कर्माऽऽदान भेदे च। र्म संग्रह सटीक दूसरा अधिकार, आवश्यकचूर्णि। उपासकदशा। फोडीकम्मं उडत्तेणं हलेणं वा भूमिफोडओ'॥ श्रावक र्मप्रज्ञप्ति। पंचाशक सटीक। धर्मरत्नप्रकरण। आवश्यक बृहद्वृत्ति।

प्रवचनसारोद्धार॥ 'स्फोट कर्म वापीकूपतडागाऽऽदिखननम्, हलकुद्दालाऽऽदिना भूमिदारणम् पाषाणादि घट्टनं यवाऽऽदिधान्यानां, सक्त्वादि करणेण विक्रयो वा। पडुप "जवचणया गोहूममुग्गमास करडिप्पभिइ धन्नाणं। अदालिकणिक्का तंदुलकरणाइं फोडणयं"॥१॥

स्फोट कर्म का अर्थ है - भूमि आदि को चीरना, स्फोटकर्म कहते हैं। हल, कुदाली आदि से भी भूमि को स्फोट कर्म (फोडीकम्म) कहलाता है। बावड़ी, कुआँ, आदि खोदना तथा हल, कुदाली आदि से भूमि को चीरना पत्थर आदि को घड़ना तथा मशीन से जौ आदि धान को छिलका उतारना, जैसा कि गाथा में कहा है - "जौ, चना, मूंग, उड़द आदि धान का छिलका उतारना, इनकी दाल अर्थात् दाल मील लगाना, शालि धान्य का छिलका उतार चावल बनाना अर्थात् चावल मील लगाना आदि सब 'फोडी कर्मादान है।"

१५. प्रश्न - अपन सब स्थानकवासी जैन हैं, या श्वेता जैन? स्थानकवासी जैन का क्या मतलव है? श्वेताम्वर जैन कौन-कौन शामिल हैं?

उत्तर - अपने लिये 'स्थानकवासी जैन' 'श्वेताम्वर साधु जैन' तथा 'श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन' और श्वेताम्वर व सम्प्रदाय आदि विशेषण व्यवहार में आते हैं।

२. स्थानकवासी जैन का तात्पर्य है-शून्य-गृहादि वि स्थानों में उतरनेवाले जैन साधु और उन्हें गुरु मानने से गृह को भी इसी नाम से पहिचानते हैं।

३. श्वेताम्बर जैन का अर्थ है-श्वेत वस्त्र वाले जैन साधु।
गुरु मानने वाले गृहस्थों को भी इसी नाम से पुकारते हैं। इस
षण में स्थानकवासी, मूर्तिपूजक और तेरापंथी तीनों का
विेश होता है। श्वेताम्बर विशेषण तीनों सम्प्रदाय के प्रयोग में
ा है। जैसे - १. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन २. श्वेताम्बर
पूजक या देहरावासी जैन तथा ३. श्वेताम्बर तेरापंथी जैन।

१६. प्रश्न - वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थकरों की
नयों में से किस-किस की पत्नी मोक्ष गई?

उत्तर - उन्नीसवें तीर्थकर भगवान् मल्लिनाथ का जन्म तो
रूप से हुआ था। उन्होंने विवाह नहीं किया। जितने स्त्री
र्थकर हुए और होवेंगे, वे सब कँवारी अवस्था में ही दीक्षा लेते
विवाह नहीं करते। तीर्थकर का स्त्री रूप से जन्म लेना दस
श्चर्यो में से एक आश्चर्य है।

बावीसवें तीर्थकर भगवान् अरिष्टनेमि ने विवाह नहीं किया
, कँवारी अवस्था में ही दीक्षा ली। शेष बावीस तीर्थकरों की
त्नयों के मुक्ति जाने सम्बन्धी अधिकार देखने में नही आया है।
ी राजीमतीजी मोक्ष में गये हैं। उनका नाम सोलह (१६)
तियों में है।

१७. प्रश्न - मनःपर्यवज्ञान से ऋजुमति कितना देखते हैं
र विपुलमति कितना देखते हैं? यदि न्यूनाधिक देखते हैं, तो
तना अन्तर रहता है?

उत्तर - मनःपर्यवज्ञान की ऊँची नीची देखने की शक्ति
१०० योजन की, सलिलावती विजय से शनैश्चरजी के विमान
क की है और तिरछा देखने की शक्ति सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र

पेंतालीस लाख योजन लम्बी चौड़ी है। इस पेंतालीस लाख में से ऋजुमति चारों ओर २॥ अंगुल कम देखते हैं और विपुलमति पूर्णरूप से देखते हैं।

१८. प्रश्न - श्री आदिनाथ भगवान् आदि १०८ उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में सिद्ध हुए, जो कि आश्चर्य घटना मानी जाती है-तो ये १०८ कौन थे?

उत्तर - श्री संघदास गणि रचित 'वसुदेव हिण्डी' (वसुदेव चरित्र) जो कि प्राकृत भाषा में है। उसमें लिखा है कि - भगवान् ऋषभदेव, उनके निनाणु (९९) पुत्र और आठ पौत्र इस प्रकार १०८ एक समय में सिद्ध हुए।' किन्तु यह लिखना संगत नहीं है क्योंकि भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष जाने के छह लाख पूर्व वर्षों के बाद में बाहुबली मोक्ष पधारे हैं। इसलिये दूसरी मान्यता है कि 'स्वयं भगवान् ऋषभदेव उनके अठाणु (९८) पुत्र और (नौ) पौत्र, इस प्रकार १०८ एक समय में सिद्ध हुए। तीसरी मान्यता यह है कि - 'भगवान् ऋषभदेव उनके अठाणु पुत्र, आठ पौत्र तथा ऐरवत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर श्री चन्द्रानन स्वामी ये १०८ उत्कृष्ट अवगाहना के एक समय में सिद्ध हुए।' यह मान्यता विशेष संगत लगती है।

ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में तो एक समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ सिद्ध हुए, इतना ही वर्णन है। किसी के नाम का उल्लेख नहीं है।

१९. प्रश्न - 'भरत और बाहुबली आदि प्रभु ऋषभदेव के साथ ही मुक्ति पधारे' - ऐसा सुनते हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर - भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष पधारने के छह लाख

र्षों के बाद भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुंदरी मोक्ष पधारे, में नहीं।

भरत को चक्ररत्न की प्राप्ति, प्रभु को केवलज्ञान होने के हुई और उन्होंने छह लाख पूर्व तक चक्ररत्न भोगा, किन्तु ो एक लाख पूर्व तक ही केवली रहे। अतएव दोनों का साथ ुक्ति पाना संभव नहीं है।

२०. प्रश्न - दो जीवों के एक साथ ग्रंथी-भेद हुआ तो एक साथ ही मोक्ष जाते हैं, या पहले पीछे?

उत्तर - एक साथ ग्रंथी-भेद करने वाले जीव आगे पीछे भी जा सकते हैं। किसी का संसार-काल अल्प होता है और ो का विशेष। किन्तु जो जीव एक साथ शुक्लपक्षी बनते हैं, ी तो मुक्ति भी साथ ही होती है और उनका संसार काल भी न होता है।

२१. प्रश्न - यथाप्रवृत्तिकरण अभव्य और मिथ्यादृष्टि कर ता है या नहीं?

उत्तर - यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, तीनो में से पहला यथाप्रवृत्तिकरण भव्य और अभव्य दोनों र के जीवों को होता है। शेष दो करण केवल भव्य जीव को ोते हैं।

२२. प्रश्न - ६३ श्लाघ्य पुरुषों का आयुष्य निरुपकर्मी है, फिर श्री कृष्ण-वासुदेव का अन्त जरदकुमार के बाण के क्रम से कैसे हुआ?

उत्तर - ६३ श्लाघ्य पुरुषों का आयुष्य तो निरुपकर्मी ही । है। निश्चयदृष्टि से उनके आयुष्य को किसी प्रकार का

उपक्रम नहीं लगता, व्यवहार से ही जरदकुमार का उपक्रम देता है। यदि उनके बाण नहीं लगता, तो भी वे उसी आयुष्य पूर्ण कर जाते। चरम-शरीरी जीवों का आयुष्य भी नि होता है, किन्तु किसी-किसी के बाह्य उपक्रम लग जाता है कि श्री गजसुकुमालजी के अग्नि का और स्कंधकजी के उतारने का। इस प्रकार अनेक चरम-शरीरियों के उपक्रम ये सब बाह्य उपक्रम हैं। निश्चयदृष्टि से उनका आयुष्य समय पूर्ण होने वाला था। उपक्रम लगने से उनकी आ नहीं, इसलिए वे निरुपकर्मी कहलाते हैं।

२३. प्रश्न - श्री स्कन्धकजी के ५०० शिष्य, कोल्हू गये और वे मोक्ष पधारे। इनकी केवलज्ञान की महिमा के देव आये होंगे, तो ऐसा अनर्थ देवताओं ने क्यों होने दिया क्यों नहीं की?

उत्तर - भवितव्यतावश देवों का उपयोग नहीं लगा और वे नहीं आये होंगे। क्योंकि सभी सामान्य केवलि केवलज्ञान और निर्वाण के समय देव आते ही हैं। ऐसा नियम नहीं है। तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और पर देव आते ही हैं।

२४. प्रश्न - रावण का जीव, आगामी चौवीसी में तीर्थंकर होगा और सीताजी का जीव गणधर होगा। कहा कि रावण का जीव तीसरी नरक से सात सागर की उत्कृष्ट आ कर वहां से आने के बाद तीर्थंकर होगा और सीताजी का बारहवें देवलोक में २१ या २२ सागरोपम की स्थिति में यह संयोग किस प्रकार मिल सकता है?

उत्तर - रावण तीसरी में नहीं, किन्तु चौथी नरक में गया ोथी नरक से निकलने वाला जीव बाद के मनुष्यभव मे र नहीं हो सकता। रावण के जीव ने अब तक तीर्थकर गोत्र न्ध नहीं किया है। वह रावण के भव के बाद बारहवे भव मे र नाम कर्म का बंध करेगा और चौदहवें भव में तीर्थकर सो भी इस भरत क्षेत्र में नही, अन्यत्र। सीताजी का जीव, त्रें देवलोक से २२ सागर की स्थिति भोग कर इस भरतक्षेत्र र्वरत्नमय' नामक चक्रवर्ती होगा। रावण और लक्ष्मण के उस समय छठे देवलोक से च्यव कर दोनों ही उस चक्रवर्ती त्र होंगे। वे चक्रवर्ती संयम पाल कर दूसरे वैजयन्त नामक र विमान मे देव होगे और वहाँ से च्यव कर रावण के जीव ामने गणधर होंगे। लक्ष्मणजी का जीव अनेक भव बाद रवर द्वीप के पूर्व विदेह मे चक्रवर्ती और तीर्थकर होकर दोनो का अनुभव कर मोक्ष जायगा।

२५. प्रश्न - वनस्पतिकाय के ६ भेद है-सूक्ष्म, साधारण प्रत्येक, इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे ६ भेद है। वनस्पति में निगोद ही होगी, इनमे प्रत्येक जीव नहीं होता ा। इसके बाद साधारण और प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय के कहे हैं। ९८ बोल में सूक्ष्म निगोद के जीव शामिल बताये हैं, अव्यवहार राशि के जीव किस निगोद में समझे जायँ?

उत्तर - सूक्ष्म वनस्पति में प्रत्येक जीव नहीं होते-सभी न्तकाय ही होते हैं। अनन्त जीव मिल कर एक शरीर बाँधते उस शरीर का नाम 'निगोद' है। ऐसे निगोद के दो भेद हैं-एक म निगोद और दूसरा बादर निगोद। दोनों प्रकार के निगोद में यवहार राशि के जीव भी होते हैं।

और बाद में क्षायिक-सम्यक्त्व का लाभ हुआ हो, तो चालू भव सहित तीन भव ही होते हैं। यदि युगलिक मनुष्य अथवा स्थलचर युगलिक तिर्यंच का आयुष्य बांधने के बाद क्षायिक-सम्यक्त्व पाई हो, तो चालू भव सहित चार भव होते हैं। नारकी, देवता और युगलिक इन तीनो के सिवाय किसी दूसरी गति का आयुष्य बांधा हो, तो ऐसे मनुष्य को उस भव में क्षायिक-सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। क्षायिक-सम्यक्त्व का लाभ मनुष्य-गति में होता है, दूसरी गति में नहीं होता, किन्तु वह चारों गति में पाई जा सकती है। प्राप्ति के बाद अधिक से अधिक ३३ सागर से कुछ अधिक काल के बाद मोक्ष प्राप्ति हो ही जाती है।

२८. प्रश्न - तीसरे अनिवृत्तिकरण में ग्रंथिभेद होने के साथ ही-उसी समय सम्यक्त्व प्राप्ति होती है, या कुछ समय के बाद?

उत्तर - तीसरा करण सम्यक्त्व प्राप्ति का ही है। सम्यक्त्व प्राप्ति के बिना तीसरा करण निवृत्त नही होता है। इसीलिये इसका नाम अनिवृत्तिकरण है।

२९. प्रश्न - यथाप्रवृत्तिकरण भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के जीवों के होता है? यदि होता है, तो कितनी बार?

उत्तर - प्रथम करण भव्य और अभव्य ऐसे दोनों प्रकार के जीवों के होता है और अनन्त बार होता है।

३०. प्रश्न - कर्मो की स्थिति एक कोडाकोडी सागर से अन्तर्मुहूर्त्त कम करने पर अपूर्वकरण होता है। उस समय कर्मों की स्थिति असंख्यात काल की रहती है। जीव सम्यक्त्व का करके कर्मो का उत्कृष्ट बन्ध कर के एक कोडाकोड़ी अधिक स्थिति वाला बन्ध करले, तो उसे दूसरी बा

-

३२. प्रश्न - भगवान् महावीर का छठा भव पोट्टिल मुनि ा कहा जाता है। किन्तु इस पोट्टिल मुनि के भव से गिनती करने (तो पॉच ही भव होते है। जैसे कि - १. पोट्टिल मुनि २. ाठवाँ देवलोक ३. नन्दन राजा ४. दसवाँ स्वर्ग और ५ भगवान् हावीर। फिर छह भव की गिनती किस प्रकार सही है ?

उत्तर - भगवान् महावीर के चार भव तो ऊपर लिखे ाुसार ही है, पाँचवाँ श्री देवानन्दा के गर्भ मे ८३ रात्रि निवास रना और छठा भगवान् महावीर का। इस प्रकार छह भव की नती सही है।

३३. प्रश्न - जिस प्रकार जम्बूद्वीप में सलिलावती विजय डी है, उसी प्रकार अन्य चार महाविदेह क्षेत्रो मे इतनी ऊँडी ाजय है या नहीं ?

उत्तर - जम्बूद्वीप की सलिलावती विजय एक हजार योजन ाडी है। दूसरे क्षेत्र की विजय में क्षेत्र सम होने से इतनी ऊँडाई ाना संभव नहीं है-ऐसा समवायांग सम० १९ से ज्ञात होता है।

३४. प्रश्न - 'अनिवृत्ति' नामक तीसरे करण से जीव म्यक्त्वी होता है। सम्यक्त्वी होने के पूर्व वह शुक्लपक्षी होता है, ा प्रश्न यह है कि शुक्लपक्षी होने के बाद कितने समय मे वह म्यक्त्व पाता है ?

उत्तर - जिस जीव के संसार-भ्रमण काल अर्द्ध पुद्गल ावर्त्तन से कुछ कम रह गया हो, वह उसी समय से शुक्लपाक्षिक ाना जाता है। शुक्लपक्षी होने के बाद कई जीव तुरन्त ही म्यक्त्व पा लेते हैं और कई जीव उसके बाद के मध्य-काल मे म्यक्त्व पाते हैं और कोई-कोई अन्तिम भव मे भी पाते हैं।

३५. प्रश्न - चौथी और पांचवी नरक में शीत और उष्ण
के नैरयिक हैं, तो शीत-योनि वाले नैरयिक को उष्णवेदना
उष्ण-योनि वाले को शीत-वेदना होती है क्या? नरक का
स्वभाव तो एक प्रकार का ही है, वहाँ परमाधामी देव भी
जाते, फिर भिन्न-भिन्न प्रकार की वेदना कैसे होती है?

उत्तर - चौथी और पांचवीं नरक में दोनों योनि के नैरि
और नरकावास भी दोनों प्रकार के स्वभाव वाले हैं। कुछ नरक
शीत-स्भाव वाले हैं और कुछ उष्ण-स्वभाव वाले। जैसे नरक
हैं, वैसी ही नारकों को वेदना भी होती है। वहाँ परमाधामी
है। चौथी नरक में उष्ण-योनि के नरकावास अधिक हैं
शीत-योनि के कम हैं, किन्तु पांचवीं में शीत योनि वाले अ
और उष्ण-योनि वाले कम हैं।

३६. प्रश्न - एक मनुष्य एक लाख रुपये व्यापार में ल
है और दूसरा इतनी ही रकम कृषि में लगाता है, तो दो
अल्पारम्भी कौन है और महारम्भी कौन है?

उत्तर - व्यापार से खेती में अधिक आरम्भ होने की सम्भ
है। सूत्रकृतांग (टीका) में खेती का आरम्भ अधिक होने
उल्लेख है। इसमें अनेक प्रकार से और अनेक प्रकार के त्रस
स्थावर जीवों की उत्पत्ति और विनाश होता है। रेशम आ
लिए भी कृषि की जाती है, वह भी अधिक आरम्भ जनक ह

३७. प्रश्न - एक मनुष्य मोतियो की माला पहने और
फूलों की माला पहने, इन दोनों में अल्पारम्भी कौन और महा
कौन?

उत्तर - मोतियों की माला पहनने वाले की अपेक्षा

ाला पहनने वाला अधिक आरम्भवाला होने की संभावना है, क फूलो में सख्यात, असंख्यात और अनन्त जीव होते है। की माला एक दिन ही काम में आती है। एक मनुष्य के त मे फूलो की संख्यात मालाएँ काम मे आ सकती है, जिनमे त जीव होते हैं। उन अनन्त जीवों की विराधना होती है और यो की एक ही माला जीवन पर्यन्त ही नही, पीढ़ियो तक में आ सकती है, इस प्रकार फूलमाला पहनने वाला अधिक भी है।

३८. प्रश्न – श्री नेमिनाथ भगवान् पानी के जीवो के आरम्भ जानते थे, फिर उन्होंने सोने चाँदी आदि विविध प्रकार के , १०८ कलशों से स्नान क्यों किया?

उत्तर – भगवान् अवधिज्ञान से पानी के जीवों को और म्भ को जानते थे, किन्तु उत्सवादि विशेष प्रसंगों पर अनेक मिलकर स्नान करवाने की रीति थी, इसलिए बड़ो की ानुसार उतने कलशो से स्नान करना पडा था। यदि साधारण की तरह स्नान होता, तो उतने पानी की आवश्यकता नही ा। वैसे गृहस्थ लोगो से स्नान का सर्वथा त्याग होना कठिन पशुवध और मांसाहार का त्याग तो वे आसानी से कर सकते इसलिए विवाह करने की इच्छा नही होते हुए भी हिंसा को ाने की भावना से–'हिंसा बुरी है'–ऐसा समझाने के लिए बरात र गये और पशुओ का क्रन्दन सुन कर उन्हे मुक्त कराने के लौट आये। यदि वे स्नान नही कर के ही हट जाते, तो क-प्रवृत्ति पर इतना प्रभाव नहीं पडता।

३९. प्रश्न – श्रीकृष्ण वासुदेव के मन मे ऐसी शंका हुई कि

प्र समय उसके श्राविका होने की संभावना नहीं है। पाक बनाने वर्णन की जगह भगवती सूत्र में रेवती को गाथापत्नी लिखा है, मणोपासिका नही। और जब भगवान् की आज्ञा से सिंह अनगार, क लेने के लिए रेवती के घर आये और उन्होंने कहा कि भगवान् के लिए बनाया हुआ पाक मैं नही लूंगा, किन्तु जो जोरापाक बचा हुआ पड़ा है, मै उसीको लेने आया हूँ।" रेवती यह सुन कर आश्चर्य हुआ। उसने सिंह अनगार को पूछा कि ऐसा ज्ञानी और तपस्वी कौन है, जिसने मेरी गुप्त बात जान ?" सिंह अनगार ने भगवान् महावीर के अनन्त ज्ञानादि गुण वर्णन किया। यदि वह पहले से श्राविका होती, तो सिंह नगार से ऐसा क्यों पूछती कि "ऐसा कौन ज्ञानी है, जिसने मेरी त बात जान ली?" भगवान् का प्रभाव उस समय संसार मे त फैला हुआ था, इससे वह जानती थी कि ये प्रभावशाली ापुरुष है। किंतु उन्हें सर्वज्ञ नहीं जानती थी। और इसीलिये उसने भगवान् के लिए कोलापाक बनाया था। यदि वह विका होती, तो अवश्य समझती कि 'मैं गुप्तरूप से ाऊँगी तो भी मेरी गुप्तता नही रह सकेगी, क्योकि प्रभु सर्वज्ञ दिर्शी हैं।' अतएव इस घटना के पूर्व वह श्राविका नहीं थी, ो संगत मालूम होता है।

४२. प्रश्न - ज्ञान और क्रिया, इन दोनों में मुख्य कौन है ?

उत्तर - ज्ञान और क्रिया, इन दोनो मे ज्ञान मुख्य है, क्योकि ा ज्ञान की क्रिया नगण्य है। वह भौतिक सुख दे सकती है, मोद्धार नहीं कर सकती। बिना ज्ञान की क्रिया करके जीव न्ती बार ग्रैवेयक तक जा चुका, फिर भी उसका भव-भ्रमण

प्रकार का अभिग्रह किया हो, ऐसा खुलासा वर्णन देखने मे नही आया।

४५. प्रश्न – सोलह सतियो के नाम किस क्रम से है ?

उत्तर – १. श्री ब्राह्मीजी २. श्री सुन्दरीजी ३. श्री चन्दनबालाजी ४. श्री राजीमतीजी ५. श्री द्रौपदीजी ६. श्री कौशल्याजी ७. श्री मृगावतीजी ८. श्री सुलसाजी ९. श्री सीताजी १०. श्री सुभद्राजी ११. श्री शिवादेवीजी १२. श्री कुन्तीजी १३. श्री शीलवतीजी १४. श्री दमयंतीजी १५. श्री चूलणीजी और १६. श्री प्रभावतीजी।

उपरोक्त क्रम "सती आदर्श जीवन माला" नामक पुस्तक मे है। इसमें पद्मावती का नाम अलग नही है। इस पुस्तक में जो छन्द है उसमें भी १६ नाम ही बडे अक्षरों मे लिखे हैं। जिसमें प्रभावती का नाम तो बड़े अक्षरों में है, किन्तु पद्मावती का नाम बड़े अक्षरों में नहीं है। यदि प्रभावती और पद्मावती एक ही हो, तो १६ की संख्या ठीक रहती है।

धार्मिक-परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (अहमदनगर) की पुस्तक में 'शीलवती" का नाम नहीं है, किन्तु प्रभावती और पद्मावती के अलग-अलग नाम हैं।

सती दमयंती, श्री शान्तिनाथ भगवान् से भी पहले हुई है। तीर्थंकर आदि तो प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में निश्चित संख्या में ही होते हैं, किन्तु सतियाँ अनेक होती है। शास्त्रों मे इनका कोई अनुक्रम देखने में नही आया। गुणस्तुति रूप में कई प्रसिद्ध सतियो के नाम से गुण-स्तवन किये है। गुणस्तुति में अनुक्रम की एकांत आवश्यकता नहीं रहती।

४६. प्रश्न – प्रार्थना किसकी करनी चाहिए और उसका क्या महत्त्व है ?

४९. प्रश्न - पॉच प्रकार की निधि सुनते है, वह कौनसी ?

उत्तर - **१. पुत्र निधि** - माता पिता को आनन्द देने वाले पुत्र।
२. मित्र निधि - कार्य-साधक होने से।
३. शिल्प निधि - चित्रादि कला और विद्या में निपुणता।
४. धन निधि - स्वर्ण-रूपकादि।
५. धान्य निधि - जीवन चलाने वाली।

५०. प्रश्न - चौबीस तीर्थकरों में, धर्म का विरह किन र्थिकरो के शासन के बीच मे पड़ा?

उत्तर - नौवे तीर्थकर से १६ वे तीर्थकर तक लगातार आठ र्थिकरों के बीच में सात अंतरों में धर्म का विरह पड़ा था। शेष १ ८ और १७ से २४ वें तीर्थकर तक का धर्म-शासन अविछिन्न लता रहा।

५१. प्रश्न - समुच्चय वनस्पति मे तीन प्रकार की योनि है, सा प्रज्ञापना सूत्र मे लिखा है, तो सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक नस्पति मे कौन-कौन-सी योनि होती है?

उत्तर - सूक्ष्म और साधारण वनस्पति में मात्र शीत योनि ोती है और सचित्त होती है। प्रत्येक में शीत, उष्ण और शीतोष्ण था सचित्तादि तीनों योनियॉ होती है।

५२. प्रश्न - देवलोक मे वनस्पति साधारण होती है या त्येक?

उत्तर - देवलोक में साधारण वनस्पत्ति तो है ही, परन्तु



प्रत्येक वनस्पति भी मिल सकती है। महोत्सव आदि के प्र
जो तिरछे लोक में से ले जाई जाती है।

५३. प्रश्न - जन्म-नपुंसक को द्रव्य-दीक्षा आ सक
या नहीं ?

उत्तर - आ सकती है। भगवती सूत्र के छब्बीसवें श
दूसरे उद्देशक में बतलाया है कि जन्म नपुसक दीक्षा लेक
भव में मोक्ष जा सकता है। आगम व्यवहारी महापुरुष उसे
दे सकते हैं।

५४. प्रश्न - पॉच पदवी वालों मे से किसी भी प
वाला वैमानिक देव, अपनी कितनी मूल देवियों के साथ
भोगता है ?

उत्तर - पाँच में से अहमिन्द्र पद वालों के तो देवियां
ही नहीं। शेष चार पद वाले वैमानिको में भी केवल प
और दूसरे देवलोक में ही देवियां होती है। उनकी संख्या
प्रकार है।

शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के आठ-आठ अग्र-महिषियाँ
और प्रत्येक के सोलह-सोलह हजार का परिवार है। आठ अ
महिषियों का परिवार १२८००० है। ये इन्द्र की मूल देवि
इन्द्र के सामानिक देवो के चार-चार अग्र-महिषियॉ हैं। प्रत्येक
एक-एक हज़ार का परिवार है। इस प्रकार एक सामानिक
चार अग्रमहिषियो के चार हजार मूल देवियों का परिवार है।
प्रकार लोकपालों के भी चार-चार अग्रमहिषियॉ और चार
हजार मूल देवियों का परिवार है। ऐसा श्री भगवती व ठाण
लिखा है, किन्तु स्थानांग सूत्र में शक्रेन्द्र के लोकपाल 'सोम'

ह तथा 'यम' के छह और 'वरुण' के सात अग्रमहिषियाँ भी ताई है, तथा ईशानेन्द्र के लोकपाल सोम और यम के सात-सात, रुण के ९ और वैश्रमण के ८ अग्रमहिषियाँ भी बताई है। ामानिको की तरह त्रायस्त्रिंशकों के भी समझ लेना चाहिये।

यदि सम्पूर्ण भव की अपेक्षा प्रश्न हो तो देव-देवियों की स्थिति को गुणा करने से सम्पूर्ण भव की मूल देवियाँ भी समझ में ना सकती है ❂।

५५. प्रश्न - कोई साधु अथवा साध्वी, चन्द्र, नक्षत्र, योगिनी अच्छे देख कर तथा दिशाशूल टाल कर विहार करते है, उनको लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है या नहीं?

उत्तर - नक्षत्रादि के फलाफल गृहस्थ को न बताते हुए और अपनी कल्प-मर्यादा को कायम रखते हुए ज्ञानादि की वृद्धि के लिए यदि शुभ नक्षत्रादि का संयोग देख ले, तो उसमें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगना संभव नहीं है। ठाणांग और समवायांग सूत्र मे भी १० नक्षत्र ज्ञान-वृद्धि करने वाले बतलाए है और अन्य स्थानों पर भी नक्षत्रादि कई बातो का उल्लेख मिलता है।

❂ निम्न दो गाथाओ में, दो सागर की स्थिति वाले इन्द्र की सात पल्योपम की स्थिति वाली इन्द्रानियो की गिनती बताई गई है -

"दु (वीस) कोडाकोडी, पंचासी कोडिलक्ख इगसयरी॥
कोडी सहस्सा चउ कोडी, सयाणि अडवीस कोडीओ॥
सत्तावन्न लक्खा, चउदस सहस्सा दुसय पंचासी॥
इअ संखा देवीओ, हवंति इन्दस्स जम्मंमि।।"

बावीस कोडाकोडी ८५ लाख कोडी ८५७१४२८ कोडी ५७१४२८५ सख्या वाली इन्द्रानियाँ एक इन्द्र के होती हैं। - डोशी

५६. प्रश्न - पात्र, प्रमार्जनी, रजोहरणादि जिन जीवों के मुकेलक शरीरों से बने हैं, ये अच्छे काम मे यतनापूर्वक जायँ तो जिन जीवों के शरीरों से ये उपकरण बने हैं, उन को पुण्य-बन्ध की क्रिया होती है या नही?

उत्तर - पुण्य-बन्ध, विवेकपूर्वक परिणति होने से होता उन जीवों को कि जिनके शरीर से पात्रादि बने हैं, विवेक होने से पुण्य-बन्ध नही होता, ऐसा भगवती सूत्र श० ५ उ० ६ टीका में लिखा है❖।

५७. प्रश्न - श्रावक के चौथे व्रत से आठवे व्रत तक कि करण योग से त्याग होना चाहिये?

उत्तर - श्रावक ४९ भंगों में से किसी भी भंग से अणुव्र धारण कर सकते है। इसका उल्लेख भगवती सूत्र के ८ शतक के पांचवें उद्देशक मे है तथा राजेन्द्र कोप के 'अणुव्र शब्द में भी ४९ भंगो में से किसी भी भंग से अणुव्रतादि १२ व को धारण करने का उल्लेख करते हुए २७ अंक जितने बताये हैं।

५८. प्रश्न - बारह व्रत पालने वाला श्रावक रात्रि-भो कर सकता है या नहीं? यदि करे तो उसके कौनसे व्रत अतिचार लगता है?

❖ जिस प्रकार अविरति तो सजह ही आती रहती है, किन्तु वि सहज नहीं आती, असंयम की क्रिया भी सहज ही लगती रहती है, पर स की क्रिया इस प्रकार सहज मे, विना विवेक के नहीं आती। इसके लि विरति के योग्य परिणति आवश्यक है, उसी प्रकार पुण्य-बन्ध के लि विवेक की आवश्यकता रहती है - डोशी।

उत्तर - श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार विविध प्रकार से धारण कर सकता है, तदनुसार जिसके रात्रि-भोजन का त्याग और वह रात्रि-भोजन करे, तो उसके व्रतों मे दोष लगता है। त्र-भोजन का परित्याग श्रावक के सातवे व्रत मे समावेश होता यह उपभोग-परिभोग की कालाश्रित मर्यादा है। रात्रि-भोजन त्याग को तोडने से मुख्यतः सातवे व्रत मे और गौणतः अन्य नेक व्रतो में दोष लगता है।

५९. प्रश्न - श्रावक को नमुक्कारसी, पोरसी आदि के चक्खाण किस करण योग से कराये जाते है? जब श्रावक के ाग के ४९ भंग है, तो विना करण योग के त्याग क्यो कराये ते है?

उत्तर - नमुक्कारसी आदि पच्चक्खाण करण योग से कराने पद्धति नही है। पच्चक्खाण के पाठो मे करण योग को स्थान नही मिला। पाठों पर विचार करते एक करण से पच्चक्खाण ना स्पष्ट होता है और इसी की आवश्यकता है। योग भी याख्यान करने वाले के ही समझना चाहिये।

६०. प्रश्न - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत पर सब से ऊँची वस्तु ग है?

उत्तर - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत पर सबसे ऊँचे शक्रेन्द्र और ानेन्द्र के प्रासाद (महल) है।

६१. प्रश्न - जीव, पहले परित्त-संसारी होता है या म्यग्दृष्टि होता है, अथवा शुक्ल-पक्षी?

उत्तर - जीव पहले शुक्लपक्षी होता है, इसके बाद सम्यग्दृष्टि ार उसके बाद परित्त-संसारी होता है। यह बात श्री भगवती सूत्र

शतक ३ तथा शतक २६ और शतक ३० आदि स्थानों मे
होती है। अनेक स्थानों के उल्लेखों से यह प्रतीत होत
जिस जीव का संसार परिभ्रमण काल किंचित् न्यून अद्ध
परावर्त्तन ही अवशेप रहता है, वही शुक्लपक्षी माना ज
शुक्लपक्षी होते समय तो प्रत्येक जीव का ससार-भ्रमण
समान ही अवशेप रहता है। इसलिए शुक्लपक्षी की जघन्य
उत्कृष्ट स्थिति नही हो सकती। बन्धी-शतक आदि से शुक्ल
की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तादि की प्रतीत होती है, वह शुक्लपक्षी
समय जो स्थिति थी, उसमें से उस स्थिति को भोगने के
इतनी ही अवशेप रही समझनी चाहिए, किन्तु यह नहीं सम
चाहिए कि वह उतने ही समय से शुक्लपक्षी हुआ है।

६२. प्रश्न - जिसका सम्यक्त्व दशा में आयु बन्धा ह
देवीपने उत्पन्न हो सकता है या नही? क्योंकि श्री पार्श्व
भगवान् की २०६ आर्यिकाएँ उत्तरगुण की विराधिका होकर दे
उत्पन्न हुई। ऐसा निरयावलिका सूत्र मे लिखा है, तो उन्होंने
गुणस्थान मे आयुष्य का वन्ध किया था?

उत्तर - जीव ने पहले स्त्री-वेद का वन्ध कर लिया हो
वह वात निराली है। अन्यथा सम्यक्त्व दशा में सात बोलों का
नहीं होता, तदनुसार स्त्री-वेद का भी वंध नही होता।
भगवती श० ३० के अभिप्राय से सम्यक्त्व दशा में, भवन
वाणव्यन्तर और ज्योतिषी के आयु का भी वन्ध नही हो सक
इस दृष्टि से उन साध्वियों के आयुष्य का वन्ध सम्यक्त्व द
नहीं हुआ-यही मानना ठीक है। २०६ आर्यिकाओं के सम्यक्
तो उसी वर्णन में पासत्थादि कहते हुए ज्ञान, दर्शन और चारि

ो बताये हैं। दर्शन से अलग होने का अर्थ सम्यक्त्व से भिन्न ोहै। यही बात भगवती श० १० उ० ४ के मूल की टीका से "ज्ञानादि से बाह्य" उल्लेख से भी सिद्ध होती है। इसलिए ो आयुष्य का बन्ध, प्रथम गुणस्थान मे मानना उचित है।

६३. **प्रश्न** - जिसने मिथ्यात्व दशा मे देवगति का आयुष्य लिया, वह आराधक होता है, या विराधक?

उत्तर - वह वास्तविक आराधक तो नही हो सकता, किंतु जीव, चारित्रादि क्रिया का आराधक हो सकता है❀।

६४. **प्रश्न** - जिसने सम्यक्त्व में आयुष्य का बन्ध कर लिया, चारित्र के मूल अथवा उत्तरगुण का विराधक हो सकता है?

उत्तर - कोई जीव विराधक हो सकता हैं, कोई नही भी ।

६५. **प्रश्न** - प्रथम गुणस्थान मे स्त्री-वेद बांध लेने के बाद गुणस्थान में देवायु का बन्ध किया, तो ऐसा जीव आराधक है, या विराधक?

उत्तर - ऐसे जीवों में से कोई आराधक भी हो सकते हैं कोई नही भी।

६६. **प्रश्न** - केवली को अनुकूल परीषह कितने होते हैं?

उत्तर - केवली भगवान् को अनुकूल परीषह एक भी नहीं ा है।

❀ मिथ्यादृष्टि अथवा अभव्य जीव, जैन-साधुता की क्रिया पाल कर ग्रैवेयक तक मे जा सकता है। वहाँ मिथ्यात्व दशा होते हुए भी चारित्र अपेक्षा आराधना कही जा सकती है और **"सीलसंपन्ने-नाममेगे सम्पन्ने"** भगवती के इस पाठ का यही तात्पर्य होगा - डोशी।



६७. प्रश्न - आहारक-शरीर-लब्धि, चौंदह पूर्व ज्ञान पढ़ने पर ही प्राप्त हो सकती है या कम पढने पर भी हो सकती है?

उत्तर - मुनियों को आहारक-लब्धि, चौदहवे पूर्व की पढ़ाई पूर्ण होने के पूर्व (तेरह पूर्व पूर्ण पढ़ जाने और चौदहवें पूर्व पढते हुए उसे पूर्ण करने के पूर्व) भी प्राप्त हो सकती है। कुछ न्यून को गौण करने पर वे १४ पूर्वधर कहलाते हैं।

६८. प्रश्न - पासत्था, उसन्न, कुशीलादि साधु किस गुणस्थान में आयुष्य का वन्ध होता है और वे आराधक होते है या विराधक?

उत्तर - पासत्थादि कई उस अवस्था को छोड कर शुद्ध उग्र-विहारी होकर श्रेणी का आरोहण कर, बिना आयुष्य बांधे मोक्ष में चले जाते हैं। कोई शुद्ध उग्रविहारी होकर देवगति का आयुष्य बांधते हैं और आराधक होते हैं। और कोई उसी अवस्था मे ही रहते हुये किसी भी गति का आयुष्य बांधते हैं और विराधक बन जाते हैं। वे आयुष्य का वन्ध भी तीसरे गुणस्थान को छोड़ कर पहले से सातवें गुणस्थान तक किसी भी गुणस्थान में कर सकते हैं।

६९. प्रश्न - आत्मांगुल, उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, इनमें भिन्नता क्या है? इनका व्यवहार किस नाप में होता है?

उत्तर - भरतादि क्षेत्र के प्रमाणयुक्त मनुष्यों के अंगुल को 'आत्मांगुल' कहते हैं। यह अंगुल सदा-काल समान नहीं रहता। इससे उस काल के मनुष्यों द्वारा कूप, तालाव, वन, ग्राम, पात्र आदि नापे जाते हैं। भगवान् महावीर के आत्मांगुल

गुल विशेष को 'उत्सेधांगुल' कहते है। इससे चारों गति के ावों की अवगाहना नापी जाती है। उत्सेधांगुल से हजार गुण ड़ा 'प्रमाणांगुल' होता है। इससे रत्नप्रभादि पृथ्वीकाण्ड पाताल-लश, भवन, नरकावास, देवलोक, विमान, विजय, भरतादि द्वीप, मुद्रादि की लम्बाई-चौड़ाई आदि नापी जाती है।

७०. प्रश्न - एक मनुष्य, खेती का काम करता है और क सट्टा करता है। इन दोनों में अल्पारंभी कौन है और महारंभी ोन है?

उत्तर - मर्यादा, तादाद और भावना की तरतमता से विभिन्नता ा सकती है।

७१. प्रश्न - पुण्यानुबन्धी-पुण्य सावद्य है, या निरवद्य? भव्य जीव भी पुण्यानुबन्धी-पुण्य का उपार्जन कर सकता है ा नहीं? यह सम्यक्त्व का कारण भी होता है या नही? ़ण्यानुबन्धी-पाप और पापानुबन्धी-पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर - पुण्यानुबन्धी-पुण्य के कारणों पर विचार करते ाह निरवद्य प्रतीत होता है। चारित्र-क्रिया की आराधना के नुसार इस पुण्य का उपार्जन, अभव्य जीव भी कर सकता है ौर यह पुण्य, भव्य-जीव के लिए सम्यक्त्व गुण का कारण भी ो सकता है।

पूर्व-भवोपार्जित पाप की प्रधानता होते हुए भी जिससे ़ुण्य-बंध का हेतु हो सकता हो, उसे 'पुण्यानुबन्धी-पाप' समझना ाहिये। चण्डकोशिकादि की तरह।

पूर्व-भवोपार्जित पुण्य की प्रधानता होते हुए भी जिससे ाप-बन्ध का हेतु हो सकता हो, तो उसे 'पापानुबन्धी-पुण्य' मझना चाहिये। जैसे - ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती।

पूर्व-भवोपार्जित पाप भुगत रहा है और आगेके लि पाप का उपार्जन कर रहा है, तो उसे 'पापानुबन्धी-पाप' चाहिए। जैसे बिल्ली आदि।

७२. प्रश्न - अल्पबहुत्व में तेऊकाय के जघन्य और अवगाहना के जीवों में कम कौन हैं और अधिक कौन है?

उत्तर - तेउकाय के उत्कृष्ट अवगाहना के जीवों से अवगाहना के जीव असंख्य गुण अधिक हैं। भगवती शतक १ ४४ बोलों की अल्पबहुत्व और ९८ बोल की अल्पबहुत्व से बात जानी जा सकती है।

७३. प्रश्न - परमाणु का संस्थान क्या है?

उत्तर - अनित्थंस्थ। अर्थात् अजीव के परिमण्डल पांच संस्थानों से अतिरिक्त संस्थान।

७४. प्रश्न - व्यवहार-राशि और अव्यवहार-राशि का खु शास्त्र में है क्या?

उत्तर - भगवती शतक २८ के मूलपाठ से तथा प्र और जीवाजीवाभिगम आदि की टीका से व्यवहारराशि अव्यवहारराशि सिद्ध होती है। अव्यवहार राशि के जीव तो और सूक्ष्म अनादि निगोद में ही मिलते हैं और व्यवहार-रा जीव सभी दण्डकों में हैं।

७५. प्रश्न - समवायांग २७ वें में मोहनीय कर्म की प्रकृति, वेदक-सम्यक्त्व की सत्ता में कही है। उसमें एक कौनसी टालनी चाहिए?

उत्तर - वेदक-सम्यक्त्व वन्ध अर्थात् क्षयोपशम सम के हेतु भूत जो सम्यक्त्व-मोहनीय है, उसके वियोजक जीव

यक्त्व-मोहनीय के बिना शेष २७ प्रकृति की सत्ता समझना
हिये।

७६. **प्रश्न** - तीन पल के तिर्यच युगलिको मे जघन्य
गाहना कितनी है ?

उत्तर - उत्पन्न होते समय अंगुल के असंख्यातवे भाग और
ने समय की अपेक्षा प्रत्येक धनुष प्रमाण जघन्य अवगाहना
ती है।

७७. **प्रश्न** - असंज्ञी पंचेन्द्रिय में चक्षुइन्द्रिय से देखने की
क्त ५९०८ धनुष की पन्नवणा सूत्र में कही है, तो क्या असंज्ञी
न्द्रिय अपना पूरा शरीर-जो एक हजार योजन है उसे नहीं देख
ता ?

उत्तर - जीवों की अवगाहना उत्सेधांगुल से बताई है और
न्द्रियों का विषय आत्मांगुल से बताया है। इसलिये वह अपने पूरे
र को देख सकता है।

७८. **प्रश्न** - बीस प्रकार का धोवन पानी किस सूत्र में
ा है ? धोवन के अलग-अलग नाम व काल किस सूत्र मे है ?

उत्तर - आचारांग सूत्र श्रु. २ अ. १ उ. ७ में आठ प्रकार
धोवन, नाम सहित तथा "**अण्णयरं वा तहप्पगारं**" शब्द से
से मिलता-जुलता अन्य प्रकार का धोवन बतलाया है। इसके
आठवें उद्देशक मे १२ प्रकार का धोवन नामपूर्वक बताया है।
ल्पसूत्र की ९ वीं समाचारी के अर्थ में भी २० प्रकार का
लेख है। इस प्रकार इनसे मिलता जुलता अन्य प्रकार का
दोष धोवन भी हो सकता है और लिया जा सकता है। गुड के
का धोवन, दशवैकालिक सूत्र अ. ५ गाथा ७५ में बताया है।



आचारांग सूत्र श्रु. २ अ. १ उ. ७ तथा दशवैकालि की उपरोक्त गाथा में तत्काल का धोवन लेने का निषेध कि देर का लेने का निषेध नहीं किया। यदि सूत्रकार को अमुक के बाद के धोवन की भी रुकावट होती, तो मना क सूत्रकार ने तो उल्टा गाथा ७६ और ७७ में अधिक देर क लेने का विधान किया है। अतः धोवन के काल के विषय में समझ लेना चाहिये कि उस दिन का धोवन लिया जा सक बासी धोवन तो कोई सभ्य गृहस्थ रखता ही नही है।

७९. प्रश्न - गर्म पानी लेने में शास्त्र-प्रमाण क्या है?

उत्तर- आचारांग सूत्र श्रु. २ अ. १ उ. ७ तथा ठाणांग उ. ३ और दशवैकालिक आदि में गरम पानी लेने का वि वर्षा में ३ प्रहर, शीत में ४ प्रहर और उष्णकाल मे ५ प्रह का कालमान दशवैकालिक सूत्र अ. ५ उ. २ गा २२ के लिखा है।

८०. प्रश्न - रजोहरण की डंडी का माप कितना और सूत्र में लिखा है?

उत्तर - डंडी का परिमाण ३२ अंगुल और फलि परिमाण ८ अंगुल होना, निशीथ उ. ५ के अर्थ में लिखा है।

८१. प्रश्न - हिंसा कितने प्रकार की है और किस आधार से है?

उत्तर - हिंसा, द्रव्य और भाव रूप दो भेद से है उल्लेख भगवती सूत्र शतक १ उ. ३ के अर्थ में है। इसके प्रकारान्तर से भी हिंसा के भेद हो सकते हैं।

८२. प्रश्न - भगवान् महावीर प्रभु को सम्यक्त्व के

। भव में हुई और किससे प्राप्त हुई। सम्यक्त्व प्राप्त होने के कितने भव करके तीर्थंकर हुए? सूत्रानुसार बतावें।

उत्तर - भगवान् महावीर को 'नयसार' के भव में मुनिराज समीप धर्म सुनने से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। सम्यक्त्व प्राप्ति असंख्यात भव बाद तीर्थंकर हुए। जिसका खुलासा दृष्टिवाद चौथे भेद में था। अब तो "त्रिशष्टि-शलाका-पुरुष चरित्र" में ता है।

८३. प्रश्न - नामादि चार निक्षेपों का अर्थ क्या है?

उत्तर - नाम निक्षेप - जैसे किसी का नाम महावीर, कुमार आदि।

स्थापना निक्षेप - मूलवस्तु के फोटू-चित्र, मूर्ति आदि।

द्रव्य निक्षेप - भाव शून्य को द्रव्य कहते हैं। जैसे प्रतिक्रमण सीखने वाले, सीख लेने के बाद वह भाषा आदि बोलते हैं।

भाव निक्षेप - उपयोगयुक्त।

८४. प्रश्न - अठारह पापों में देश से कितने और सर्व से तने?

उत्तर - देश से १, ३, ४ शेष १५ सर्व से।

८५. प्रश्न - पांच महाव्रतों में देश से कितने और सर्व से तने?

उत्तर - देश से १, ३, ४ और सर्व से २, ५।

८६. प्रश्न - एक बार विरह पड़ जाने के बाद फिर कितने ल बाद विरह पड़ता है?

उत्तर - आवलिका के असंख्यातवें भाग में तो पुनः विरह ता ही है।



८७. प्रश्न - जीव लगातार कितने समय तक सि
रहते हैं?

उत्तर - जीव यदि लगातार ८ समय तक सिद्ध होते
नवमें समय में तो विरह पड़ता ही है।

८८. प्रश्न - क्या बत्तीस सूत्रों के मूल-पाठ मे स
वस्तु आ गई है?

उत्तर - नहीं, क्योंकि बत्तीस सूत्रों के अतिरिक्त
ज्ञान, अवशेष रहा हुआ है। किन्तु जो सूत्र हैं, वे विशेष
के कहे हुए हैं। अतः सूत्रों की सभी बातें मान्य हैं और
मिलती हुई-अविरुद्ध बातें अन्य ग्रंथों की और टीकाओं
मान्य हैं। किन्तु सूत्र से विरुद्ध कोई विधान हो, तो वह
योग्य नहीं है, भले ही वह टीका या ग्रंथ में हो।

८९. प्रश्न - श्री गौतमस्वामीजी, सूर्य की किरणे पक
अष्टापद पर्वत पर चढ़े, क्या यह बात शास्त्र-सम्मत है? अ
लब्धियों में ऐसी कौनसी लब्धि है कि जिसके द्वारा अष्टाप
पर चढ़ा जा सके?

उत्तर - सूर्य की किरणें पकड़ कर चढ़ने और भरत
बनाये हुये विंब, भगवान् महावीर के समय तक कायम
आदि बातें सूत्र-विरुद्ध है।

लब्धि से गमन हो सकता है, किन्तु सूर्य की किरणें
कर नहीं और अपनी लब्धि से दूसरे को ले जाने की श
नहीं होती है। लब्धिधारियों की गमन की गति भी भिन्न प्र
होती है।

९०. प्रश्न - भगवान् महावीर के २७ भवों का वर्णन
में है या नहीं?

उत्तर - भगवान् महावीर स्वामी के २७ भवों का वर्णन
स्त्र में तो नहीं हैं किन्तु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र आदि ग्रंथो
है। जीव संसार में अनन्त भव कर चुका है, अतः भगवान्
ावीर के २७ मोटे-मोटे भव मानने में बाधा नहीं है।

९१. प्रश्न - भगवान् नेमिनाथजी और राजीमतीजी के
भव का सम्बन्ध सूत्र सम्मत है क्या?

उत्तर - एक जीव, अन्य सभी जीवों के साथ अनन्त
म्बन्ध कर चुका है, तो भगवान् नेमिनाथ और राजीमती के नव
व का सम्बन्ध ग्रंथों में बतलाया गया है उसको मानने में सूत्र से
ोई बाधा नहीं आती है।

९२. प्रश्न - सोलह सतियों का वर्णन किसी सूत्र मे है
या?

उत्तर - इस अवसर्पिणी काल में बहुत-सी सतियाँ हो गई
। उनमें से १६ के नाम ग्रंथकारों ने चुन लिये हैं। सोलह में से
ई सतियों का वर्णन वर्तमान सूत्रों में भी है।

९३. प्रश्न - बलभद्रजी ने एक हिरण को प्रतिबोध दिया,
ह किस सूत्र में लिखा है?

उत्तर - तिर्यंच प्रतिबोध पा सकते हैं, ऐसा सूत्रों से सिद्ध
। यदि बलभद्रजी के द्वारा हिरण ने प्रतिबोध पाया हो, तो इसमें
सम्भव जैसी बात नहीं है।

९४. प्रश्न - मरुदेवी माता ने हाथी के होदे चढ़े हुए
वलज्ञान पाया, ऐसा उल्लेख किसी सूत्र में है क्या?

उत्तर - मरुदेवी माता को हाथी के होदे चढ़े हुए को
वलज्ञान हुआ था, ऐसा ठाणांग सूत्र की टीका में और ग्रंथों में

वतलाया है। इसमें सूत्र से कोई वाधा नही आती है। ः आदर्श भवन मे तथा समुद्र मे गिरते हुए जीव को भी केव होना शास्त्र मे बतलाया है।

९५. प्रश्न - भरतेश्वर और वाहुबलीजी का युद्ध शास्त्र-सम्मत है क्या?

उत्तर - भाई-भाई और पिता-पुत्र भी आपस में पड़ते हैं, तो भरत-बाहुवली भी लडे हो, इसमें असभव बात क्या है?

९६. प्रश्न - चौबीस तीर्थकरों के वीच का अन्तर ब जा रहा है, वह शास्त्र-सम्मत है क्या?

उत्तर - चौबीस तीर्थकरो के २३ जिनान्तर भगवती श. २० उ. ८ में बताए है।

९७. प्रश्न - पर्युषण पर्व आठ दिन के मनाने का वि किस सूत्र में है?

उत्तर - निशीथ सूत्र में कहा कि पर्युषण के दिन, किसी भी प्रकार का किंचित् भी आहार करे, तो चौमासी प्रा आता है। यह नियम पहले तथा आज भी एक ही दिन का जाता है। समवायांग सूत्र के सितरवे समवाय मे तथा कल्प भी एक ही दिन वतलाया है। शेष सात दिन तो उसकी पूर्व के रूप में समझने चाहिये।

९८. प्रश्न - वत्तीस सूत्रों मे नन्दीसूत्र भी है और अन्य कई सूत्र मान्य रखने का उल्लेख है, तो उन्हें भी चाहिये क्या?

उत्तर - नन्दीसूत्र में लिखे हुए आगमो में से कितने

मौजूद ही नहीं है और कुछ मूल रूप से मौजूद नहीं है, उन्हीं के नाम से आचार्यों के रचे हुए है।

९९. प्रश्न - अभव्य जीव, अव्यवहार-राशि से निकल कर ार-राशि में आते हैं क्या? यदि कभी-कभी आते हैं, तो इस निकलते-निकलते अनन्त काल से अभव्य जीव व्यवहार-मे वहुत बढ़ जाएंगे। निकलने का प्रमाण किस सूत्र में हैं?

उत्तर - अभव्य जीव, अव्यवहार-राशि से निकल कर ार-राशि मे नही आते हैं क्योंकि उनका ऐसा ही स्वभाव है।

१००. प्रश्न - अभव्य जीवों की गिनती जघन्य युक्तानन्त यह किन अभव्यो की अपेक्षा से है? केवल व्यवहार-राशि अव्यवहार-राशि के, या दोनों के?

उत्तर - जघन्य युक्तानन्त अभव्य जीव, व्यवहार राशि ।

१०१. प्रश्न - बारह व्रतधारी श्रावक यदि रात्रि-भोजन करे, उसके व्रतों में दोष लगता है या नहीं?

उत्तर - श्रावक के व्रत, शक्ति के अनुसार विविध प्रकार से ा किये जाते हैं। तदनुसार जिस श्रावक को रात्रि-भोजन का ा हो और वह रात्रि-भोजन करे, तो व्रतों मे दोष लगता है। -भोजन त्याग का श्रावक के सातवें व्रत मे समावेश होता है, कि यह खाने-पीने सम्बन्धी उपभोग-परिभोग की काल आश्रित दा है। अतः मुख्य रूप से सातवें व्रत में और गौणरूप से र कई व्रतों में दोष लगता है।

१०२. प्रश्न - श्री नाभि राजा और मरुदेवी माता, युगलिया अथवा नहीं? यदि थे, तो मरुदेवी माता मुक्ति कैसे पा गई, कि युगलिक की गति तो देवलोक की है?

ती है, तदनुसार चक्रवर्तियों के बल मे भी न्यूनाधिकता होना सम्भव है।

१०५. प्रश्न - अतिचार और अनाचार, त्याग की हुई वस्तु के लिए है, अथवा बिना त्याग की हुई वस्तु के लिए है ?

उत्तर - मिथ्यात्व, अज्ञान और हिंसादि त्याग किये हुए के लिए अतिचार और अनाचार का उपयोग है, बिना त्याग के इनका उपयोग नहीं ✢।

१०६. प्रश्न - अतिचार, अनाचार के पूर्व की स्थिति है, तो क्या अनाचार को भी अतिचार में लिया जा सकता है?

उत्तर - नहीं, अनाचार को अतिचार में नहीं लिया जा सकता। अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार का सेवन करने से व्रत में दोष लगता है और अनाचार सेवन करने से व्रत का भंग होता है।

१०७. प्रश्न - दूसरे व्रत में असत्य के त्याग होते हैं और उसके अतिचार में "मृषा उपदेश दिया हो" - कहा जाता है, यह ठीक है क्या ❂।

✢ जैन-कुल मे अनेक व्यक्ति ऐसे हैं कि जिन्होने विधिपूर्वक त्याग तो नहीं किया, किन्तु कुल-परम्परा अथवा सुसंगति के कारण अनेक प्रकार के दुराचार-चोरी, जारी, मास, मदिरादि से बचे हुए हैं। यदि वे उन दुष्कर्मो को हेय ही मानते हैं और उनके अतिचारादि टालते है, तो उत्तम है, किन्तु उन्हे भी त्याग तो कर ही लेना चाहिए - डोशी

❂ प्रश्नकार का अभिप्राय है कि 'मृषोपदेश' तो व्रत की प्रतिज्ञा=मृषावाद विरमण व्रत होना चाहिए, इसे अतिचार क्यो माना गया ? - डोशी



उत्तर - 'मोसोवएसे' - हिंसा मिश्रित सावद्य ... को भी 'मृषा उपदेश' कहते हैं। कोई मन्त्र-औषधादि ... तथा रोग-निवारण के लिए कहे और वह लागू पड़ते ही ... जीव विराधना होती हो, तो इस प्रकार के वचन ... 'मृषोपदेश' कहते हैं। ऐसा उपदेश, दूसरे व्रत के पालक ... देना चाहिए।

दूसरे व्रत में बड़े झूठ के त्याग होते हैं। यदि कोई ... कि "मैं तो झूठ बोला ही नहीं", किंतु वह हिंसाकारी म... अतएव उसके परिवार के लिए मिथ्योपदेश को ज्ञानियों ने ... लिया है। इससे दूसरे व्रत में बाधा आती है, किन्तु बाहर ... मालूम नहीं देता। अतः देश-विराधना से यह अतिचार ... साक्षात् मिथ्या-उपदेश का विषय नहीं है, यदि वैसा ... अनाचार समझा जाता।

१०८. प्रश्न - चौथे व्रत में तो स्व-स्त्री के उपगम... स्त्री के त्याग होते हैं। ऐसी हालत में '... ...हिया...' और **'अपरिग्गहियागमणे'** का अर्थ क्या है, अर्थात -

१. अपनी स्वयं की अल्प उम्र की स्त्री, या अल्प... लिए मानी हुई स्त्री?

२. अपरिगृहीता अर्थात् सगाई की हुई, या जो ... अथवा कुमारी हो?

३. यदि स्वयं की स्त्री के लिए अतिचार हो, तो ... के तो त्याग ही नहीं है, फिर अतिचार कैसा?

❀ लोकपक्ष में भले ही वह सत्य लगता हो - डोशी।

४ अनंगक्रीडा के अतिचार मे क्या समझना, अर्थात् किसी स्त्री, पुरुष, नपुसक के अन्य अंग या हस्त-मैथुन?

उत्तर - १. **'इत्तरियपरिग्गहियागमणे'** (इत्वरिका गृहीतागमन) का अर्थ टीका आदि में तो अल्पकाल के लिए ी हुई स्त्री से गमन बताया है, परन्तु अपनी (स्वय की) अल्प । वाली स्त्री से गमन ही विशेप रूप से सुनने मे आया हैं और क भी प्रतीत होता है, क्योकि कई देशो मे विवाह प्राय लघुवय छोटी उम्र) मे हो जाते है, परन्तु जब तक वह स्त्री-धर्म मे नही वे, उसका पति, उस स्त्री से कामक्रीडा नहीं करता है। इसलिए ल्प उम्र वाली खुद की स्त्री अर्थ ही ठीक है।

२. **'अपरिग्गहियागमणे'** (अपरिगृहीतागमन) का अर्थ वल खुद की सगाई की हुई स्त्री ही समझना ठीक लगता है, योंकि कुमारी आदि के तो 'सौ घर सौ वर' की कहावत प्रसिद्ध है। इसलिये कुमारी (कंवारी) खुद की सगाई की हुई होते हुए ी उससे गमन करना अतिचार है।

३. स्वदार-संतोष व्रत वालो को भी अल्प वय तथा विवाहित आदि खुद की स्त्री से काम-प्रसंग टालना ही चाहिये। सीलिये प्रभु ने वर्जित बताया है। इसका पालन करने पर ही सके व्रत की शुद्धि रह सकती है।

४. **'अणंगक्रीड़ा'** (अनंग क्रीडा) मे स्त्री-पुरुष व नपु के अन्य अंगों से क्रीड़ा तथा हस्त-मैथुन, ये दोनो ही लिए गए है। चतुर्थ व्रतधारी को अपनी पत्नी या अपने पति के अतिरिक्त मैथुन के त्याग ही होते हैं। अतः अनंगक्रीड़ा के अतिचार मे निज-पति व पत्नी के काम सेवन के अंगो के अतिरिक्त अगों से रमण करने को अनंग-क्रीड़ा नाम का अतिचार कहते है।

१०९. **प्रश्न** - 'काम-भोग की तीव्र अभिलाष'. अतिचार में अपनी स्त्री के साथ की हुई तीव्र अभिला. चाहिये, या पर-स्त्री के विषय में? यदि स्वयं की स सम्बन्ध में मानी जाय, तो अपनी स्त्री के लिये त प्रकार का त्याग नहीं है, फिर स्वस्त्री के लिये यह अति लागू हो सकता है?

उत्तर - यह अतिचार भी अपनी ही स्त्री से सम्बन्ध है। जो वाजीकरणादि प्रयोग से अधिक काम-वासना उत के काम में तीव्रता लावे, तो इससे व्रत दूषित होता है।

११०. **प्रश्न** - उपरोक्त अतिचारों में - "गमन कि अनंग-क्रीड़ा की हो, तीव्र अभिलाषा की हो, तो मि दुक्कडं" - ऐसा श्रावक प्रतिक्रमण में बोला जाता है। कोई भी कार्य मर्यादा के बाहर किया जाय, तो वह अति रह कर 'अनाचार' हो जाता है। अतएव प्रतिक्रमण की भ परिवर्तन आवश्यक नहीं है क्या?

उत्तर - वास्तव में जो स्वदार-संतोष व्रत को विशि से पालने वाले हैं, उनको स्वाभाविक वेदजनित बाधा उपश अतिरिक्त भोगेच्छा ही नहीं होनी चाहिये-ऐसा अधिकार है। करता है, तो स्वपत्नी होते हुए भी अनंग-क्रीडा, तीव्र अ आदि से, बाहर व्रत-भंगसा दिखाई नहीं देता, किन्तु अन्त व्रत मलीन होता है। जिससे देश व्रत-भंग होकर अतिचार है। अतएव इन दोषों से बचना चाहिये।

१११. **प्रश्न** - चौमासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण दो करते हैं, तो दोनों प्रतिक्रमण में पूरे छह आवश्यक क

: यदि पहले में कम करते है, तो उसका कारण और प्रमाण
है?

उत्तर - पहला प्रतिक्रमण चौथे आवश्यक तक किया जाता
र दूसरे में छहो आवश्यक पूर्ण किये जाते हैं।
प्रतिक्रमण, व्रतादि में लगे हुए दोषों की आलोचना करने के
है, सो अतिचारों की आलोचना चौथे आवश्यक तक पूर्ण हो
है। इसलिये प्रथम प्रतिक्रमण चौथे आवश्यक तक ही किया
है। अतिचारों के कारण आत्मा में मलिनता आ गई थी, उसे
करके शुद्धि करने के लिये पाँचवाँ आवश्यक है और छठा
श्यक भविष्यकाल से सम्बन्ध रखता है। इसलिये पीछे के
आवश्यक बाद में किये जाते हैं। श्री अनुयोगद्वार सूत्र में
वें आवश्यक का नाम "**वणतिगिच्छा**" अर्थात्-'फोड़े का
ज' लिखा है। चारित्ररूपी पुरुष के अतिचाररूपी भाव व्रण
ड़े) को मिटाने के लिये दवाई रूप पाँचवाँ आवश्यक है। छठे
श्यक का नाम 'गुणधारणा' है। पहले के दोषों की आलोचना
रूप चौथे आवश्यक तक पहला प्रतिक्रमण और दूसरे में
ों आवश्यक करना ठीक है। आवश्यक भाष्य और
नसारोद्धार आदि में भी अतिचारों तक कहने का उल्लेख है।

११२. प्रश्न - साधु को सचित्त नमक काम में लेना उचित
क्या? यदि नहीं, तो आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में
का लिखा है, उसका क्या समाधान है? उस पाठ का अर्थ
चित्त खा लेने का है'-यह भी समझ में नहीं आता। अतएव
टतापूर्वक समाधान फरमावें?

उत्तर - (अ) सचित्त नमक साधु को नही भोगना चाहिये।

द्वितीय आचारांग के पाठ के अनुवाद मे अचित्त नमक
लिखा है सो ठीक ही है। मूलपाठ मे इसके लिए 'अ
(अप्रासुक) शब्द का प्रयोग किया है। इस 'अफासुय'
केवल सजीव=सचित्त ही नहीं होता है किन्तु दूसरा अ
है। यदि **'अप्रासुक'** शब्द का अर्थ केवल 'जीव सहित'
ज़ाय तो गड़बड़ होगी. क्योंकि सूत्रो मे कई जगह यह
है, जिसका अर्थ 'सजीव' नही होता। उदाहरण के लिये दे

१. आचारांग सूत्र श्रु २ अ १ उ. १ मे-एक
साधु-साध्वियों के लिये बनाए हुए, खरीदे हुए, उधार लि
जबरन छीने हुए, विना इजाजत दिए हुए और सामने
आहारादि को 'अप्रासुक' वतलाया है। इस जगह 'अप्रासुक
का अर्थ-"सजीव" संगत नहीं होता है। क्योंकि बना
खरीदा हुआ, उधार लिया हुआ, वल-प्रयोग कर छीना हु
बिना इजाजत दिया हुआ आहार, निर्जीव होते हुए भी 'अ
माना गया है। इसी प्रकार शय्या अध्ययन मे शय्या के लि
अध्ययन मे वस्त्र के लिए और पात्र अध्ययन मे पात्र के
लिखा है। वस्त्र, पात्र आदि तो अचित्त ही हैं किन्तु
कारणों से उनको यहां अप्रासुक (अकल्पनीय) कहा है।

२. लवण (नमक) सूत्र के आगे के दोनों सूत्रों
एक में श्रमण-ब्राह्मण के लिए, गिनती करके जो आहार
गया है, वह साधु के लिए अप्रासुक बताया गया है, जब कि
बनाया आहार सजीव नहीं होता, फिर भी इसे 'अप्रासुक'
है और दूसरे सूत्र मे श्रमण-ब्राह्मण के लिए बनाये हुए, अ
पुरुषान्तर नहीं होने, वाहर नहीं निकालने और खुद के अ

ही लेने आदि कारणों से 'अप्रासुक' और 'अनेषणीय' वताया यदि वही आहार पुरुषान्तर हो जाता है, वाहर निकल जाता हे श्रमण-ब्राह्मणो से बचा हुआ भोजनदाता (मालिक) के पास जाता है और उसके भोगने के बाद बचा है, तो उस आहार प्रासुक और एषणीय लिखा है। इस पर से स्पष्ट हो जाता है निर्जीव होते हुए भी अप्रासुक हो सकता है।

३. आचारांग सूत्र श्रु २ अ. १ उ २ का प्रथम और तृतीय । भी इस विषय मे साक्षी है। वहाँ भी निर्जीव आहार को अन्य रणो से अप्रासुक बतलाया है।

४ आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध के अ १ उ. ७ मे **ालोहड'** (मालापहृत) अर्थात् ऊपर की मंजिल या छीके आदि चे स्थान से उतार कर दी जाती हुई अथवा नीची जगह से काल कर दी जाती हुई वस्तु को निर्जीव होते हुए भी अप्रासुक ताया है।

५. आचारांग श्रु. २, १, ९ के प्रथम सूत्र मे लिखा है कि ाता' अपने लिये बनाया हुआ आहार, अपने लिये फिर वाद मे ना लेने की भावना से देना चाहे, तो ऐसे निर्जीव आहार को भी प्रासुक बताया है और अन्तिम सूत्र में दूसरे के लिये ले जाता आ आहार, उसकी इजाजत के बिना दिया जाय, तो उसे भी प्रासुक बताया है।

६ दसवें उद्देशक में गन्ना और उसके टुकड़े, छोते फलियां आदि निर्जीव होते हुए भी खाने के बनिबस्त फेकने की अधिकता के कारण अप्रासुक बताया है।

७. उपरोक्त सूत्र के अगले सूत्र में बहुत गुठली और

कांटेवाले निर्जीव फल को भी अप्रासुक बता कर लेने ≈
किया है और यह भी लिखा है कि यदि गृहस्थ, अति अ
तो साधु कहे कि 'यदि तुम्हें देना है, तो गुठली काँट ग
का गिर दो।' यदि वह सजीव होता, तो साधु गुठली को
गिर को देने का कैसे कह सकता है?

८. आचारांग श्रु २, २, ३ मे शय्यातर के घर का
पानी अप्रासुक बतलाया है। यहाँ भी अप्रासुक का अर्थ
नहीं होकर दूसरे (शय्यातर-पिंड) दोप का ही बोधक होग

उपरोक्त बातों पर विचार करते हुए यही प्रतीत होत
गोचरी के अन्यान्य दोष जिस वस्तु में लगते हों, अध
वस्तु को परठनी पड़ती हो, जो शय्यातर के घर की हो, व
टिकाऊ नहीं हो, काम में आने योग्य नहीं हो, ऐसी सभी
निर्जीव होते हुए भी साधु-साध्वी के लिए अप्रासुक एवं अ
हैं। इसी प्रकार यदि अनावश्यक नमक, दूसरी वस्तु के व
गया हो और वह अधिक मात्रा में आ गया हो, तो ऐसी
उसे परठना पड़ेगा। उसकी अप्रासुकता अनेषणीयता (अ कल
अनावश्यकता आदि परठने के कारण है, सजीवता के
नहीं। क्योंकि सजीव नमक को ग्रहण करना दशवैकालिक
में साधु के लिये अनाचीर्ण बतलाया है।

आचारांग २, ६, २ में लिखा है कि यदि सचित्त प
जाय तो परठ दे और उस पात्र को भी वहां तक नहीं पों
धूप मे भी नहीं रखे, जहां तक कि वह स्वयं नहीं सूख
ऐसी दशा में सचित्त नमक को काम मे लेने की भगवान क
कैसे हो सकती है? अर्थात् कदापि नहीं हो सकती।

११३. प्रश्न - आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के पात्र
ययन उ. २ में पात्र लेने की विधि बताते हुए अर्थ मे पानी
ने के विषय में लिखा है, तो यह अर्थ ठीक है क्या?

उत्तर - दूसरे उद्देशक का विषय पात्र-याचना का नहीं है।
, आहार पानी की याचना के लिये जब गृहस्थ के यहाँ जावे,
पात्र-व्यवस्था किस प्रकार रखनी-यही विषय वहाँ आया है।
ाकार ने भी वहां ऐसा ही अर्थ किया है। पात्र-याचना की
ध तो पहले उद्देशक मे है, दूसरे उद्देशक में लिखा है कि -
धु आहार-पानी याचने के लिये गृहस्थ के यहाँ जावे, तो
ादि देख लेवे, पूँज लेवे। शीतोदक आ जाय, तो उसे पानी-
त परठ दे। यदि पानी की दूसरी व्यवस्था हो जाय अर्थात्
स्थ यदि उस पानी को वापिस अपने बर्तन में ले ले तो जब
पात्र गीला हो, तो उसको पोंछे नहीं, सूखावे नहीं, वह स्वतः
जाय तब पोंछे। इत्यादि पात्र व्यवस्था का विधान है।

११४. प्रश्न - ३२ सूत्र भगवान् के खुद के फरमाये हुए हैं,
अन्य के। यदि भगवान् के फरमाये हुए हैं, तो सूत्रो में 'जाव'
द से पाठ में संकोच किया है, तो क्या यह भी भगवान् ने ही
या है?

उत्तर - तीर्थकर भगवान् तो अर्थ फरमाते हैं। द्वादश (बारह)
सूत्रों का गूंथन गणधर महाराज करते हैं। अनंगप्रविष्ट (अंग-
ब) सूत्रों को गूंथने वाले श्रुतस्थविर हैं। इस प्रकार नन्दीसूत्र की
ा और आवश्यकचूर्णि आदि में लिखा है। जिसका वर्णन एक
विस्तार से हो चुका, ऐसे पाठों का अन्य स्थलों पर 'जाव'
द से संकोच किया गया है।

११५. प्रश्न - शुभ भाव से मुनि को आहारादि दा
वाले गृहस्थ को लाभ होता है, या हानि?

उत्तर - लाभ होता है अर्थात् कर्मों की निर्जरा होती है

११६. प्रश्न - यदि वह आहार मुनिवर को शुभ परि
उसका लाभ, दाता को होता है?

उत्तर - हां, दाता को लाभ होता है क्योंकि दाता ने
भावों से मुनि को सुखदायक (संयम सहायक) हो-ऐसे वि
दिया है। अतः लाभ होता ही है और एकान्त कर्म निर्जरा हो

११७. प्रश्न - दाता ने शुभ भावों से आहार दिय
मुनि ने विना उपयोग के खाया, जिससे अशुभ परिणमन हु
इस अशुभ परिणमन का अशुभ फल आहार-दाता को होगा

उत्तर - नहीं, क्योंकि दाता ने तो शुभ भाव से शुभ प
हो, इस विचार से दिया था। अतएव दाता को तो शुभ फल
प्राप्ति होगी।

११८. प्रश्न - यदि दाता ने कुवुद्धि (अशुभ भावों)
को आहार दिया, किन्तु वह आहार मुनि को शुभरूप प
हुआ, तो दाता को उसका शुभ-फल होगा क्या?

उत्तर - नहीं, उसकी द्वेष-वुद्धि के कारण उसे अशु
ही मिलेगा।

११९. प्रश्न - (अ) साधु को विना राग और वि
के, केवल अतिथि-सत्कार के कारण आहार दिया हो अ
मुनि को पथ्यकर होकर शुभरूप परिणमा हो, तो उसका द
क्या फल होगा?

(आ) यदि उपरोक्त आहार मुनि को अशुभरूप परिणमे तो नका दाता को अशुभ फल होगा क्या?

उत्तर – उपरोक्त दोनों प्रकार के दानों के दाता को पुण्य प फल होगा।

१२०. प्रश्न – (अ) आहार अस्वादिष्ट हो जाने से 'घरवाले राज होंगे' – इस विचार से उसे फेंकने के लिए छुपा कर रखा ौर मुनि के आने पर बिना द्वेष के ही-अस्वादिष्ट आहार को कालने के विचार से-मुनि को बहरावे और वह मुनि को भरूप परिणमे, तो उसका दाता को शुभरूप फल होगा क्या?

(आ) यदि उपरोक्त आहार अशुभरूप परिणमे, तो उसका ाता को क्या फल होगा?

उत्तर – दोनों अवस्थाओं में अशुभ फल ही होगा।

१२१. प्रश्न – (अ) विष खाना शरीर के लिए घातक है, कन्तु वही विष कभी नीरोग करने वाला भी हो सकता है। किसी ाचक ने बहुत ही लाचारी से किसी से विष माँगा, किंतु दाता ने हीं दिया। याचक की इच्छा पूर्ण नहीं हुई और उसकी मृत्यु हो ई, तो इससे दाता को क्या फल हुआ?

(आ) किसी ने रोगी के हित की बुद्धि से विष दिया और ससे रोगी नीरोग हो गया, तो इससे दाता को क्या लाभ हुआ?

उत्तर – रोग और विष के गुण-दोष को अच्छी प्रकार से मझने वाला, रोगी की हित-बुद्धि से विवेकपूर्वक विष दे अथवा नहीं दे, तो दोनों अवस्था मे मुख्यतः पुण्य फल-दायक हो सकता है।

१२२. प्रश्न – शुभ फल की प्राप्ति, वस्तु के अच्छी या

हलकी होने पर है, या दाता के प्रशस्त भावों की अपेक्षा पर ि
है?

उत्तर - शुभ फल की प्राप्ति का मुख्य आधार दा
प्रशस्त भाव है।

१२३. प्रश्न - श्री भगवती सूत्र श० १ उ० ७ में
चौभंगी, इस प्रकार है;-

"देसेणं देसं आहारेइ, देसेणं सव्वं आहारेइ, सव्वेणं दे आहारेइ, सव्वेणं सव्वं आहारेइ" इसमे से तीन भंग निषेध किया और **"सव्वेणं सव्वं आहारेइ"** भंग स्वीकार कि जब जीव मारणान्तिक समुद्घात, देश से करता है, तब के कुछ प्रदेश आहार ग्रहण करके फिर उत्पन्न होते हैं, दशा में **"सव्वेणं सव्वं आहारेइ"**-यह एक ही भंग प्रकार हो सकता है?

उत्तर - उपरोक्त चौभंगी में तीन भंगों का निषेध किन्तु दो भंग का निषेध है और दो की स्वीकृति है। जब जी देश-समुद्घात में पहले आहार लेने के बाद उत्पन्न होता है, वह आहार उसके समस्त प्रदेशों के लिए है। जीव के आगे पहले सभी प्रदेश सम्मिलित रूप से ही आहारक तथा अनाहारक गिने जाते हैं, किन्तु कुछ आहारक और कुछ अनाहारक नहीं गिने जाते। क्योंकि जीव को मारणान्तिक-समुद्घात में असंख्य समय का अन्तर्मुहूर्त्त लगता है। इसमें आगे जाने वा प्रदेश अनाहारक नहीं रह सकते। इसी प्रकार आहारक वैक्रिय आदि समुद्घातों के विषय में भी समझना चाहिए। अतः 'सव्वेणं वा देसं आहारेइ, सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ' इन दोनो भंगो मे कोई बाधा नहीं आती।

****

१२४. प्रश्न - सातवें व्रत के छब्बीस बोलों में सचित्तविहिं'' २५ वाँ बोल है। श्रावक सचित्त वस्तु के सेवन ो मर्यादा करता है। इस व्रत के अतिचार में ''सचित्ताहारे''- चित्त का आहार किया हो, को अतिचार माना है। यह किस कार समझा जाय?

उत्तर - जितनी सचित्त वस्तु त्याग के बाहर खुली रहती है, ह तो है ही, किन्तु मर्यादा के भीतर के सचित्त को अचित्त की ुद्धि से खाया-पिया हो, तो अतिचार लगता है। जैसे कि - वृक्ष । तुरन्त का उतरा हुआ कच्चा 'गोंद' आदि तथा काल अतिक्रमण ार के गरम जल आदि का सेवन करे तो अतिचार लगता है।

१२५. प्रश्न - श्री पुप्फचूलिया सूत्र में 'अंगति' अनगार ो ज्योतिषी में उत्पन्न हुए लिखा, सो क्या वे मूलगुणों के वराधक थे?

उत्तर - अंगति अनगार का वर्णन 'पुप्फिया' में है। उसमें 'मूलगुण विराधना'-ऐसा नहीं लिखा, किन्तु विराहियसामन्ने (चारित्र की विराधना कर के) ऐसा लिखा है। इसलिए संयम की विराधना प्रमाणित होती है।

१२६. प्रश्न - कामदेव श्रावक, पौषध सहित प्रभु को वन्दन करने गये, वहां लिखा कि वे ''शुद्ध वस्त्र धारण कर के गये'' तो वे वस्त्र कौन-से थे? क्या पहले वे अशुद्ध वस्त्र सहित थे?

उत्तर - कामदेव श्रावक उपवासरूप पौषधयुक्त भगवान् को वन्दने गये थे और वहाँ से वापस आने के बाद पारणा किया था। उपवासरूप पौषध में वस्त्रों का परिवर्त्तन हो सकता है। कामदेव श्रावक के पहले अशुद्ध वस्त्र नहीं पहने हुए थे किंतु

पौषध योग्य वस्त्र पहने हुए थे। फिर व्याख्यान रू‍प … (सभा) में जाने योग्य वस्त्र पहने थे।

१२७. प्रश्न - रयणादेवी (ज्ञाता ९) को अवधिज्ञान … विभंगज्ञान? मूल में अवधिज्ञान प्रयुँजने का लिखा है, … प्रकार है?

उत्तर - अवधिज्ञान प्रयुँजने का पाठ नहीं है, किन्तु "… प्रयुँजने" का पाठ है। 'अवधि' शब्द में अवधिज्ञान और विभ… (अवधि अज्ञान) दोनों शामिल हैं। जो अवधि मिथ्यात्व … हो, उसे 'विभंगज्ञान' भी कह सकते हैं और अवधि अ… कह सकते हैं, किन्तु 'अवधिज्ञान' नहीं कह सकते। इ… रयणादेवी को विभंगज्ञान (अवधि अज्ञान) होना सम्भव है।

१२८. प्रश्न - पुलाक-निर्ग्रंथ को "नो-संज्ञोपयुक्त" … समझा जाय?

उत्तर - पुलाक की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अ… की है। जब तक वे पुलाक रहते हैं, तब तक उनकी आहा… अभिलाषा एवं आसक्ति नहीं रहती। इसलिए "नो-संज्ञो… कहलाते हैं।

१२९. प्रश्न - चमरचंचा राजधानी में 'तिगिच्छ… और 'उत्पात पर्वत' किस जगह आया है?

उत्तर - "तिगिच्छक कूट" नाम का उत्पात पर्वत, च… राजधानी में नहीं है, वह पर्वत तो "अरुणोदय" नाम के सम… समुद्र में है।

१३०. प्रश्न - इन्द्र तथा त्रायस्त्रिंशक देव, साथ ही …

र्ग करते हैं क्या? सूत्र में "इन्द्र-रहित, पुरोहित-रहित" लिखा, नका क्या तात्पर्य है?

उत्तर - पुरोहित, इन्द्र के होता है। जब इन्द्र ही नहीं, तो रोहित किसके? अतः इन्द्र के अभाव में "**अणिंदा अपुरोहिआ**" तलाया है। इन्द्र और पुरोहित के एक साथ ही आयुष्य पूर्ण करने । कोई खास कारण नहीं लगता।

१३१. प्रश्न - असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं। उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागर की बताई, । क्या इन्द्र, जघन्य स्थिति के भी होते हैं?

उत्तर - दस हजार वर्ष की स्थिति तो उन इन्द्रों की जाति ; अन्य देवों की है, इन्द्रों की नहीं। क्योंकि इन्द्र जघन्य स्थिति ; कभी नहीं होते, उनकी स्थिति तो बड़ी ही होती है।

१३२. प्रश्न - श्री मल्लिनाथ भगवान् के दीक्षा और वलज्ञान-कल्याण का अठाई महोत्सव किस तरह समझा जाय, योंकि दोनों कल्याणक एक ही दिन हुए हैं?

उत्तर - "अट्ठाहिय (अष्टाहनिका) महोत्सव" ऐसा उस त्सव का नाम है, आठ दिनों का-ऐसा अर्थ नहीं समझना ाहिये। अतः एक दिन में दो कल्याणक हो, तो भी कोई हर्ज हीं है।

ज्ञाता सूत्र के आठवें अध्ययन में बतलाया गया है कि गवान् मल्लिनाथ का जन्म मिगसर सुद ग्यारस को हुआ। उनकी ीक्षा और केवलज्ञान पौष सुद ग्यारस को हुआ। अतः दो कल्याणक एक दिन में हुए और दोनों कल्याणकों में एक दिन में

देवों ने दो बार अष्टाह्निका महोत्सव मनाया, अतः अष्टा
महोत्सव का अर्थ आठ दिन ऐसा नहीं समझना चाहिये, किन्तु
उस उत्सव की संज्ञा (नाम) हैं। ऐसा टीकाकार ने लिखा है।

१३३. प्रश्न - तिर्यंच नरक में जाता है, तो जघन्य
अवगाहना प्रत्येक धनुष की किस प्रकार समझी जाय?

उत्तर - पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच की अवगाहना
में प्रत्येक धनुष की हो सकती है। इसलिए नारकी के
गमा में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच
अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्
प्रत्येक धनुष की है।

१३४. प्रश्न - जीव के रुचक-प्रदेश चल-विचल नहीं हैं
किन्तु केवली समुद्घात के समय रुचक-प्रदेश चलायमान होते
या नहीं?

उत्तर - भगवती सूत्र श० ८ उ० ९ में जीव के ८ मध्यप्रदेशों
का वन्ध अनादि-अपर्यवसित माना है, इसलिए केवली समुद्घात
में भी रुचक-प्रदेशों के वंध (जोड़ान) में परिवर्तन नहीं होता
किन्तु केवली के रुचक-प्रदेश समुद्घात के समय मेरु पर्वत
रुचक-प्रदेशों के ऊपर तीन समय के लिए जाते हैं।

१३५. प्रश्न - प्रज्ञापना पद १ में "लवण का पानी
लवण समुद्र का पानी" इस प्रकार अलग-अलग क्यों कहा है?

उत्तर - थोड़े लवण (नमक) के स्वाद जैसे थोड़े
पानी को 'खारोदए' और लवण-समुद्र के समान विशेष खारे
को 'लवणोदए' कहते हैं।

१३६. **प्रश्न** - केवली भगवान् को मृत्यु-वेदना होती है या
?

उत्तर - चौदहवे गुणस्थान में न तो कोई समुद्घात है और
सी कर्म की उदीरणा है, तथा मोक्ष जाते हुए जीव के आत्मा
र्व प्रदेश, सर्वांग से युगपत् ही निकलते हैं, इसलिए केवली
राज को मृत्यु-वेदना होना संभव नही है।

१३७. **प्रश्न** - पृथ्वी आदि स्थावरकाय आहार करे, तो
। रसना के आस्वादन कैसे करे?

उत्तर - स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ही आहार का आस्वादन करते है।

१३८. **प्रश्न** - अचर (स्थिर) ज्योतिषी के विमानो को भी
उठा कर देखते हैं क्या?

उत्तर - "**चंदविमाणेणं भंते ! कइ देवसाहस्सीओ
वहंति**"? इत्यादि पाठ से देवो द्वारा चर विमानों को वहन
ना सिद्ध है और अचर ज्योतिषियों के विमान स्थिर हैं, अतः
को देव-वहन नहीं करते हैं।

१३९. **प्रश्न** - श्री भगवती सूत्र श० ६ उ० ८ में लिखा है
पाँचवें देवलोक में ऊपर बादर अप्काय आदि नहीं है, तो
र बावड़ियों में पानी है, वह बादर नहीं है क्या? और नीचे
लोक में बादर वनस्पति है क्या?

उत्तर - वहां नरक तथा देवलोक के भीतर का प्रश्न नहीं
किन्तु नीचे अप्कायादि होने के विषय में प्रश्न है। अतएव
तकादि स्वर्गो के लिए बादर अप्कायादि का जो निषेध किया
वह उन स्वर्गो के नीचे की अपेक्षा से है। पहले और दूसरे
र्ग के नीचे 'घनोदधि' तथा तीसरे, चौथे और पांचवे के नीचे

तमस्काय होने से प्रथम के पांच स्वर्गों के नीचे बादर अ
और वनस्पतिकाय का संभव है। ६, ७ और ८ वां दे
घनोदधि और घनवाय के आधार पर है, किंतु उन स्वर्गों
वायुकाय है और इसके ऊपर के स्वर्ग सब आकाश के आ
है। अतएव लांतकादि के नीचे बादर अप्कायादि का निषे
वैसे बारह देवलोकों में बादर अप्काय है और उस बादर अ
में वनस्पति-निगोद है।

१४०. प्रश्न - सुखविपाक सूत्र में लिखा है कि
सुबाहुकुमार आदि ने सुपात्रदान देते हुए मनुष्य का आयुष्य
यह किस प्रकार समझें? क्योंकि सुपात्रदान से तो देव का आ
बंधना चाहिए था?

उत्तर - सुमुख गाथापति आदि ने सुपात्र दान देते
समकित प्राप्त कर संसार-परित्त किया। संसार-परित्त करते
वे सम्यग्दृष्टि ही थे क्योंकि समकित प्राप्त होने पर ही सं
परित्त होता है। आयुष्य तो बाद में मिथ्यात्व में बाँधा, क
सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच, सम्यग्दृष्टि पने मे वैमानिक
सिवाय दूसरा कोई भी आयुष्य नहीं बांधते हैं और क्षयो
सम्यक्त्व एक भव में हजारों बार आ सकती है। अतः सम
रहित अवस्था में उन्होंने मनुष्य का आयुष्य बांधा था।

१४१. प्रश्न - जीव, भाषा बोलता है, वह सम्पूर्ण जीव
से बोलता है या कम-ज्यादा प्रदेशों से बोलता है?

उत्तर - 'सम्पूर्ण जीव-प्रदेशों से भाषा बोले' - यह
जानने में नहीं आई, किंतु भाषा में असंख्य प्रदेशों की सह
अवश्य रहती है। जैसे कि समुद्घातादि गत किसी-किसी
को होता है।

१४२. प्रश्न - पृथ्वी-योनिक वृक्षों में मूलादि १० बोल हैं, ां त्रसकाय उत्पन्न नही होते, ऐसा सूयगडांग सूत्र श्रु० २ अ० लिखा है। इसका क्या कारण है?

उत्तर - सूयगडांग सूत्र के 'आहारपरिज्ञा' अध्ययन में वनस्पति कुछ आलापकों में त्रस जीव स्वभाव से ही उत्पन्न नहीं होते, लए नहीं बताये गये हैं।

१४३. प्रश्न - प्रायश्चित्त के ५० भेद हैं, उनमें बताया है दस गुणवाले के पास आलोचना करना भी प्रायश्चित्त का भेद इसका कारण क्या है?

उत्तर - दोष लगने के कारण, आलोचना के दोष, आलोचना ने वाले के गुण और आलोचना देने वाले के गुणों का सम्बन्ध श्चित्त के साथ मिलता होने के कारण प्रायश्चित्त के साथ इन बोलों को कह देते हैं, परन्तु प्रायश्चित्त के खास भेद तो दस हैं।

१४४. प्रश्न - इंद्रिय-प्रतिसंलीनता और इन्द्रिय-संवर में अन्तर है?

उत्तर - शब्दादि विषयों में प्रवृत्त होती हुई इन्द्रियों को ना 'इन्द्रिय-संवर' है और शब्दादि विषयों की ओर जाती हुई यों को रोकना और अनिच्छापूर्वक भी शब्दादि प्राप्त हो जाने भी इष्ट विषयों मे राग और अनिष्ट में द्वेष का निरोध करना तसंलीनता' है।

१४५. प्रश्न - श्रावक को ब्याज लेना, ऐसा उपासकदशा मे स जगह लिखा है?

उत्तर - उपासकदशा सूत्र के प्रथम अध्ययन में "अड्ढे जाव

१४८. प्रश्न - आनन्द श्रावक ने बारह व्रत धारण किये
समें छठा दिशा-परिमाण व्रत धारण किया या नहीं?

उत्तर - आनन्द श्रावक ने पाँच सौ हल जमीन रखी-ऐसा
में लिखा है। एक हल का परिमाण ढ़ाई कोस का होता है,
हिसाब से पांचसौ हल के १२५० कोस होते हैं। यह छठे व्रत
परिमाण हो-ऐसा संभव है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भिन्न रूप
छठा व्रत धारण किया हो, ऐसा कोई वर्णन नहीं है। तत्त्व
ली गम्य।

१४९. प्रश्न - धरणेन्द्र की ६ अग्रमहिषियों का वर्णन ज्ञातासूत्र
है। वे पूर्वभव में श्री पार्श्वनाथ भगवान् के शासन में ही दीक्षित
थी और बाद में मनुष्य-भव पूर्ण करके देवियाँ-धरणेन्द्र की
ग्रमहिषियाँ हुई। इसलिए इन छह में से तो कोई भी अग्रमहिषी,
णेन्द्र के साथ 'पद्मावती' रूप में उत्पन्न नहीं हुई थी और
णेन्द्र के कुल अग्रमहिषियाँ छह ही हैं, ऐसा स्थानांग ६ से
द्ध होता है और इन छह में पद्मावती नाम की कोई अग्रमहिषी
हीं है। ऐसी स्थिति में उपसर्ग के समय किसी पद्मावती देवी का
स्थित होना नहीं माना जाना चाहिये, या पूर्वोत्पन्न तथा इन छह
पूर्व ही चव जाने वाली होनी चाहिए? तथ्य क्या है? क्या
णेन्द्र के छह से अधिक अग्रमहिषियाँ है?

उत्तर - धरणेन्द्र के कुल ६ अग्रमहिषियाँ ही होती हैं, जो
वती १०-५ तथा स्थानांग ६ से सिद्ध है। इन्द्रों के नाम के
नुसार अग्रमहिषियों के नाम भी शाश्वत है। अतएव पहले भी
ी नाम की अग्रमहिषियाँ थी, किंतु धरणेन्द्र के पद्मावती नाम
ी अग्रमहिषी नहीं थी। भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षित

होकर जो धरणेन्द्र की अग्रमहिषियाँ बनी, उनके पूर्व धरणेन्द्र जो अग्रमहिषियाँ थी, वे १७ वें तीर्थकर से भी पूर्व बन चुकी क्योंकि धरणेन्द्र की अग्रमहिषियों की स्थिति अर्द्ध पल्योपम कुछ अधिक है और अर्द्ध पल्योपम काल स्थिति वाली, १७ तीर्थकर के पूर्व उत्पन्न हुई हो, तभी २३ वे तीर्थकर के समय कायम रह कर काल कर सकती है। इससे सिद्ध होता है भगवान् पार्श्वनाथ के गृहवास में रहने तक तो धरणेन्द्र अग्रमहिषियाँ पूर्वोत्पन्न ही थी, कोई नई उत्पन्न नहीं हुई थी और पद्मावती नाम की धरणेन्द्र के कोई अग्रमहिषी ही है। अतः उपसर्ग के समय धरणेन्द्र के साथ पद्मावती नाम की अग्रमहिषी का होना, आगम-सम्मत नहीं है।

१५०. प्रश्न - साधु नदी के किनारे बैठे हों और उधर कोई जीवित मनुष्य बहता हुआ आवे, तो साधु निकाल सकते या नहीं ?

उत्तर - साधु को जलाशय के किनारे बैठना आदि बोलों की बृहत्कल्प सूत्र उ० १ में मनाई है। यदि कारणवश हो, तो भी जैसे नाव में आते हुए पानी को बताने का कल्प है, वैसे ही बहते हुए गृहस्थ को निकालना भी साधु का नहीं है। किंतु साधु निर्दयी नहीं होता। वह छह काय जीवों रक्षक अनंत दयालु होता है।

१५१. प्रश्न - साधु, गृहस्थ के घर भिक्षादि के लिए हो, वहाँ दूसरी मंजिल से बालक गिरता दिखाई दे, तो वे फैला कर उस बच्चे को झेल कर बचा सकते हैं या नहीं?

उत्तर - स्थविरकल्पी साधु, अपवाद मार्ग में ऊपर

हुए वालक को झेल सकते है। ऐसा पूज्यश्री श्रीलालजी म० श्री के मुँह से भी सुना है ✡।

१५२. प्रश्न - साधु जलते हुए मकान का किंवाड़ खोल कर मनुष्यादि को निकलने का मार्ग दे सकते हैं या नही? क्या घायलों की मरहमपट्टी भी कर सकता है?

उत्तर - निशीथ सूत्र उ० १२ के भाष्य और चूर्णि के अनुसार साधु, अग्नि के संघट्टे विना अपवाद-मार्ग मे जलते हुए मकान का किंवाड़ खोल कर मनुष्यादि को मार्ग दे सकते है।

घायल गृहस्थ की मरहमपट्टी करना साधु का कल्प नही है। निशीथ सूत्र उ० १२ मे गृहस्थ की चिकित्सा करे व अनुमोदे तो चौमासी प्रायश्चित्त का विधान है, तथा उ० ११ वे में गृहस्थ के फोड़ादि का छेदन आदि करे, तो चौमासी प्रायश्चित्त बताया है☼।

१५३. प्रश्न - क्या साध्वी, पुरुषो की सभा मे उपदेश दे सकती है?

✡ छेद सूत्रो के भाष्य मे अपवाद मार्ग मे इस प्रकार के कुछ विधान है और उनका प्रायश्चित्त भी है। उपरोक्त प्रश्न भी मेरा ही था - डोशी।

☼ घायलो की मरहमपट्टी विषयक उद्‌गार एक प्रसिद्ध साधु के 'जैनप्रकाश' में छपे थे। कुछ नवगठित साधुओ की यह चाल वन गई है कि वे सुधारक वनने के जोम मे आगमिक-विधानो को भी ठोकर मार देते हैं और आपवादिक वस्तु को उत्सर्ग बनाने और प्रचार करने पर तुले हुए हैं। उनके मर्यादा-लोपक उद्‌गार की वास्तविकता को लक्ष कर ही मैंने उपरोक्त प्रश्न किया था। जैन-सस्कृति आत्म-लक्षी प्रवृत्ति को ही महत्त्व देती ह, क्योकि वन्धच्छेद का उपाय यही है। लेकिन जिन्हे इस लक्ष्य मे अविश्वास हो गया है, वे वन्ध जनक प्रवृत्ति को ही मुक्ति मान ले और पचार करे तो यह दर्शन-मोहनीय के उदय का ही फल मानना चाहिये - डोशी।

उत्तर - नन्दी तथा सिद्धप्राभृत की टीका में साध्वियो के प्रतिबोधित पुरुषों का सिद्ध होना बताया है। अतः साध्वी, स्त्री और पुरुष की सम्मिलित सभा में उपदेश दे सकती है। वह टीका इस प्रकार है -

"बुद्धिभिर्बोधितानां स्त्रीणां विंशतिः बुद्धिभिर्बोधितानामेव सामान्यतः पुरुषादीनां विंशतिः पृथक्त्वं, उक्तं च सिद्धप्राभृतटीकायाम् - **"बुद्धीहिं चेव बोहियाणं पुरुसाईणं सामण्णेण वीसपुहुत्तं सिज्झइति, बुद्धी च मल्लिस्वामिनीप्रभृतिका तीर्थकरी सामान्यसाध्व्यादिका वा वेदितव्या यतः सिद्धप्राभृतटीकायामेवोक्तं........बुद्धीओवि मल्लीपमुहाओ य अण्णाओ य सामण्णसाहुणी पमुहाओ बोहंति त्ति"**।

१५४. प्रश्न - पृथ्वीकाय के सात लाख योनि भेद कहे गये हैं, उनमें ३५० मूल भेद माने हैं, सो किस प्रकार है?

उत्तर-समवायांग ८४ में "**चोरासीइ जोणिप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता**" - ऐसा पाठ आया है। प्रज्ञापना के प्रथम पद में पृथ्वी आदि के भेदों में "**तत्थणं जे ते पज्जत्तगा एएसिं वण्णादेसेणं, गंधादेसेणं, रसादेसेणं, फासादेसेणं सहस्सगासो विहाणाइं संखेज्जाइं जोणिप्पमुह सयसहस्साइं**" - ऐसा पाठ आया है। इसकी टीका कुछ विस्तार से है। समवायांग के अर्थ में भी लिखा है कि "यद्यपि जीवोत्पत्ति स्थानक असंख्याता छे, पण समान वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हुए ते एक योनि कहिये" तथा 'प्रवचनसारोद्धार' के १५१ वें द्वार गाथा ९८२ से ९८४ में पृथ्वीकाय आदि की भिन्न-भिन्न संख्या तथा जीव अनन्त और उत्पत्ति स्थान असंख्य होते हुए भी योनि इतनी ही क्यों बताई? इसका समाधान करते

हुए - "केवलिविक्षितवर्णाऽऽदिसादृश्यतः परस्परान्तर्भावचिन्तया चतुर्शीतिलक्षसंख्या एव योनयो भवन्ति न हीनाधिकाः" इत्यादि बताया है। उपरोक्त बाते सोचते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वर्णादि के सामान्य भेद एक लाख योनि के पीछे ५० समझना चाहिये, उन सामान्य वर्णादि में विशेष वर्णादि के सभी भेद रहते है। उन सामान्य वर्णादि को ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान से गुणन करना, इस प्रकार करने से बराबर संख्या हो जाती है। इस तरह सब की योनि संख्या निकलती है।

१५५. प्रश्न - 'जिन' (तीर्थकर) नाम-कर्म बन्धने के बाद जीव को मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है या नहीं?

उत्तर - इस विषय में मत-भेद है। जिन नाम-कर्म निकाचित करने के पूर्व तो मिथ्यात्व को प्राप्त हो सकते हैं, लेकिन जिन नाम-कर्म को निकाचित करने के बाद मिथ्यात्व की प्राप्ति कर्मग्रन्थ ने मानी है। दूसरे कर्मग्रन्थ गाथा २५ व पांचवें कर्मग्रन्थ गाथा १२ आदि से तीर्थकर नामकर्म के निकाचित होने के बाद भी मिथ्यात्व की प्राप्ति मानी है। वहाँ का भाव यह है कि जिस आत्मा ने मिथ्यात्वदशा मे नरकायु का बन्ध किया और बाद में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पा कर जिन नामकर्म का बन्ध किया, वे मृत्यु के समय मिथ्यात्व को प्राप्त होकर नरक में जाते है और अन्तर्मुहूर्त्त में ही मिथ्यात्व को छोड़कर पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते है। इस अपेक्षा से मिथ्यात्व गुणस्थान में भी तीर्थकर नाम-कर्म की सत्ता मानी है। कर्मग्रंथ का अभिप्राय यह है कि 'दूसरे और तीसरे गुणस्थान को छोड़ कर शेष बारह गुणस्थानों में तीर्थकर नामकर्म की सत्ता रहती है।'

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी जीव को, मिथ्यात्व की प्राप्ति होना असम्भव बात नहीं है। लेकिन वह नरक मे जाता है, इसलिये सम्यक्त्व का वमन कर मिथ्यात्व में जाना अनिवार्य है- यह बात आगम-मान्य नहीं है। सम्यक्त्वयुक्त छठी नरक तक जाना आगम-सम्मत है। अतएव जिन नाम-कर्म वाले जीव, सम्यक्त्व-सहित भी नरक में जा सकते हैं।

१५६. प्रश्न - भगवान् मल्लिनाथ ने पूर्वभव में स्त्रीवेद का बन्ध किया, वह जिन-नामकर्म के बन्ध के पहले किया था या बाद में?

उत्तर - मूलपाठ से तो प्रतीत होता है कि जिन-नामकर्म के बन्ध से पूर्व स्त्री-वेद का बन्ध कर लिया था, किन्तु वृत्ति में उद्धृत गाथा का अभिप्राय बाद का लगता है। उसमें लिखा है कि -

"जह मल्लिस्स महाबलभवंमि, तित्थयरनामबंधेऽवि।
तवविसय-थोवमाया जाया, जुवइत्तहेउत्ति॥ २ ॥"

स्त्री-वेद का बन्ध, सम्यक्त्व अवस्था में नहीं होता। भगवान् मल्लिनाथ के विषय में ज्ञातासूत्र के मूलपाठ से मालूम होता है कि उन्होंने स्त्री-वेद का बंध पहले कर लिया था। उसके बाद जिन नाम-कर्म बाँधा, किन्तु वृत्ति में दी गई गाथा से पाया जाता है कि जिन-नामकर्म बंधने के बाद स्त्री-वेद का बंध किया। सैद्धांतिक पक्ष सबल होता है। इसलिये यही मानना उचित एवं आगमसम्मत है कि मल्लिनाथ के जीव ने पूर्वभव में (महावल के भव में) स्त्रीवेद का बंध पहले किया था उसके बाद जिन-नामकर्म (तीर्थंकर नामकर्म) का बंध किया था।

१५७. प्रश्न - हिंसा के तीन करण तीन योग से त्याग होते

हुए भी साधुओं को नदी उतरने की आज्ञा क्यों दी गई? क्या धर्मोपदेश के लिए-प्रचारार्थ?

उत्तर - नहीं, वह साधारण आज्ञा नहीं, किंतु विवशता की स्थिति को लक्ष कर छूट दी गई है। बिना कारण तो कच्चे पानी का संघटा भी नहीं किया जाता, तो नदी उतरने की आज्ञा कैसे दी जा सकती है?

एक ही स्थान पर बिना शारीरिक कारण के अधिक दिन ठहरने की मनाई है। क्योंकि अधिक रहने से गृहस्थों से मोहवन्धन हो सकता है और संयम में शिथिलता आ सकती है, इसलिए विहार करते रहने की ज्ञानियों ने आज्ञा दी है। कल्प पूर्ण होने के बाद एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए यदि नदी के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नही हो, तो ज्ञान दर्शन तथा चारित्र की रक्षा के लिए साधु को विवश हो कर नदी में उतरना पड़ता है। किन्तु उपदेश के लिए नही, क्योंकि उपदेश, इच्छा पूर्वक दिया जाता है और उपदेश देना अनिवार्य नियम नही है। यदि उपदेश देने के लिए नदी उतरने की आज्ञा होती, तो यह रोक नहीं होती कि 'एक माह में दो बार और वर्ष में ९ बार से अधिक नहीं उतरें।' प्रचार का उद्देश्य हो, तो जितनी बार आवश्यक हो उतनी ही बार उतरें। इसमें प्रतिबन्ध की क्या आवश्यकता थी? प्रतिबंध से तो प्रचार मे रुकावट होती है-प्रचार कम होता है।

सूत्र में नदी के लेप की संख्या निर्धारित की, वह कल्प की सुरक्षा के लिए उचित है। जैसे - कोई साधु, मार्गशीर्ष प्रतिपदा को (चातुर्मास के बाद विहार कर के) किसी गाँव में गये, वहां जाने मे नदी लगी, फिर कल्प पूर्ण होने से उसी महीने के अन्तिम

दिन विहार करने से फिर नदी लगी। इस प्रकार महीने मे दो अ शेष-काल के सात महीनों में यदि लगे, तो अधिक से अधिक इस प्रकार वर्ष भर में ९ से अधिक का नियम भी विवशता व स्थिति में है। एक महीने में तीन और वर्ष मे दस बार न उतरे, तो शवल दोष है ही और कम उतरने पर शवल दोष नह किन्तु उससे दोष तो है ही। वास्तव में नदी उतरने का कार ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र की निर्मलता और सुरक्षा का है, उपदे के लिये नहीं। ठाणांग ५ उ० २ में नदी उतरने और चातुर्मा मे विहार करने के जो कारण बताये हैं, उनमे उपदेश का को कारण नहीं है।

१५८. प्रश्न – साधुओं के १२५ अतिचार कौन-से हैं अ इनका उल्लेख कहाँ हुआ है?

उत्तर – साधुओं के १२५ अतिचारों की धारणा इ प्रकार है–

ज्ञान के १४, दर्शन के ५, संलेखना के ५, इस प्रकार २ अतिचार तो साधु व श्रावक के एक ही हैं। पांच महाव्रतो की २ भावना है। प्रत्येक महाव्रत की पांच भावना है, इनमें दोष लग रूप महाव्रतों के २५ अतिचार हुए।

छठे रात्रिभोजन त्याग व्रत के दो अतिचार इस प्रकार हैं –

१. दिन का रात्रि-भोजन – सूर्योदय के पूर्व लिया हुअ अथवा बासी रक्खा हुआ, अन्धेरे में और अप्रकाशकारी पात्र मे दिन को आहार करता हुआ भी रात्रि-भोजन का अतिचार लग है। २. रात का रात्रि-भोजन – दिन को अधिक मात्रा मे भोज करने से उसकी गन्ध रात्रि को चालू रहे, रात को आहार क

उगाला आवे उसे निगल जावे और उदय तथा अस्त की शंका होते हुए भी खावे-पीवे, इत्यादि प्रकार से अतिचार लगता है। दूसरे प्रकार से ये अतिचार इस तरह लगते है -

१. भाव रात्रि-भोजन - रात को खाने की इच्छा करना, सूर्य उदय हो जाने पर अनुदय समझता हुआ खावे, पीवे अथवा अस्त नही हुआ, किंतु अस्त होना मानता हुआ खावे पीवे २. द्रव्य रात्रि-भोजन - दिन होना समझे, लेकिन वास्तव में सूर्य अस्त हो गया हो अथवा सूर्य उदय नहीं हुआ हो-ऐसी दशा में खावे-पीवे।

ईर्यासमिति के चार अतिचार -

१. द्रव्य से जीवादि को देखता हुआ नहीं चले २. क्षेत्र से युग-प्रमाण भूमि देख कर नहीं चले ३. काल से चले वहाँ तक देख कर और रात्रि को पूँज कर नहीं चले ४. भाव से शब्दादि पाँच में तथा पाँच प्रकार के स्वाध्याय में उपयोग रखता हुआ चले।

भाषासमिति के दो अतिचार - १. असत्य भाषा और २. मिश्र भाषा।

एषणासमिति के ४७ दोष नहीं टाले।

आदानभंड-मात्र-निक्षेपणा समिति के दो अतिचार १. बिना देखे उपकरणादि लेवे और २ रखे।

उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनिका समिति के १० अतिचार, उत्तराध्ययन सूत्र अ० २४ में बताये १० बोल के अनुसार है, उन्हें नहीं टाले, तो अतिचार।

मन, वचन और काया, इन तीन गुप्ति के संरंभ, समारंभ और आरंभ के भेद से ९ अतिचार।

इस प्रकार ज्ञान के १४, दर्शन के ५, संलेखना के ५, पाँच महाव्रतों की २५ भावना के २५, रात्रि-भोजन त्याग के २, ईर्यासमिति के ४, भाषासमिति के २, एषणासमिति के ४७, आदान॰ स॰ के २, उच्चार॰ स॰ के १० और तीन गुप्ति के ९-ये कुल १२५ अतिचार है। अतिचार की सीमा के भीतर रहने तक ही अतिचार कहलाता है। यदि अतिचार की सीमा को लांघ जाय, तो फिर अनाचार हो जाता है।

उपरोक्त १२५ अतिचारों का अनुक्रम से नामोल्लेख किसी स्थान पर देखने में नहीं आया। लेकिन एक सवैया में इनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है -

"ज्ञान के चतुर्दश, बाण समकित केरा,
वेद इरजा रा, भुज भाषा रा उदार है।
युग मुनि एषणा रा, चौथी सुमति रा दृग,
पांचमी रा दिक, निशिभोजन द्वे सार है।
पंच महाव्रत की पच्चीस भावना न भूल,
तीन गुप्ति रा अंक टाले अणगार है।
पांडव संलेखणा रा, धार उर कृष्णलाल,
साधुजी रा एकसौ पच्चीस अतिचार है।"

१५९. प्रश्न - सामायिक चारित्र लेने के वाद सातवें दिन, ४ महीने, अथवा ६ महीने में वड़ी दीक्षा दी जाती है। यदि सातवें दिन नहीं दी जा सके, तो चार महीने और उसके वाद छह महीने में देनी ही चाहिये। इस नियम का अतिक्रमण नहीं होना चाहिये, किन्तु कहीं-कहीं इसका अतिक्रमण देखा जाता हैं, तो इसमें दीक्षादाता को प्रायश्चित्त नहीं आता है क्या ?



उत्तर - स्थानांग सूत्र स्थान ३ उ० २ तथा व्यवहार सूत्र उ० १० में बड़ी दीक्षा का समय जघन्य सात दिन, मध्यम चार महीना और उत्कृष्ट छह महीना बतलाया है और उसी प्रकार होना चाहिये। परन्तु यदि आचार्य, उपाध्याय की स्मृति होते हुए भी कारणवश चार-पांच दिन से अधिक निकालने तक तो उनको कोई छेद-प्रायश्चित्त नही आता है, इत्यादि तीन आलावे (आलापकों) मे यह विषय व्यवहार सूत्र उ० ४ में आया है। उसे बड़ी गम्भीर दृष्टि से सोचना चाहिये कि १ से लगा कर ५ दिन के बाद भी बड़ी दीक्षा कारणवश दी जा सकती है।

१६०. प्रश्न - स्थानकवासी जैन समाज, उत्कृष्ट नौ करोड़ केवली होना मानता है, तब शत्रुंजय माहात्म्यकार आदि एक साथ वीस करोड केवली हो कर सिद्ध होना मानते हैं। यह किस प्रकार से हैं?

उत्तर - भगवती सूत्र श० २५ उ० ६ और ७ से सिद्ध होता है कि नौ करोड़ से अधिक केवलियो का अस्तित्व एक काल मे होता ही नहीं और उत्कृष्ट संख्या क्वचित् ही होती है। अतएव अधिक संख्या का कोई भी उल्लेख अप्रमाणिक है।

१६१. प्रश्न - चौथे अणुव्रत का प्रथम अतिचार 'इत्तरियपरिग्गहियागमन' का अर्थ, छोटी उम्र की स्वविवाहित पत्नी से गमन करना बताया, तो यह अतिचार स्त्रियो के लिये किस प्रकार संगत हो सकता है, क्योंकि स्त्री के साथ तो वलात्कार हो सकता है, लेकिन पुरुष के साथ तो वलात्कार नहीं हो सकता। पुरुष स्वयं की इच्छा से ही काम-प्रवृत्ति करता है। फिर स्त्री को अतिचार कैसे लगता है?

उत्तर - यह एकांत नियम नहीं है। कई कारणों से, राजकन्या आदि का लघुवय के वर के साथ शादी होने पर अपनी तृप्ति के लिये, उस लघुवय वाले पति के अवयव संचालन आदि प्रयोग से अस्वाभाविक रूप से काम प्रेरित करे, तो अतिचार लगता है।

१६२. प्रश्न - मनोयोग से करण और करावण, ये दो करण कैसे घटाये जा सकते हैं?

उत्तर - प्रसन्नचन्द्र राजर्षि, अपने व्रतों को और निर्ग्रंथ-दशा को भूल कर, रौद्रध्यानी बन गये और महासंग्राम रचा कर संग्राम करने और सेना से संग्राम कराने लगे। किंतु भान होने पर पुनः मन से ही सुलट गए और केवली हो गए तथा मरुदेवी और भरत आदि ने मन से ही करने कराने की विशुद्धि कर के केवली बने। भगवती सूत्र श० ८ उ० ६ में अकृत्य स्थान का सेवन किये हुए साधु-साध्वी कों उनके आलोचना के विचारों से आराधना सम्बन्धी ४८ भंग बताये हैं। उनके भी मन से ही आलोचना, मिथ्यादुष्कृत, निंदा यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त, तप एवं आराधना का होना साबित होता है। इसके सिवाय स्वप्नावस्था में भी सभी प्रकार के आस्रव का सेवन-करना कराना, मन से हो सकता है। इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं *।

१६३. प्रश्न - सामानिक देव, तथा सामान्य देव, तीर्थंकरों के जन्मादि कल्याण अथवा प्रभु-वन्दन को आते हैं, तो मूल शरीर से आते हैं या वैक्रिय शरीर से?

---

* इस विषय में व्यवहार सूत्र उ १० के भाष्य गा १९१ में लिखा है कि साधु विचार करे कि "यह भूमि आम्रवन लगाने योग्य है, यहाँ मैं आम्रवन लगाऊँ," आदि विचार मन से करने और कराने रूप है-डोशी।



उत्तर - जम्बूद्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्र मे तीर्थकरों का जन्म एक साथ ही-एक समय में होता है और पूर्व तथा पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में एक साथ चार तीर्थकरों का जन्म होता है। जन्म एक साथ होने के कारण जन्मोत्सव भी साथ ही होता है, इसलिए दिशाकुमारियों और इन्द्रादि को तो वैक्रिय करना ही पडता है, क्योंकि सभी तीर्थकरों के जन्मोत्सव में ६४ ही इन्द्रों की उपस्थिति होती है। ऐसे समय बिना वैक्रिय के केवल मूल शरीर से कैसे काम चल सकता है? तथा मूल शरीर से भी देव और इन्द्र आते हैं। जब चमरेन्द्र प्रथम स्वर्ग में गये थे, तब चमरेन्द्र और शक्रेन्द्र, भगवान् के पास मूल शरीर से आये थे। इसी प्रकार सूर्याभ देव के समान अन्य देव और इन्द्र मूल शरीर से आते है। कई देव भावी माता का कोठा (उदर-पेट) साफ करने को आते हैं और साफ करते-करते मर कर वहीं जन्म ले लेते है। यह बात प्रज्ञापना सूत्र के २१ वें पद से स्पष्ट होती है।

१६४. प्रश्न - प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के वनस्पति के अधिकार में "प्रत्येक पत्र मे एक जीव" बताया और सुना है कि एक पत्र में अनेक जीव होते हैं?

उत्तर - प्रज्ञापना सूत्र मे एक पत्र मे जो एक जीव बताया, वह पत्र की लम्बाई-चौडाई रूप अवगाहना का है। वह सम्पूर्ण पान एक जीव का शरीर है। उसकी नेश्राय में छोटी काया वाले अनेक जीव हो सकते हैं। जैसे - मस्तक से पाँव तक मनुष्य के शरीर में एक ही जीव है, लेकिन उसके आश्रय मे जूं, लीख, कृमि (कीडा चुरणिया) आदि अनेक जीव हो सकते हैं। इसी प्रकार पत्ते में भी समझना चाहिये।

१६५. प्रश्न - तीन प्रकार के परिणाम होते हैं - हीयमान, वर्द्धमान और अवस्थित। छद्मस्थ तीर्थकरों में कौन-से परिणाम होते हैं? उनमे हीयमान परिणाम होता है या नहीं? दीक्षा लेते समय वे सातवें गुणस्थान में होते हैं और फिर वहाँ से लौट कर छठे गुणस्थान में आते हैं। सातवें से छठे में आना, हीयमान परिणाम माना जाय या नहीं?

उत्तर - कषाय-कुशील नियंठा (निर्ग्रंथ) दसवें गुणस्थान तक होता है और उसमें तीनों परिणाम होते हैं। लेकिन गुणस्थान की स्थिति पूर्ण होने पर सातवे से छठे में आना हीयमान परिणाम नहीं कहलाता। विना हीयमान परिणाम के भी नीचे आना हो सकता है। जैसे यथाख्यात चारित्र तथा निर्ग्रंथ-नियंठा में हीयमान परिणाम नहीं पाते, तथापि ११ वें गुणस्थान की स्थिति पूर्ण होने पर ११ वें से दसवें में आ जाते हैं। इसी प्रकार छद्मस्थ तीर्थकर भी बिना हीयमान परिणाम के ही सातवें गुणस्थान की स्थिति समाप्त होने पर छठे गुणस्थान में आ जाते है। इसमे किसी प्रकार की बाधा नहीं है। भगवती सूत्र श० १ उ० १ में शुभयोग वाले प्रमत्तसंयति को भी अप्रमत्त-संयति की तरह अनारम्भी बताया है, अर्थात् छठे में आने पर भी उनके भाव तो अनारम्भ सम्वन्धी वैसे ही बताये हैं।

१६६. प्रश्न - अभयकुमार ने धारणी रानी का दोहद पूर्ण करने के लिए पौषध सहित तेला किया था। यह पौषध और तेला स ५ ८ चारित्र तथा सम्यक् तप में नहीं आता, तब उसने पौषध पालने के पूर्व देव से अपना प्रयोजन क्यों नहीं कहा? यदि कहा जाय कि 'देव अविरत था' तो यह भी ठीक नही, क्योंकि

अभयकुमार का पौषध और तेला भी तो व्रत नहीं माना जाता, क्योंकि वह आत्महितार्थ नही था। इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर - यद्यपि अभयकुमार का पौषध, आन्तरिक रूप से धार्मिक क्रिया नहीं थी, तथापि बाह्य-क्रिया तो सारी वैसे ही थी जैसी कि धार्मिक पौषध और तप में होती है। जैसे कि पौषधशाला में जाना, पौषधशाला पूँजना, उच्चार-प्रस्रवण-भूमि की प्रतिलेखना करना, दर्भ का संथारा बिछाना आदि और पच्चक्खाण विधि भी वही थी। दूसरे देखने वाले यही जानते थे कि धर्माराधना करते हैं। अतएव वे ऐसी क्रिया नहीं करते, जिससे उस क्रिया का महत्त्व घटे और देखने वालों पर विपरीत असर हो।

निरवद्य विषयों की बातें गृहस्थ के साथ भी मुनि करते है, किन्तु अभयकुमारजी का प्रयोजन सावद्य था और पौषध की प्रतिज्ञा सावद्य-योग के त्याग पूर्वक थी। अतएव प्रतिज्ञा पालने के लिए भी अविरत देव से सावद्य विषय पर बात नही करना, उनका लक्ष्य हो सकता है।

पौषध की बाह्य-मर्यादा में भंग नहीं हो, इसलिए देव से सावद्य प्रयोजन के विषय में बातचीत नही करना उचित ही है।

१६७. प्रश्न - जीव के ५६३ भेदो मे से सास्वादन समकित मे जीव के कितने व कौन-कौन से भेद हैं? इसी प्रकार क्षायोपशमिक, क्षायिक, औपशमिक और वेदक सम्यक्त्व मे जीव के कितने व कौन-कौन से भेद है?

उत्तर - १. सास्वादन समकित में २१३ भेद इस प्रकार है। सात नरकों में से सातवीं नरक के अपर्याप्त को छोड़ कर शेष १३ भेद, विकलेन्द्रिय के ३ और असंज्ञीतिर्यच पंचेन्द्रिय के ५ अपर्याप्त

के व संज्ञीतिर्यच पंचेन्द्रिय के पाँचों के पर्याप्त व अपर्याप्त के १०, इस प्रकार तिर्यच के कुल १८ भेद हुए। मनुष्य मे १ कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त के ३० भेद, देवो में परमाधा के १५, किल्विषी के ३, अनुत्तर के ५, इस प्रकार कुल २३ क छोड़ कर शेष ७६ भेद हुए, इनके अपर्याप्त और पर्याप्त भेद १५२ भेद देवों के हुए। ये सब मिलाकर २१३ भेद हुए।

२. क्षयोपशम समकित में २७५ भेद इस प्रकार है। नरक के १३ पूर्ववत्, तिर्यच में संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त के १०, मनुष्य के पन्द्रह कर्मभूमि के, तीस अकर्मभूमि के, इ पेंतालीस के पर्याप्त व अपर्याप्त ऐसे ९० भेद, देवों मे परमाधा और किल्विषी को छोड़ कर शेष इक्यासी के पर्याप्त औ अपर्याप्त, ऐसे १६२ भेद हुए। ऐसे कुल भेद २७५ होते हैं।

३. क्षायिक समकित में-२६२ भेद - रत्नप्रभादि चार नारक के ८, संज्ञी स्थलचर तिर्यच पंचेन्द्रिय के २. मनुष्य के ९० औ देवों के १६२ (क्षयोपशम समकित के अनुसार) ऐसे कुल २६ भेद हैं।

४. उपशम समकित में २०५ भेद - नरक के १३, संज्ञीतिर्य पंचेन्द्रिय के १०, मनुष्य के ३० और देवों के सास्वादनवत् १५२ यों कुल २०५ भेद हुए।

५. वेदक समकित मे १०३ भेद - नरक के ७, तिर्यच सं पंचेन्द्रिय के ५, मनुष्य कर्मभूमिज के १५, देवों के सास्वादन बताये अनुसार ७६। कुल १०३ भेद। ये सभी पर्याप्त ही ह क्योंकि अपर्याप्त में वेदक समकित नहीं होती।

१६८. प्रश्न - क्षायिक-समकिती जीव जब नरक-मे जा

है, तब सम्यक्त्व कायम रहती है या नही ? नरकायु का बंध, अनन्तानुबन्धी कषाय के सद्भाव में होता है। उस समय लेश्या अशुभ ही होती है और देह छोडते समय भी वही लेश्या आती है, फिर सम्यक्त्व कायम कैसे रह सकती है ?

उत्तर - आयु-बन्ध के समय जो लेश्या हो, वही मृत्यु के समय होती है और उसी में परभव जाना होता है, यह तो ठीक है, लेकिन जिस दृष्टि और गुणस्थान मे आयु-बांधा हो, वही दृष्टि और गुणस्थान मृत्यु और परभव जाते समय में होवे ही, इसका कोई नियम नहीं है, तथा अशुभ लेश्या-नरक के योग्य लेश्या, प्रथम से छठे गुणस्थान तक रहती है।

क्षायिक-सम्यक्त्व केवल मनुष्य-गति में ही प्राप्त होती है। यह सादि अनंत होती है, इसलिये आने के बाद वापिस नहीं जाती। यदि किसी मनुष्य ने क्षायिक-सम्यक्त्व प्राप्त करने के पहले नरकायु का बन्ध कर लिया हो, तो नरक मे जाता ही है और जाते समय उसके क्षायिक-समकित रहती ही है।

१६९. प्रश्न - कौनसी नरक तक नारकी मे रहे हुए नारक को सम्यक्त्व प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर - सातों ही नरकों मे समकित प्राप्त हो सकती है।

१७०. प्रश्न - प्रज्ञापना पद २ में बादर तेजस्काय के अधिकार में मूलपाठ है कि "**दोसु उड्ढ कवाडेसु**" ये दो ऊर्ध्व किवाड़ कौन-से और किस चीज के बने हुए है और इससे क्या समझना-चाहिए ?

उत्तर - समय क्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र, अढाई द्वीप) ४५ लाख योजन का है। असत्कल्पना से इसकी सीध में चारों दिशाओ में,

तिर्यक्‌लोक के किनारे तक ४५ लाख योजन की चौडाई
अढ़ाई द्वीप के बाहर १८०० योजन की ज़ाड़ाई (ऊँचाई) है
यह मनुष्य-क्षेत्र की सीध में ऊँचा लोकान्त तक है। इतने क्षेत्र
नाम "दोसु उड्ढकवाडेसु" कहा है, अर्थात् मनुष्यलोक की
में ऊपर और नीचे लोकान्त तक और चारो दिशाओ में ४५ ल
योजन की जाडाई प्रमाण क्षेत्र को **"दोसु उड्ढकवाडेसु"** कहा
किन्तु यह किंवाड़ किसी वस्तु के बने हुए हो-ऐसी बात नहीं

१७१. प्रश्न - 'अरुणोदय' समुद्र से तमस्काय उठती
उसमें 'स्वयंभूरमण' समुद्र से भी असंख्य गुण अधिक जीव
हो सकते हैं, जब कि स्वयभूरमण समुद्र, अरुणोदय समुद्र
बहुत बड़ा है ?

उत्तर - अरुणोदय समुद्र से उठी हुई तमस्काय, पहले
चार स्वर्गो को आवृत (ढक) करके पांचवें स्वर्ग के तीसरे
तक पहुँची है। उसकी चौड़ाई कहीं संख्यात योजन और
असंख्यात योजन की है। यह अरुणोदय समुद्र असख्यातवॉ
इसका वर्णन भगवती सूत्र श० ६ उ० ५ मे हैं। स्वयंभू
समुद्र के पानी की ऊँचाई एक हजार योजन की है, लेकि
तमस्काय की ऊँचाई तीन रज्जु से भी अधिक है। इसलि
स्वयंभूरमण समुद्र से भी अरुणोदय के जीव असंख्य गुण अधि
होना असंभव नही है।

१७२. प्रश्न - भगवती सूत्र श० २ उ० १० में लिखा
कि- जिसका एक देश भी कम हो, वह पूर्ण नहीं माना जाता,
जमाली को इसी बात पर मिथ्यात्वी क्यों बताया गया ? वह
तो पूर्ण कार्य को ही पूर्ण मानता था ?

उत्तर - भगवती सूत्र श० २ उ० १० में 'धर्मास्तिकाय' सम्बन्धी प्रश्न है। 'काय' शब्द तत् सम्बन्धी संपूर्ण समुदाय का ग्राहक है और वहाँ निश्चय नय की अपेक्षा से प्रश्न है। इसलिए एक प्रदेश भी छोडने पर उसे काय नहीं कह सकते। एक या कुछ प्रदेश छोडने पर उसे देश-प्रदेशादिरूप धर्मास्ति तो कह सकते हैं, परन्तु 'धर्मास्तिकाय' नही कह सकते। जैसे - इन्दा आदि विदिशाओ मे धर्मास्तिकाय नहीं बता कर उसे धमास्ति के देश-प्रदेश ही बताये हैं। इस बात को विशेषरूप से समझने के लिए श्री खदकजी का अधिकार ध्यान में लेने योग्य है। वहां "**सअंते जीवे, अनंते जीवे**" प्रश्न के उत्तर में द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा जीव को अत सहित बताया है। वहां एक वचन और 'काय' विशेपण नही है। इसलिए वहाँ एक जीव और उसके असंख्य प्रदेश का ही ग्रहण है और यहाँ तो 'काय' विशेषण होने से समस्त जीव और उनके अनंत प्रदेशो का ग्रहण होता है।

व्यवहारनय के कथन से तो किंचित् न्यून (कुछ कम) को भी पूर्ण कह सकते है, किन्तु यहां तो निश्चयनय का कथन है, इसलिए कम होने पर धर्मास्तिकाय आदि अस्तिकाय नही गिनी है। यह बात "**ते सव्वे कसिणा, पडिपुण्णा, निरवसेसा, एकग्गहण गहिया**" इस पाठ से सिद्ध है। सभी अस्तिकाय के प्रदेश अनादिकाल से जो जिस-जिस संख्या में बद्ध है, वे उसी सख्या में सदैव बद्ध ही रहते हैं। इसलिए उनके सम्पूर्ण प्रदेशों को उस अस्तिकाय के रूप मे गिनते है। यदि कुछ प्रदेशों को छोड़कर शेष को अस्तिकाय के रूप में मान लिया जाय, तो छोडे हुए प्रदेशों को किस में गिनेगे ?

"**चलमाणे चलिए**" आदि प्रश्नों में तो प्रत्येक समय का काम भिन्न-भिन्न पुद्‌गलों को लेकर होता जाता है। प्रत्येक समय में वे ही पुद्‌गल तत्-तत् रूप (उस उस रूप) में काम नहीं आते और उनमें प्रति समय के चलनादि पुद्‌गल तथा पुद्‌गलों के प्रदेशो की संख्या भी समान नहीं रहती, अर्थात् चलनादि में अस्तिकाय के प्रदेशों के समान एक निश्चित संख्या अनादि से बनी हुई ध्रुव नही है और जो पुद्‌गल किसी समय चलन में गिने जाते है, वे ही पुद्‌गल अन्यान्य समय में उदीरणा, वेदना आदि भिन्न दशा मे गिने जाते हैं। इस प्रकार एक अस्तिकाय के प्रदेश कभी भी दूसरी अस्तिकाय के नहीं बनते। प्रत्येक समय में जो चलनादि कार्य, अन्यान्य पुद्‌गलों के साथ होता है, वह नहीं मानने से 'कृतनाश अकृतागमादि' (कृतनाश-किये हुए का विनाश और अकृत आगम अर्थात् नहीं किये हुए कर्मों की प्राप्ति) दोष उत्पन्न होते है। क्योंकि जो पुद्‌गल जिस समय में जिस काम मे आ रहे हैं। उस काम को उस समय में नहीं गिने और अन्यान्य समय में, दूसरे दूसरे काम में आने पर पूर्व-काल के काम में गिने, तो बहुत उलझन पैदा होती है। चलनादि प्रश्नों में भी निश्चय नय का कथन है। इसलिए प्रभु ने प्रत्येक समय के कार्य को गिना है। अन्यथा व्यवहारनय से तो भगवान् में श्रद्धा रखने वाले साधुओं ने भी जमाली के पूछने पर कहा कि 'शय्या-संथारा किया नही, कर रहे है। क्योंकि शय्या-संथारा सोने के लिए करवा रहे थे।' वह लगभग शयन करने के योग्य हो तभी उस पर सोया जाता है। इसलिए वे इस प्रकार बोले थे। किन्तु जब चलनादि के विषय में जमाली ने वैसी बात कही, तो उसे नहीं मान कर भगवान् के

वाक्यों में श्रद्धा रखते हुए अनेक साधु, भगवान् के पास चले गये। इत्यादि बातें सोचने पर समाधान हो सकता है।

१७३. प्रश्न - करणसत्तरी आचार का पालन छठे गुणस्थान से आगे भी रहता है क्या ?

उत्तर - करणसत्तरी का कोई-कोई बोल १३ वें गुणस्थान तक पालना संभव है। सित्तर बोलों में एक आहार शुद्धि भी है। भगवान् महावीर ने सिंह अनगार को कहा कि - 'मेरे निमित्त बनाये हुए कोलापाक को मत लाना।' वृत्तिकार ने भी 'तेहिं नो अट्ठोत्ति बहुपापत्वात्' लिखा है और बिजोरापाक लाने की आज्ञा दी है। यद्यपि वीतरागियों को ईर्यापथिकी क्रिया के सिवाय दूसरी कोई क्रिया नहीं लगती, तथापि व्यवहार शुद्धि आदि के लिये आहारादि की विशुद्धि रखते हुए औद्देशिकादि नही लेते। तथा भगवती सूत्र श० २५ उ० ६ और ७ में निर्ग्रंथ, स्नातक, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात को भी स्थित और अस्थित - ऐसे दोनों कल्पों में होने का लिखा है। इससे भी उनकी आहारादि की शुद्धि कायम रहती है। करणसत्तरी के ७० बोलों में भिक्षु की बारह प्रतिमा भी है और बारहवीं प्रतिमा में रहे हुए श्री गजसुकुमाल जी को क्षपकश्रेणी का आरोहण होकर केवलज्ञान हुआ है और सूत्रों में भी लिखा है कि १२ वीं भिक्षु की प्रतिमा के सम्यग्रूप से पालन करने पर अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान, इन तीनों मे से कोई ज्ञान भी प्राप्त होता है। ७० बोलों में ईर्यासमिति भी है। केवलियों के निरन्तर पूर्ण शुद्ध उपयोग रहता है। इसलिये उनके तो ईर्यासमिति की आवश्यकता ही नहीं, परन्तु १० वें, ११ वे और १२ वें गुणस्थानवर्ती चलते हैं, तब उनके तो ईर्यासमिति की

आवश्यकता रहती ही है। यद्यपि इन गुणस्थानो की स्थिति अल्प है, तथापि भगवती सूत्र श. ८ उ ८ में इन गुणस्थानों को चर्या-परीपह माना है तथा भगवती सूत्र श. ७ उ. ७ में लिखा है कि - 'संवृत अनगार उपयोग-सहित चलते, खड़े रहते, बैठते, सोते, वस्त्र-पात्रादि ग्रहण करते एवं रखते उन्हें ईर्यापथिकी क्रिया होना बताई है। इससे भी ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में ईर्यासमिति होना सिद्ध होता है।

करणसत्तरी में बारह भावना भी है, जो धर्म और शुक्लध्यान की चार-चार अनुप्रेक्षा बतलाई है। इससे अप्रमत्तों मे भावना भी होती है। इत्यादि बातों पर विचार करते अप्रमत्त मुनियों में करणसत्तरी के ७० बोलों में से कई बोल पाये जाते हैं। प्रमत्तगुणस्थानी को इनमें सतत सावधानी रखनी पड़ती है और अप्रमत्तों का तो उपयोग, कार्य के अनुरूप ही होता है। इसलिये उन्हें प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं रहती। इस कारण यदि प्रमत्त-गुणस्थान तक ही करणसत्तरी गिने, तो वह बात अलग है। तत्त्व केवली गम्य।

१७४ प्रश्न - श्रावक की दया पोने उन्नीस (१८॥।) विश्वा और हिंसा सवा (१।) विश्वा किस प्रकार है ?

उत्तर - श्रावक की दया पोने उन्नीस विश्वा पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज साहब इस प्रकार फरमाते थे।

संसारी जीव दो प्रकार के हैं - १. त्रस और २. स्थावर। पहले अणुव्रत में त्रस की हिंसा रूप १० विश्वा का त्याग हुआ और १० विश्वा स्थावर के खुले रहे। छठे व्रत में मर्यादित-भूमि के बाहर के भी स्थावर जीवों की हिंसा के त्याग हो गए, अतएव

ोष रहे हुए १० विश्वा मे से आधे ५ और बंद हो गए। मातवे
त मे भोगोपभोग में रखी हुई वस्तु के अतिरिक्त वस्तुओं के
र्यादित भूमि में भी त्याग हो गये। अतएव ढाई विश्वा हिसा फिर
क गई और आठवे व्रत अनर्थदण्ड के त्याग हो जाने से सवा
वेश्वा हिसा और भी कम हो गई। इस प्रकार बीस विश्वा मे से
ोने उन्नीस विश्वा हिंसा रुकी और पोने उन्नीस दया पली। शेप
वा विश्वा हिंसा ही खुली रही। यह स्थूल न्याय से विचार हुआ।
केन्तु सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जाय तो व्रतधारी श्रावक के असंख्यातवें
ाग की हिंसा शेष रहती है और असख्यात गुनी दया पलती है।
स-स्थावर की हिंसा का अन्तर आदि अनेक बातें सोचने से
ूर्वोक्त बात ठीक बैठती है। यह भी सुनने मे आया है कि चोदह
नेयमो का नित्य नियम धारने वाले के मेरु जितना पाप छूट जाता
ै और राई जितना शेष रहता है।

स्थूल प्राणातिपात व्रत में 'स्थूल' शब्द बड़ी हिंसा के त्याग
ा द्योतक है। इससे भी वह बडी हिंसा- अधिक हिंसा का त्यागी
िना जाता है। सूयगडांग २-२ मे श्रावक को मिश्र पक्ष मे वता कर
अल्प-आरभी आदि होने कारण धर्म-पक्ष मे स्वीकार किया है।
ही बात औपपातिकसूत्र से सिद्ध होती है। वहाँ श्रावक को
अल्पारंभी, अल्प-परिग्रही, धर्मी और धर्मानुयायी आदि होने से तथा
ाधु के निकटवर्ती होने से 'साधु' कहा है। इत्यादि बातो पर विचार
रते श्रावक को अधिकांश हिंसा का त्यागी मानना उचित ही है।

१७५ प्रश्न - भगवान् महावीर के छठे गणधर 'मण्डितपुत्र'
ौर सातवे गणधर 'मौर्यपुत्र' को कई लोग एक माता और भिन्न
िता की संतान कहते हैं। क्या यह बात ठीक है ?

देते हैं, वे अपनी स्वीकृत प्रतिज्ञा के विपरीत करते हैं। आचारांग, सूयगडांग, दशवैकालिक, प्रश्नव्याकरण आदि सूत्रों में साधु को ऐसी भाषा बोलने का निषेध किया है। नन्दीसूत्र में ७२ कलाओ के प्रतिपादक श्रुत को मिथ्याश्रुत बतलाया है। निशीथ सूत्र के ११ वें उद्देशक मे उद्योग सम्बन्धी बातें बतलाना अथवा अनुमोदन करना प्रायश्चित्त का कारण बतलाया है ❁ ।

१७७ प्रश्न - प्रज्ञापना पद १८ में लिखा है कि 'तिर्यचयोनिक जीव, तिर्यचयोनिकपने उत्कृष्ट अनन्त काल, अनन्त अवसर्पिणी अनन्त उत्सर्पिणी तक तथा क्षेत्र से अनन्त लोक के आकाश प्रदेश प्रमाण और असंख्य पुद्गल परार्वतन तक रहे,' तो प्रश्न यह है कि असंख्यात पुद्गल परावर्तन ही क्यों कहा, अनन्त पुद्गल परावर्तन क्यों नहीं कहा ? यह अव्यवहार-राशि की मान्यता के लिये बाधक नहीं है क्या ?

उत्तर - यह कायस्थिति केवल व्यवहार-राशि के जीवों की अपेक्षा से ही बताई गई है। इसलिये कोई बाधा नहीं आती है।

१७८ प्रश्न - अचक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनीपने अनादि अनंत काल रहे, यह किस अपेक्षा से है ? अभाषक के विषय में भी समझाने की कृपा करे ?

उत्तर - जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाय, तब तक सभी जीवों को निरंतर अचक्षुदर्शन रहता ही है। अतः जिन्हें कभी

❁ आजकल लौकेषणा मे पड़ कर जो मुनि सावद्य प्रचार करते हैं, उन्हे इस पर शांति से विचार करना चाहिये। जब वे स्वयं अपनी प्रतिज्ञा और मर्यादा को भंग कर रहे है, तब गृहस्थों पर उसका क्या प्रभाव पडेगा ? जो अपनी प्रतिज्ञा की परवाह नहीं करते, उनकी प्रामाणिकता ही कैसी ? - डोशी

केवलज्ञान होगा ही नहीं, उनके लिये तो अचक्षुदर्शन अनादि अनन्तकाल रहेगा।

अभापक के विषय में हस्तलिखित प्रज्ञापना तथा राजेन्द्र कोप में तो अभाषक के "**साइए वा अपज्जवसिए**" और "**साइए वा सपज्जवसिए**" ये दो भेद ही दिये हैं। इनमें पहला सिद्धों की अपेक्षा से है और दूसरा संसारी जीवों की अपेक्षा से। कायस्थिति का क्रम देखते हुए ये दो भंग ही ठीक प्रतीत होते है। आगमोदय समिति वाली प्रति मे अभाषक के जो तीन भंग दिये हैं, वे कुछ ठीक नहीं लगते, क्योकि - सिद्ध भी अभाषक हैं। उनमें '**साइए वा अपज्जवसिए**' भंग होता है, सो तो इसमें दिया ही नहीं और 'अणाइए वा अपज्जवसिए' और 'अणाइए वा सपज्जवसिए' ये दो भंग दिये, जिनकी जरूरत ही नही थी। यदि अभाषक के ये दो भंग सूत्रकार को इष्ट होते, तो तिर्यच एकेन्द्रिय काययोगी, वनस्पति, नपुंसकवेद, सूक्ष्म और असंज्ञी में भी ये दोनों भंग होना था, जो नहीं है। अतएव अभाषक में इन दो भंगों की सद्भावना नही है।

टीका में किसी कारण से यह अशुद्धि हो गई और उसी के आधार से आगमोदय समिति सूरत ने तीनों भंगों को मूलपाठ मे लिख दिया-ऐसा अनुमान होता है।

१७९ प्रश्न - प्रज्ञापना पद १५ सूत्र १७ में लिखा है कि 'अमायी सम्यग्दृष्टि मनुष्य उपयोग-सहित निर्जरा के पुद्गलों को जानते-देखते हैं, किन्तु उपयोग-रहित नहीं जानते नहीं देखते। र्थात् निर्जरा के पुद्गल सामान्य अवधिज्ञानी नहीं देख सकते, अवधिज्ञानी ही देख सकते है और वे भी उपयोग युक्त हो तभी, बिना उपयोग के तो वे भी नहीं देख सकते। इस प्रकार

अवधिज्ञान और मन·पर्यवज्ञान के धारक, चौदह पूर्वी, कषाय-
ल निर्ग्रन्थ भी अनुपयोग से सहसा कुछ अन्यथा कह दें, तो
होना संभव है या नही ?

उत्तर - अवधिज्ञानी उपयोग रहित हों, तो नही जान सकते
नही देख सकते हैं, इसमे तो मतभेद नहीं है।

मनःपर्यव ज्ञान और ११ से लगा कर १४ पूर्व तक का ज्ञान,
यकुशील निर्ग्रन्थ को ही होता है, इसके पूर्व के निर्ग्रन्थो मे
होता और कषायकुशील निर्ग्रन्थ मूल-गुण तथा उत्तर गुण मे
नहीं लगाते। बिना उपयोग से भूल हो जाना संभव है, किन्तु
भूल तीर्थकर जैसे सर्वोत्तम पुरुष से नही होती, क्योंकि एक
वे छद्मस्थकाल मे प्रायः मौन ही रहते है, दूसरा उनसे ऐसी
भूल हुई हो, ऐसा कोई प्रमाण नही है। जिस घटना को भूल
रूप में आगे की जा रही है, वह सांप्रदायिक मान्यता के कारण
बताई जा रही है। वास्तव में वह (गोशालक का प्रसंग) मूल
उत्तर गुण में दोष लगने योग्य नही है।

१८० प्रश्न - क्या दीक्षा लेने वाले के लिए पहले साधु
क्रमण याद कर लेना आवश्यक है ?

उत्तर - आगमानुसार बडी-दीक्षा के पूर्व साधु-प्रतिक्रमण
कर लेना आवश्यक है।

१८१ प्रश्न-धोवन-पानी के आधार से तपस्या हो सकती है ?

उत्तर - 'यवमध्य-चन्द्र-प्रतिमा,' 'वज्र-मध्य-चन्द्रप्रतिमा,'
सप्तमिका' आदि प्रतिमा, आयंबिल-वर्धमान आदि तप, इत्वर-
शन के छठे भेद मे गिने हैं। यवमध्य आदि प्रतिमा में मर्यादित
लेने पर भी शास्त्रकार उसे अनशन तप में गिनते है, तो

धोवन-पानी के आगार की तपस्या को अनशन तप मे क्यों न
गिना जाय ? अर्थात् अनशन तप में गिनने में कोई बाधा नहीं है।

भगवती सूत्र में आयम्बिल के बेले को 'आयम्बिल छ
बताया है। इसी प्रकार धोवन-पानी का चोला, पचोला, मासख
आदि हो सकते हैं। जिस प्रकार घृतादि के मालिश का आग
रखते हैं, उसी प्रकार धोवन पानी का भी आगार रख सकते है
जो मुनि, विशेष चौविहार तपस्या नहीं कर सकते, वे धोवन
गरमपानी अथवा दोनों प्रकार का पानी लेते हुए तपस्या करे,
कर सकते हैं, जिससे छोटे ग्राम आदि में गरम पानी बनवाने आ
का दोष नहीं लगे तथा तप निर्मल और निर्दोष बना रहे।

१८२ प्रश्न - सामायिक दो करण, दो योग से हो सकती
क्या है ?

उत्तर - बारह व्रतों के भंगो के हिसाब से ४९ भंगों मे
किसी भी भंग से सामायिक हो सकती है। इसका खुला
'धर्मसंग्रह' के दूसरे अधिकार में तथा 'पंचाशक-सटीक' औ
'प्रवचन-सारोद्धार' में है।

१८३ प्रश्न - "वैयावृत्य" निर्जरा का नववॉ भेद हैं। सा
साधु की वैयावृत्य करते है, किन्तु श्रावक तो साधु की वैयावृ
नहीं कर सकते, तो क्या श्रावक, श्रावक की वैयावृत्य कर
निर्जरा कर सकता है ?

उत्तर - हाँ, श्रावक, श्रावक की वैयावृत्य करके निर्जरा क
सकता है।

१८४ प्रश्न - श्रावक, संवर और निर्जरा की क्रिया कर
है, तो संवर और निर्जरा के साथ पुण्य-प्रकृति भी बँधती है क्या

उत्तर - हाँ, संवर और निर्जरा की क्रिया करते समय
वक के पुण्य प्रकृति भी बँधती है।

१८५ प्रश्न - इसी प्रकार मुनिराजों को भी संवर निर्जरा की
रणी करते हुए पुण्य-प्रकृति बँधती है क्या ?

उत्तर - हाँ, तेरहवें गुणस्थान तक पुण्य-प्रकृति बँधती है।

१८६ प्रश्न - क्या पुण्य भी शुभ और अशुभ होता है ?
दि होता है, तो किस प्रकार ?

उत्तर - शुभ प्रकृति को ही 'पुण्य' कहते हैं, अशुभ को
ही, किन्तु पुण्यानुबन्धी-पुण्य और पापानुबन्धी-पुण्य, ये दो भेद
ण्य के बताये हैं। ज्ञानपूर्वक और निदान-रहित कुशल अनुष्ठान
सर्व जीवों में दया, विरागता, विधिवत् गुरु-भक्ति निरतिचार
ारित्र पालनादि) से पुण्यानुबन्धी-पुण्य होता है और नियाणादि
ोषों से दूषित धर्म अनुष्ठान से पापानुबन्धी पुण्य होता है *।

१८७ प्रश्न - १. एक व्यक्ति आपसी झगड़ो से क्रोधित हो
र फाँसी लगा कर मरना चाहता है। दूसरे भाई ने उसकी फाँसी
ोल कर तथा समझा कर बचा लिया। इसमें बचाने वाले को
ुण्य हुआ या पाप ?

२. एक अन्धा खड्डे में गिर जाता है और बचाने के लिए
चिल्लाता है। किसी ने उसकी पुकार सुन कर और दया भाव से
ेरित होकर निकाल दिया, तो उसे पुण्य हुआ या पाप ?

३. एक गोशाला से सट कर लगी हुई घास की गंजी में
आल लग गई। पड़ोसियों ने गायों के झुण्ड को गोशाला के द्वार

---

* पुण्यानुबन्धी-पुण्य, मोक्ष के सम्मुख करता है और पापानुबन्धी
ुण्य ससार का कारण है - डोशी।

खोल कर निकाल दिया और मृत्यु से बचा लिया। इसमे बचाने वालों को पुण्य हुआ या पाप ?

४. एक अन्धे भिखारी पर कुत्ते झपटे, किसी दयालु ने कुत्तों से अंधे की रक्षा की, तो रक्षक को पुण्य हुआ या पाप ?

५. एक मांसाहारी, भोजन के लिए, बकरे को मार रहा है। किसी सुज्ञ दयालु ने उसे समझा कर सदा के लिए हिंसा छुड़ा दी और बकरे को जीवनभर के लिए अभयदान दिलवाया, बकरे को बचाने से उसे पुण्य हुआ या पाप ?

६. एक खाली बरतन में चूहा गिर गया, वह निकलने में असमर्थ है, तड़प रहा है। किसी ने चूहे को बचाने के लिए बरतन को ओंधा कर दिया, जिससे चूहा बच गया। बचाने वाले को पुण्य हुआ या पाप ?

७. एक मनुष्य जंगल में पानी के बिना तड़प रहा है, उस समय एक दूध बेचने वाला नगर में जाते हुए उधर से निकला उसने प्यास से मरते हुए को दूध पिला कर बचा लिया।

८. सरकार ने जनहितार्थ दवाखाने खोले, जिनमें रोगियों का इलाज होता रहता है। उसमें किसी रोगी को देखकर किसी दयालु को दया आई और पथ्य के लिए सहायता दी।

९. पाठशालाओं में विद्यादान का लाभ समझ कर द्रव्य सहायता दी जाय।

१०. पाकिस्तान से पीड़ित होकर आने वाले शरणार्थी भाइयों को आवास, भोजन और वस्त्र द्वारा सहायता की जाय।

११. अनाथ, अपंग और असहाय को सर्दी में ठिठुरते हुए देख कर, किसी को अनुकम्पा आ जाय और वह उसे वस्त्र का दान कर दे।

१२. भोजन करते हुए व्यक्ति के सामने कोई भूखा कुत्ता या मनुष्य आ जाय और वह उसे अपने खाने में से कुछ दे-दे, तो इन सब में पुण्य होता है या पाप ?

उत्तर - दया और दान विषयक उपरोक्त प्रश्नो का उत्तर यही है कि इनमें पुण्य शामिल है ही, इसलिए शास्त्रकार इसे पुण्य कहते हैं। ठाणांग सूत्र के नववे ठाणे में अन्न देना, पानी पिलाना आदि नौ प्रकार के पुण्य बतलाये गये हैं, क्योंकि अनुकम्पा एवं दया के भाव पुण्य-बन्ध के हेतु हैं। अनुकम्पादान का शास्त्रकार निषेध नही करते और अधर्मदान से इसे पृथक् बतलाते हैं। ठाणांगसूत्र के दसवें ठाणे में दान के दस भेद उनके गुणानुसार दिये गये हैं। अनुकंपा, समकित का लक्षण बतलाया गया है। यदि हृदय में अनुकम्पा (दया-रक्षा) न रहे तो समकित भी नही रहती है।

१८८ प्रश्न - पुत्र अपने वृद्ध माता-पिता की न्याय-नीति के अनुसार सेवा भक्ति करता है। इस कार्य को आप योग्य समझते है या अयोग्य ?

उत्तर - इस कार्य को अयोग्य नही समझते, क्योकि माता-पिता के ऋण से मुक्त होना कठिन है। जिसका वर्णन स्वयं शास्त्रकारों ने ठाणांगसूत्र से तीसरे ठाणे मे तथा ज्ञाता सूत्र आदि में बड़ी खूबी के साथ किया है और माता-पिता का बड़ा भारी ऋण बताया है। यदि माता-पिता की सेवा, योग्य नही होती, तो उनका पुत्र पर ऋण नही माना जाता। अतएव माता-पिता की सेवा करना योग्य है। शास्त्रानुकूल है, उत्तम कार्य है।

१८९ प्रश्न - जीव संसार-परित्त करता है, वह सम्यग्दृष्टि अवस्था में या मिथ्यादृष्टि अवस्था में ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि अवस्था में ही संसार परित्त होता है मिथ्यात्व में नहीं। भगवती ३-१ में तीसरे स्वर्ग के इन्द्र के प्र में गौतम स्वामी ने प्रश्न किये हैं कि - 'वह भव्य है या अभव्य सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि, परित्त-संसारी अथवा अनन्त संसा सुलभबोधि या दुर्लभबोधि, आराधक या विराधक तथा च अथवा अचरम ? इस प्रकार १२ बोल पूछे हैं। इनमें भव्य के ब सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि तथा इसके बाद परित्त-संसारी क प्रश्न आया है। इसी प्रकार अन्य देवों के विषय में भगव रायपसेणी आदि सूत्रों में प्रश्न है। इससे ज्ञात होता है कि सम्यग्दृष्टि अवस्था में ही संसार-परित्त होता है। मिथ्यात्वी अवस्था संसार बढ़ाने वाली है और सम्यक्त्व अवस्था संसार घटाने वाल है। उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३६ गाथा २६१ में कहा है कि -

"जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं।
अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंति परित्त संसारी॥"

यह परित्त-संसारी का लक्षण है। अतः सम्यग्दृष्टि अवस्था में संसार-परित्त करना सिद्ध है।

सुमुख गाथापति संसार-परित्त करते समय सम्यग्दृष्टि थे। मनुष्य के आयुष्य के बन्ध के समय उनमें मिथ्यात्व आ ग था। अनुयोगद्वार सूत्र के अनुसार एक जीव के एक भव में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हजारों बार आती और जाती है। इसलि संसार-परित्त करते समय सम्यक्त्व और मनुष्यायु बाँधते सम मिथ्यात्व होना ही संगत होता है। इसमें विरोध जैसी कोई ब नहीं। यही बात मेघकुमार के हाथी के भव के विषय में भी समझना चाहिये।

१९० प्रश्न - सम्यग्दृष्टि जीव किस गति का आयुष्य बांधता है?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यच-पंचेन्द्रिय, एक वैमानिक देव का ही आयुष्य बाँधते है और देव तथा नारक एक मनुष्य-गति का ही आयुष्य बाँधते है (भगवती ३०)। यदि मनुष्य और तिर्यच, मनुष्य और तिर्यच का आयुष्य बाँधे, तो सिद्धांत के अनुसार प्रथम गुणस्थान में ही बांधते हैं और कर्मग्रन्थ के अभिप्राय से पहले और दूसरे गुणस्थान में बाँधते हैं। कर्म ग्रंथ वाले दूसरे गुणस्थान में अज्ञान मानते हैं। इस अपेक्षा से जो मनुष्य, मनुष्य का और तिर्यच, तिर्यच का आयुष्य बांधते हैं, वे अज्ञान दशा में ही बाँधते है, वे उस समय सम्यग्दृष्टि नही होते हैं।

१. सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यच, सम्यग्दृष्टि अवस्था मे वैमानिक के सिवाय दूसरा कोई भी आयुष्य नही बाँधते, फिर भले ही वे अविरत हो, देश-विरत हो, या सर्व विरत हो। मिथ्यात्व अवस्था में आयु का बन्ध कर लेने के बाद सम्यक्त्व की प्राप्ति हो, तो ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने बन्ध के अनुसार चारों गति में जा सकता है। यह बात भगवती सूत्र शतक ८ तथा १३ से ज्ञात होती है।

२. भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक ८ की टीका मे लिखा है कि - "अतएव बालत्वे समानेऽपि अविरतसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो देवायुरेव प्रकरोति न शेषाणि।"

३. दशाश्रुतस्कन्ध की छठी दशा मे क्रियावादी के नरक में जाने का उल्लेख है, वह जाने विषयक है। वह बन्ध विषयक उल्लेख नहीं। क्योंकि क्रियावादीपने में नरकायु का बन्ध नही

होता। भगवती सूत्र शतक ३० में लिखा है कि 'कृष्ण, नील कापोत लेश्या वाले क्रियावादी मनुष्य और तिर्यच, किसी भी के आयुष्य का बन्ध नहीं करते' और नरक में तो ये कृष्णादि लेश्या ही हैं, जब वे कृष्णादि तीन लेश्या में आयुष्य बांधे नहीं, तो नरक के योग्य बन्ध का प्रश्न ही कहाँ रहता है ?

४. भगवती सूत्र श. ३० में जो विधान है, वह क्रियावादियों की अपेक्षा से है, भले ही वे अविरत सम्यग्दृष्टि देश-विरत हो अथवा सर्व-विरत हो। क्योंकि वहाँ तीन विकले को छोड़ कर अन्य सभी सम्यग्दृष्टि, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, जो नारक, तिर्यच-पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देव हैं सब को क्रियावादी माना है। इसलिये इनमें सामान्य क्रियावा सम्मिलित हैं और विशेष भी।

विकलेन्द्रिय को इसलिए छोड़ा है कि जो सम्यक्वी मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी विकलेन्द्रिय (अपर्याप्त अवस्था में) अवश्य ही मिथ्यात्वी होने वाले हैं और सम्यक्त्व अवस्था मे पतनोन्मुख हैं) वे किसी भी गति का आयुष्य नही बांधते पतनोन्मुखी होने के कारण उनमें समवसरण भी अक्रियावादी अज्ञानवादी का ही पाया जाता है।

५. इसी शतक के प्रथम उद्देशक में भी लिखा है कि कृष्णलेशी क्रियावादी जीव (पांचवीं तथा छठी नरक और एक मनुष्य-गति का ही आयुष्य बांधते हैं। इनकी टीका में स्पष्ट लिखा है कि सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यच-पचे वैमानिक का ही आयुष्य बांधते हैं तथा मूलपाठ में भी उल्लेख है।

६. भगवती सूत्र शतक २६ उद्देशक १ में आयुकर्म की अपेक्षा समुच्चय जीव के मनःपर्यवज्ञान और नोसंज्ञोपयुक्त मे दूसरे भंग (बांधा, बांधते हैं और नहीं बाँधेंगे) को छोड़ कर शेष तीन भंग बताये है। तिर्यच पंचेन्द्रिय के १. सम्यग्दृष्टि २. सज्ञानी ३ मति ज्ञानी ४. श्रुतज्ञानी और ५ अवधिज्ञानी इन पांच मे उपरोक्त तीन भंग हैं। मनुष्य में समुच्चय के अनुसार, किन्तु पूर्वोक्त ५ बोलों में ३ भंग है। इन बोलों में मनुष्य की आयु नहीं बांधते। इसीलिए तीसरा भंग छोड़ा है। अतएव वैमानिक का आयु बॉधते हैं।

७. अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यच-पंचेन्द्रिय भी वैमानिक के सिवाय दूसरा आयु नहीं बाँधते, तो फिर व्रतधारी का तो कहना ही क्या ? भगवती सूत्र श. ६ उ. ४ में लिखा है कि - 'समुच्चय जीव और वैमानिक देव तो प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानअप्रत्याख्यान, इन तीन से निर्वर्तित आयु ही बाँधते है, शेष २३ दंडक के जीव, केवल अप्रत्याख्यान निर्वर्तित आयु ही बांधते हैं।' इस आधार से सिद्ध है कि विरत मनुष्य और तिर्यच-पंचेन्द्रिय तो वैमानिक का ही आयु बांधते है।

८. मनुष्य, यदि मनुष्य का आयु बांधे और तिर्यच मर कर तिर्यच होवे, तो इसे 'तद्भवमरण' नामक 'बाल-मरण' माना है। इसकी प्रशंसा करने पर साधु को निशीथ सूत्र उ. ११ के अनुसार प्रायश्चित्त आता है।

१९१ प्रश्न - सम्यक्त्व होते हुए भी विरति की विराधना से साधु व श्रावक भी भवनपति आदि मे जाते हैं, तव वैमानिक का नियम कहाँ रहा ?

उत्तर - विराधक साधु व श्रावक में सम्यक्त्व और क्रिया-वादीपना निरंतर रहता ही है - यह कोई नियम नहीं है। भगवती १०-४ की टीका में लिखा है कि चमरेंद्र के त्रायस्त्रिंशक देव, काकन्दी के श्रावक थे। वे पहले तो उग्र-विहारी थे, किन्तु बाद में पासत्थ-विहारी हुए, सो - 'ज्ञानादि से बाह्य ते पासत्था' इस आदि शब्द से दर्शन से भी बाह्य हो सकते हैं। उनमें दर्शन का नियम कैसे रह सकता है ?

१. एक भव में साधुपना सैकड़ों बार तथा श्रावकपन और सम्यक्त्व हजारों बार आ सकता है और जा सकता है (अनुयोगद्वार-आगमोदय समिति पत्र २६०) अतएव विराधकों में सम्यक्त्व रहता ही है, ऐसी बात नहीं है ※।

२. नियंठे के १३ वें गतिद्वार की टीका में भी अविराधक का खुलासा किया है, वहाँ भी "अविराधना ज्ञानादीनाम्" तथा टब्बार्थ में भी उल्लेख है। अतएव 'ज्ञानादि' में आदि शब्द से दर्शन का भी ग्रहण हो सकता है।

३. जिस मनुष्य तथा तिर्यंच ने पहले मिथ्यात्व अवस्था में नरक, तिर्यंच, मनुष्य भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी में से किसी का आयु बांध लिया हो और बाद में सम्यक्त्व, श्रावकपन अथवा साधुता प्राप्त कर ले, तो अवश्य ही विराधक होगा, क्योंकि नरकादि तीन गति का आयु बांधने के बाद सातवें गुणस्थान से आगे नहीं जा सकता तथा उस भव में आराधक भी नहीं हो सकता।

※ चारित्रिक विराधना के समय परिणाम हीयमान होते हैं। उस समय दर्शन की ओर से भी उपेक्षा हो, तो असंभव नहीं- डोशी।

१९२ प्रश्न - भगवान् मल्लिनाथ ने पूर्वभव में देवायु के साथ स्त्री-वेद का बन्ध किया, यह सम्यक्त्व अवस्था मे ही तो था?

उत्तर - नहीं, स्त्रीवेद का बंध दूसरे गुणस्थान से आगे नहीं होता, कर्मग्रन्थ भी यह बतलाता है। भगवान् मल्लिनाथ ने तो अनुत्तर विमान के देवायु का बन्ध किया था, किन्तु अनुत्तर विमान के देवायु के साथ स्त्रीवेद के बन्ध का संबंध नही है। स्त्रीवेद का बन्ध अन्य काल में हुआ था। ज्ञातासूत्र के आठवे अध्ययन को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती हैं।

१९३ प्रश्न - जिसने मिथ्यात्व में नरकादि का आयु बांधा, वह सम्यक्त्व सहित आयु पूर्ण कर के पुनः नरकादि मे कैसे जा सकता है ? उसे मृत्यु के समय मिथ्यात्व आना आवश्यक है ?

उत्तर - जिसमें मृत्यु हुई हो, उसी मे आयु बन्ध होने का सिद्धांत, लेश्या से संबंधित है, अन्य किसी से नही। जैसे पुलाक निर्ग्रन्थ, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात चारित्र में आयुष्य तो नही बॉधते, लेकिन उसमें मर कर देवलोक में उत्पन्न तो होते हैं। इसी प्रकार कोई-कोई मिथ्यात्व में आयुष्य बांध कर अविरत सम्यग्दृष्टि तथा विराधक श्रावक या साधु होकर भवनपति आदि मे उत्पन्न होते हैं- यह असंगत नही है।

१९४ प्रश्न - धन्ना अनगार ने तपस्या की, इससे उन्हे निर्जरा हुई या पुण्य-बन्ध हुआ ?

उत्तर - तपस्या से निर्जरा तो अवश्य होती ही है, लेकिन साथ में शुभयोग रहने से पुण्य बन्ध भी होता है। संयम और तप के साथ जो पुण्य बन्धता है, वह मुक्ति मे बाधक कदापि नहीं

होता। बाधक होते है-पहले के बन्धे हुए शेष कर्म। अन्य कर्म के क्षय के साथ वह पुण्य-कर्म शीघ्र ही क्षय हो जाता है।

१९५ प्रश्न - द्रौपदी, पांच पुरुषो की नारी थी। वह पांचे से भोग करती थी, तो उसे सती कैसे माना जाय ?

उत्तर - द्रौपदी ने निदान के प्रभाव से पांच पति को वरण किया था और वरण करने के बाद उन्होंने बारी नियत करके नियम बांध लिया था। उस नियम का उसने सच्चाई के साथ पालन किया। इसकी साक्षी उस देव ने भी दी, जिसे पद्मनाभ राजा ने उसे लाने के लिये कहा था। देव ने कहा था कि 'द्रौपदी को पाण्डवों के अतिरिक्त और किसी भी पुरुष के साथ भोग की वांछा न तो पहले थी, न अभी है और न आगे होगी, इसलिये तू उसे प्राप्त करने की चेष्टा मत कर।' अतएव वह सती थी। पांच पति की बात अपवाद स्वरूप है ✯। अतएव इसका उदाहरण दूसरा को लेना उचित नहीं है।

१९६ प्रश्न - कोई-कोई कहते हैं कि - "श्रावको के लिए तेले से अधिक तपस्या करने का विधान नही है," क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर - 'श्रावक तेले से अधिक तप नहीं कर सकता'

✯ किसी वर्ग विशेष मे 'वहुपति' प्रथा होती है। उन प्रथा के कार एक स्त्री के कई पति होते है। एक भाई के साथ विवाह होने पर सभी भा उसके पति माने जाते हैं। आज भी यह प्रथा उत्तर प्रदेश मे कहीं-क अवशेष है। साहित्यिक शब्दो मे इसे 'मातृसत्ताक प्रथा' (जिसमं स्त्रिया र आधिपत्य हो) कहा जाता है। कदाचित् द्रौपदी के समय भी यह प्रथा र और निन्दनीय नहीं मानी जाती हो-होगी।

स प्रकार का विधान तो कहीं देखने में नहीं आया, परन्तु कुछ ल्लेख ऐसे है कि जिनसे श्रावक का अधिक तप करना सिद्ध ोता है। जैसे -

१. आनन्द श्रावक के विषय मे टीका, अर्थ और आवश्यकादि i लिखा है कि श्रावक की ग्यारह पडिमा का आचरण करते मय उसने एकान्तर से लेकर ११-११ तक का तप किया था। ूलपाठ में भी **'इमेणं एयारूवेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं ग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के जाव किसे धमणिसंतए जाए।'** ह उल्लेख वैसा ही है, जैसा उग्र तपस्या करने वाले मुनियो का ा उन्होंने एक महीने का संथारा भी किया है, फिर तेले तक ही ीमा कैसे हो सकती है ?

२. कार्तिक सेठ ने पांचवी प्रतिमा सौ बार की, तो उन्होने ी, पचोले पचोले का पारणा, पांच मास तक सौ बार किया था।

३ ठाणांग ३-४ में श्रावक के तीन मनोरथ से ज्ञात होता है के - "श्रावक पादपोपगमन" नाम का अनशन भी कर सकता ै। चौथे ठाणे के ३ उद्देशक मे आये हुए चौथे विश्राम मे भी ादपोपगमन का विधान है। फिर आजीवन संथारा करने वाले तेले े अधिक तप क्यो नहीं कर सकते ?

४. प्राचीन आचार्यो द्वारा रचित गुणस्थान द्वार के लक्षण द्वार े, पांचवे गुणस्थान के विषय में लिखा है कि - नवकारसी आदि ार्पिक तप को, अर्थात् जिन तीर्थकरों के समय, जितना उत्कृष्ट ाप प्रचलित हो (प्रथम के बारह १२ मास, दूसरे से २३वें तक ८ ास और २४ वें के शासन में ६ मास) उतना उत्कृष्ट तप श्रावको के लिये भी होता है, इसमें कोई वाधा नही है।

५. व्रतधारी श्रावक के अतिरिक्त विद्याधर आदि भी वि साधन के लिये कितना तप करते हैं ? जैसे शम्बूक ने, साहसग ने, रावण ने, "षड्उपवासे खांडो साध्यो" आदि रावण की वि साधन विधि, दिगम्बर पद्मपुराण में है और 'त्रिषष्टिशलाका पु चरित्र' में अनेक विद्याधरों की विकट तपस्या का वर्णन है, f श्रावक तेले से अधिक तप क्यों नही कर सकता ? अर्थात् अव कर सकता है ऐसा आगम का विधान है।

६. भगवती सूत्र श. ७ उ. २ में सर्व-उत्तरगुण पच्चक्ख जो 'अणागयमइक्कंतं' आदि १० भेद हैं, वे सर्व-उत्तरगुण पच्चक्ख तिर्यंच में भी हैं। इनमें से तीसरा भेद 'कोडिसहियं' है, उस कनकावली आदि अनेक प्रकार का तप आया है। जब तिर्यंच भी इस प्रकार का तप हो सकता है, तो मनुष्य श्रावक के तेले अधिक तप क्यों नहीं हो सकता ? इसमें दसवां 'अद्धा पच्चक्खा हैं, यह अद्धा पच्चक्खाण, नवकारसी से लगा कर वर्षी-तप त का हो सकता है। अतः श्रावक तेले से अधिक तप करे, तो उस कोई सैद्धान्तिक बाधा नहीं है।

१९७ प्रश्न - कोई यह भी कहते हैं कि - "श्रावको लिये तपस्या चौविहारपूर्वक ही होती है और कोई यों भी कहते कि बड़ी तपस्या गरम-पानी के सिवाय अन्य धोवन आदि करना नही कल्पता है," तो क्या ये बातें ठीक है ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. ७ उ. २ तथा स्थानांग १० **'अणागयमइक्कंतं'** आदि पच्चक्खाण के १० भेद हैं। उनमें से भेद सागार-आगार सहित हैं। इसलिये तिविहार तपस्या हो सक है और धोवन, आछ आदि का आगार रह सकता है। **'परिमाणक**

ं दात (दत्ति) आदि का परिमाण आया है जिसमें आदि शब्द से छाछ, आछ, सूंघनी आदि का परिमाण करे, तो भी इसमे समावेश हो सकता है। आगार तथा परिमाण, इन दो बोलों से अपने अवसर के अनुसार उचित आगार रखे जा सकते है। इस प्रकार तिविहार तथा धोवण, छाछ आदि के आगार से तपस्या की जा सकती है, किन्तु आगार नहीं खोलकर समुच्चय उपवास आदि के पच्चक्खाण मे छाछ आदि नहीं ले सकते । स्वाभाविक आगार तो नियमित होते ही हैं। लेकिन विशेष आगार खोलने से ही रह सकते हैं।

आगर नही खोलने पर भी दिन का तिविहार रहता है और भक्तप्रत्याख्यान संथारा भी चौविहार तथा तिविहार, यों दोनो तरह का हो सकता है। यह बात समवायांग १७ में १७ प्रकार के मरण की टीका मे लिखी है। अतएव श्रावक के तिविहार तपस्या होने मे कोई वाधा नही है और गरम-पानी के अतिरिक्त उचित आगार रख कर भी तपस्या की जा सकती है।

१९८ प्रश्न - ग्रन्थों मे तो श्रावको के चौविहार और पौपध सहित तप का वर्णन आया है और उसी के फल के विषय मे प्रश्न हुए है ?

उत्तर - ग्रन्थों में जो तपस्या का फल बतलाया है, वह उत्कृष्ट क्रिया और मध्यम क्रिया मे से किसी एक दर्जे को बताया होगा। सभी प्रकार की क्रिया का पृथक्-पृथक् फल मिलना तो कठिन है क्योकि तप एवं चरिता-चरित के असंख्य दर्जे है, उनमे से किसी-किसी दर्जे का विवरण ग्रन्थ मे किया होगा। जैसे कि - बारह मास की संयम-पर्याय वाला साधु, सर्वार्थसिद्ध के सुखों

का उल्लंघन कर देता है' - यह बात मध्यम दर्जे की है, क्योंकि भरत, मरुदेवी, चन्द्रलयारानी, एलापुत्र, आदि ने अन्तर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है और कई साधु अनेक वर्ष संयम पाल कर भी प्रथम स्वर्ग मे ही गये और जाते है।

श्रावक तिविहार, चौविहार, पौषध सहित, पौषध रहित आस्रव रोक कर अथवा बिना रोके भी तपस्या कर सकते है। उत्तराध्ययन सूत्र अ. ५, गा २६ में "**पोसहं दुहओपक्खं, एगरायं ण हावए**" लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि यदि श्रावक को दिन में समय (अवकाश) नही मिले, तो रात को तो पौषध अवश्य करे तथा श्रावक को चौथी आदि प्रतिमा मे पौषध तो महीनें में ६ आये, किन्तु तप तो निरन्तर चोले पंचोले आदि का चला है। इससे ज्ञात होता है कि श्रावक, पौषध सहित या रहित तथा संवर सहित या रहित तपस्या कर सकते है।

१९९ प्रश्न - एक सिद्ध की अवगाहना की लबाई से असंख्यात गुण अधिक अनन्त सिद्धो की अवगाहना प्रज्ञापना सूत्र में बताई है। यह किस प्रकार समझी जाय ?

उत्तर - सिद्ध अवगाहना चौडाई की अपेक्षा समझाना चाहिए। एक सिद्ध की पूर्ण अवगाहना जितनी है, उतनी ही पूर्ण तथा उनकी बराबरी की अवगाहना, उसी क्षेत्र मे रहने वाले अनन्त सिद्धों की है। फिर एक-एक प्रदेश की चौडाई मे हानि-वृद्धि करते हुए भी प्रत्येक प्रदेश। में अनन्त-अनन्त है। इस प्रकार एक सिद्ध की अपेक्षा मूल अवगाहना में जितने अनंत सिद्ध हैं, उनसे प्रत्येक प्रदेश छोड़ते-छोड़ते सम्पूर्ण अवगाहना मे जो अनन्त सिद्ध लिए है, वे असंख्यगुण हो जाते हैं, क्योंकि एक सिद्धात्मा के प्रदेश असंख्य ही होते हैं।



२०० प्रश्न - कोई देव, देवी का रूप वैक्रिय करके, उसके साथ क्रीडा करे और कोई देवी, देवता का रूप वैक्रिय करके उसके साथ क्रीडा करे, तब वे किस वेद का अनुभव करते हे और जो देव, वैक्रिय नही करे, उनके तो मूल वेद ही रहता है या दूसरा भी ?

उत्तर - कोई भी देव, देवी का रूप बना कर उसके साथ क्रीडा करे, तो उस समय उसके या तो पुरुष-वेद का उदय होता हे अथवा स्त्रीवेद का। इसी प्रकार देवी के भी एक ही वेद का उदय होता है। क्योंकि एक समय मे दो वेद का उदय नहीं होता है। प्रदेश-उदय तो सभी देव और देवियो के तीनों में से किसी भी वेद का हो सकता है। जैसे कि मल्लिनाथ भगवान् के पूर्व के मनुष्य जन्म मे ही स्त्रीवेद का वन्ध हो गया था और बाद में अनुत्तर विमान का आयुष्य बांध कर अनुत्तर विमान में गये। स्त्रीवेद का अबाधा काल १५०० वर्ष का है। वह पूर्ण होने के वाद स्त्रीवेद का प्रदेशोदय अनुत्तर-विमान में, उनके चालू हो ही गया और किसी ने नपुंसक वेद बांधा हो तो, उसका प्रदेशोदय भी हो सकता है। हां, नपुसक वेद का विपाकोदय देव और देवियो मे नही होता है।

२०१ प्रश्न - श्री राजीमतीजी ने भगवान् अरिष्टनेमिजी के साथ दीक्षा ली या बाद मे ?

उत्तर - राजीमतीजी ने भगवान् अरिष्टनेमिजी के वाद मे दीक्षा ली। उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन २२ गाथा ११ से ३२ तक को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। कल्पसूत्र मे उल्लेख हे कि 'जब भगवान् को ५४ दिन वाद केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ और

कृष्ण-वासुदेव, राजीमती आदि भगवान् को वंदना करने गये, तब श्रीकृष्ण ने राजीमतीजी के उत्कट प्रेम के विषय मे प्रश्न किया था, भगवान् ने ९ भवों का वर्णन किया था। बाद मे भगवान् का विहार हो गया। इसके बाद फिर द्वारिका पधारना हुआ, तब रहनेमि और राजीमती जी की दीक्षा हुई थी। कल्पसूत्र की टीका में यह उल्लेख है।

२०२ प्रश्न - श्री यक्षिणीजी और राजीमतीजी एक ही है या भिन्न-भिन्न ?

उत्तर - यक्षिणीजी और राजीमती जी दोनो भिन्न-भिन्न है ऐसा ग्रन्थकारों ने बतलाया है। सो ठीक ही है, आगम के अनुकूल है। क्योंकि यक्षिणी की दीक्षा तो भगवान् अरिष्टनेमिजी की प्रथम देशना में जब चतुर्विध संघ रूप तीर्थ की स्थापना हुई तव ही हो गई थी और राजीमती जी की दीक्षा तो कुछ दिन बाद में हुई थी।

२०३ प्रश्न - श्री राजीमती जी को पहले जातिस्मरण ज्ञान हुआ था क्या ?

उत्तर - ऐसा उल्लेख कहीं देखने में नहीं आया। यदि हुआ हो, तो भी अपने ९ भवों की बात सुन कर हुआ होगा, किन्तु यह पढ़ने में नही आया।

२०४ प्रश्न - असंज्ञी में से आकर कोई मनुष्य-भव प्राप्त करे, तो उसे जातिस्मरण ज्ञान होता है, या नही ?

उत्तर - नहीं, इसका उल्लेख ज्ञातासूत्र अ. १ की टीका में है।

२०५ प्रश्न - हरिणैगमेषी की आराधना के लिए श्री कृष्ण ने पौषध युक्त तेला किया, तो क्या देव का सत्कार श्री कृष्ण ने पौषध में किया था ?

उत्तर - पौषध पालने के बाद सत्कार किया था। इस वर्णन मे अभयकुमार की साक्षी दी है और अभयकुमार ने पौषध पालने के बाद ही देव का सत्कार किया था।

२०६ प्रश्न - नल-कुबर और कूबेर ये दोनो एक हैं या भिन्न-भिन्न है ?

उत्तर - कुबेर, धनद, वैश्रमण आदि अनेक नाम कुबेर के है और 'नलकूबर' तो कुबेर के पुत्र का नाम है। श्री गजसुकुमाल जी के अधिकार की टीका में इसका उल्लेख इस प्रकार है - नलकूबरसमाना वैश्रमणपुत्रतुल्या:, इदं च लोकरूढ्याव्याख्यातं यतो देवानाम् पुत्रा न संति।''

अर्थात् - नलकूबर के समान अर्थात् कुबेर (वैश्रमण) के लडके के समान। यह लोकरूढ़ि से कहा गया है, क्योंकि देवताओं के पुत्र नहीं होते। इससे अनुमान होता है कि कुबेर किसी सुन्दराकार लड़के का वैक्रिय बनाते होंगे और उसका नाम नलकूबर होगा।

२०७ प्रश्न - उपशम-सम्यक्त्व की अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति पूर्ण होने के बाद जीव, क्या प्राप्त करता है ? क्या वह सात प्रकृति के पुनः उदय हुए बिना ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर - उपशम-सम्यक्त्व वाला अन्तर्मुहूर्त्त के बाद या तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है, या मिथ्यात्व मे जाता है। इसके सातो प्रकृतियो का प्रदेश उदय और विपाक उदय अवश्य होता ही है।

२०८ प्रश्न - क्षयोपशम-सम्यक्त्व के ७ विकल्प है। इनमे मे सभी विकल्प वाले पडिवाई (प्रतिपाती) होते है, या कोई अमुक विकल्प वाले ही ?

उत्तर - सात भंगों में से छह प्रकृति का उपशम आ॰ सातवीं प्रकृति का उदय वाला-एक सातवां भंग वाला ही पडिव (प्रतिपाती अर्थात् गिरने वाला) होता है, शेष छह भंग वा॰ पडिवाई नहीं होते हैं।

२०९ प्रश्न - सास्वादन सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - अनन्तानुबंधी चौक का उदय तथा मिथ्यात्व औ॰ मिश्रमोहनीय का उपशम और सम्यक्त्व मोहनीय का विशेष उद॰ हो, उसे 'सास्वादन सम्यक्त्व' कहते हैं। इसमे क्षयोपशम सम्यक्॰ का अंश होता है।

२१० प्रश्न - मनुष्य-क्षेत्र के १६ द्वार हैं, उनमे वंद कित॰ और खुले कितने हैं ?

उत्तर - जंबूद्वीप के ४, लवणसमुद्र के ४, धातकीखड के ॰ और कालोदधि समुद्र के ४ द्वार (दरवाजा) हैं। इस प्रकार मनुष्॰ क्षेत्र कुल १६ द्वार (दरवाजा) हैं। उनमें से २ लवणसमुद्र के॰ २ धातकीखंड के और २ कालोदधि समुद्र के, इस प्रकार ६ द्वा॰ इषुकार पर्वतों से रुके हुए हैं, इसलिये बंद हैं शेष १० दरवा॰ खुले हुए हैं।

२११ प्रश्न - योग और द्रव्य-लेश्या किस कर्म के उदय ॰ हैं ?

उत्तर - अशुभ-योग और अप्रशस्त द्रव्य-लेश्या मोहनी॰ कर्म के उदय से है और शुभ-योग तथा प्रशस्त द्रव्य-लेश्या नाम कर्म के उदय से है।

२१२ प्रश्न - एक जीव, एक भव में तथा अनेक भवा॰ आहारक-शरीर कितनी वार कर सकता है और यदि एक भव॰

दूसरी बार करे, तो कम से कम कितने समय का अन्तर हो सकता है ?

उत्तर - एक जीव एक भव में अधिक से अधिक दो बार और अनेक भवों में चार बार तक आहारक-शरीर कर सकता है। अन्तर कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त का रहता है।

२१३ प्रश्न - कम से कम कितने क्षेत्र और काल को जानने वाला अवधिज्ञानी, मन की बात जान सकता है ?

उत्तर - कम से कम, क्षेत्र से लोक का सख्यातवां भाग और काल से पल्योपम का संख्यातवां भाग जानने वाला अवधिज्ञानी मन के द्रव्यों को (मन की बात को) जान सकता है।

२१४ प्रश्न - कम से कम कितने क्षेत्र और काल को जानने वाला अवधिज्ञानी कर्म के द्रव्यों को जान सकता है ?

उत्तर - कम से कम लोक के और पल्योपम के बहुत से सख्यातवें भागो को जानने वाला अवधिज्ञानी कर्म के द्रव्यो को जान सकता है।

२१५ प्रश्न - कितने काल जानने वाला अवधिज्ञानी, सम्पूर्ण लोक को जानता है ?

उत्तर - एक पल्योपम में कुछ कम जानने वाला अवधिज्ञानी, सम्पूर्ण लोक को जानता है ?

२१६ प्रश्न - परम अवधिज्ञान होने के बाद कितनी देर मे केवलज्ञान होता है ?

उत्तर - परम अवधिज्ञान होने के अंतर्मुहूर्त्त बाद केवलज्ञान उत्पन्न हो ही जाता है।

२१७ प्रश्न - ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी मनुष्य क्षेत्र मे

विपुलमति से ढाई अंगुल कम देखता है, तो ये ढाई अगुल का से समझना ?

उत्तर - ये अढ़ाई अंगुल उत्सेध अंगुल के समझना चाहिये

२१८ प्रश्न - हाथी और घोडे के विना शेष पचेन्द्रिय रत्न अनुत्तर विमान से आये हुए होते हैं या नही ?

उत्तर - प्रज्ञापना पद २० के मूलपाठ मे लिखा है कि सेनापति आदि पांचों रत्न, अनुत्तर विमान से आये हुए नही हो और अर्थ में लिखा है कि ये नरक में जाते है।

२१९ प्रश्न-वैक्रिय-शरीर त्रसनाडी के बाहर होता है क्या

उत्तर - नही, त्रसनाडी (लोकनाड़ी-त्रसनाल) मे ही होत है। यह बात प्रज्ञापना पद २१ के अर्थ में लिखी है।

२२० प्रश्न - साकार और अनाकार उपयोग मे लब्धि उत्प होती है या नही ?

उत्तर - लब्धि साकार उपयोग में ही उत्पन्न होती है अनाकार उपयोग मे नही।

२२१ प्रश्न - पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय तेजोलेश्या वाले जीव अधिक होते है या देवो मे ?

उत्तर - पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे तेजोलेश के जीव कभी मिलते हैं और कभी नहीं भी मिलते है। जब मिल हैं, तब भी वे देवता से बहुत कम होते है और देव उनसे असख गुण अधिक होते है। कारण यह है कि पृथ्वीकाय, अप्काय औ वनस्पतिकाय में तेजो-लेश्या उन्हीं जीवों को थोड़ी देर के लि होती है, जो देवों में से आया हो, शेष को नहीं होती। इसलि देव ही अधिक होते हैं।

२२२ प्रश्न - पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तेजोलेश्या, जघन्य स्थिति वाले को होती है या मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति वाले को होती है ?

उत्तर - मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति वालो मे होती है, जघन्य स्थिति वालो में नही होती।

२२३ प्रश्न - तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के जीव, तेजोलेश्या में ही अगले भव का आयुष्य बाध सकते है, या नही ?

उत्तर - यह अटल नियम है कि - जीव का आयुष्य जिस लेश्या मे बॅधता है, उसी मे वह मरता है। यह भी अटल नियम है कि पृथ्वीकाय आदि तीनो काय के जीव तेजोलेश्या में नहीं मरते। इसलिये वे तेजोलेश्या मे आयुष्य नहीं बाँधते और आयुष्य का वन्ध करने के समय तक तेजोलेश्या उनमें रहती भी नहीं है।

२२४ प्रश्न - जघन्य स्थिति वाले मनुष्य और तिर्यंच मे कितने ज्ञान होते हैं ?

उत्तर - कोई भी ज्ञान नहीं होता, किन्तु मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान होते है। प्रज्ञापना सूत्र के पांचवे पद में इसका खुलासा है।

२२५ प्रश्न - कितनी अवगाहना वाले तिर्यंच मे अवधिज्ञान हो सकता है ?

उत्तर - अंगुल के असंख्यातवे भाग से लेकर हजार योजन की अवगाहना वाले तिर्यंच को अवधिज्ञान हो सकता है, ऐसा प्रज्ञापना सूत्र के पांचवें पद से स्पष्ट होता है।

२२६ प्रश्न - जो मनुष्य पर भव से अवधिज्ञान साथ लेक आता है, वह जघन्यादि तीन भेद में से किस भेद का होता है ?

उत्तर - वह अवधिज्ञान केवल मध्यम ही होता है।

२२७ प्रश्न - जिस तिर्यंच का आयुष्य करोड़ पूर्व का हो उसकी अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर - जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग से लेकर हज योजन तक हो सकती है। यह बात भगवती सूत्र शतक २४ से सिद्ध है।

२२८ प्रश्न - संज्ञी मनुष्य और तिर्यंच की उत्कृष्ट अवगाहन होती है, वह युगलिक की होती है या अन्य की ?

उत्तर - मनुष्यों में तो उत्कृष्ट अवगाहना युगलि की ही होती है, किन्तु तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में उत्कृष्ट अवगाहना युगलिक की नहीं होती।

२२९ प्रश्न - उत्पत्ति के समय मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की जो जघन्य अवगाहना होती है, वह युगलिक में होती है या अन्य में ?

उत्तर - उत्पत्ति के समय मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की जघन्य अवगाहना युगलिक के सिवाय दूसरों में होती है क्योंकि युगलिक की तो अवगाहना कुछ बड़ी होती है, ऐसा प्रज्ञापना पद ५ से ज्ञात होता है।

२३० प्रश्न - दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव में लेश्या कितनी होती है ?

उत्तर - दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देवों में से कुछ में कृष्ण-लेश्या और कुछ में तेजो-लेश्या होती है।

२३१ प्रश्न-तीर्थकर की आगत में कितनी लेश्या होती है?

उत्तर - तीर्थकर की आगत (आगति) में कृष्ण-लेश्या को छोड़ कर शेष पांच लेश्या होती है।

२३२ प्रश्न-वासुदेव की आगत मे कितनी लेश्या होती है?

उत्तर - वासुदेव की आगत (आगति) में कृष्णलेश्या और नीललेश्या को छोड़ कर शेष चार लेश्या होती है ?

२३३ प्रश्न - सम्यग्दृष्टि और मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान वाले, विकलेन्द्रिय शाश्वत मिलते हैं या नही ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि तथा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान वाले विकलेन्द्रिय कभी मिलते हैं और कभी नहीं मिलते हैं ।

२३४ प्रश्न - असंज्ञी जीवों मे २२ दण्डक होते हैं, वे सभी शाश्वत हैं या नही ?

उत्तर - नरक, देव और मनुष्य, इनके १३ दण्डक तो असंज्ञी के अशाश्वत है और शेष ९ दण्डक शाश्वत हैं।

२३५ प्रश्न - सम्पूर्ण लोक मे मिश्र-दृष्टि शाश्वत है या अशाश्वत ?

उत्तर - मिश्रदृष्टि अशाश्वत है।

२३६ प्रश्न - आहारक-शरीर शाश्वत है या अशाश्वत ?

उत्तर - आहारक शरीर अशाश्वत है।

२३७ प्रश्न - नरक और देव मे चारो कषाय शाश्वत हैं या अशाश्वत ?

उत्तर - नरक मे क्रोध-कषाय में वर्तने वाले शाश्वत मिलते हैं। शेष अशाश्वत और देवों में लोभ-कषाय मे वर्तने वाले शाश्वत मिलते हैं, शेष अशाश्वत।

२३८ प्रश्न - केवली-समुद्घात होने के कितने समय ब. केवली भगवान् मोक्ष में जाते हैं ?

उत्तर - सयोगी-भवस्थ केवली अनाहारक का अन्तर जघन्‍ और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का ही है, इसलिए केवली-समुद्घा करने के बाद केवली भगवान् अन्तर्मुहूर्त्त में मोक्ष में जाते हैं।

२३९ प्रश्न - एक जीव लगातार पंचेन्द्रिय के कितने भ कर सकता है ? कोई ७-८ और कोई १५ भव करने का कहते हैं, इसमें सही बात क्या है ?

उत्तर - पंचेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट एक हजार सागरोपम से कुछ अधिक की है। हजार सागरोपम में तो सैकड़ों भव हो सकते हैं। केवल पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के या मनुष्य, मनुष्य के ही लगातार भव करे तो आठ भव कर सकता है, अधिक नहीं। उत्तराध्ययन के १ वें अ. में ७-८ भव बताये हैं, वे तो केवल तिर्यच-पंचेन्द्रिय के ह समझने चाहिये, क्योंकि वहाँ मनुष्य भव की दुर्लभता का वर्ण किया गया है, उसमें देव और नारक का कथन अलग किया ग है। इसलिए वे ७-८ भव तिर्यच-पंचेन्द्रिय के हैं।

प्रश्न हो सकता हैं कि - वे भव, तिर्यंच-पंचेन्द्रिय के हैं, त वहाँ ७ और ८ ये दो बातें क्यों बताई ? इसका समाधान यह है कि वहाँ तिर्यच-पंचेन्द्रिय की बड़ी कायस्थिति बताने के लि सात भव लगातार कर्मभूमि के करोड़पूर्व, करोड़पूर्व के और आठवाँ भव युगलिक तिर्यञ्च का तीन पल्योपम का हो सकता है इस प्रकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय लगातार तिर्यंच-पंचेन्द्रिय के आठ भ कर सकता है जिसकी उत्कृष्ट स्थिति सात करोड़ पूर्व और ती

पम की हो सकती है। यह बात भगवती सूत्र के चौबीसवें
में स्पष्ट बतलाई गई है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच-पंचेन्द्रिय
गातार आठ भव हो सकते हैं। इससे अधिक नहीं हो सकते

जो समुच्चय पंचेन्द्रिय के उत्कृष्ट १५ भव कहते हैं, वह
-संगत नही है, क्योंकि सुमुख गाथापति आदि के १६ भव,
और देव के सुखविपाक में बताये हैं। दुःखविपाक में
त्र (मृगालोढ़ा) के करीब १८ भव, नागश्री के २७ भव और
शक के ३२ भव पंचेद्रिय के बताये हैं। ये तो आगमों में
हुए वर्णनों से ही सिद्ध है, परन्तु कायस्थिति के हिसाब से
मुच्चय पंचेन्द्रिय के सैकड़ों भव लगातार हो सकते हैं।

२४० प्रश्न - कोई अपर्याप्त जीव मर कर नरक और देवों
ता है या नहीं और कोई जीव नारकी व देवों से आकर
प्ति अवस्था में ही मरता है या नहीं ?

उत्तर - कोई भी अपर्याप्त जीव मरकर नरक और देवों में
नही होता और वहाँ से आकर कोई अपर्याप्त अवस्था में
भी नहीं है।

२४१ प्रश्न - मनुष्य और तिर्यंच, जघन्य कितनी स्थिति
मर कर नारकी और देवों में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति के तिर्यंच पंचेन्द्रिय
नरकों में तथा आठवें स्वर्ग तक के सभी देवो में उत्पन्न हो
है।

जघन्य प्रत्येक मास की स्थिति वाले मनुष्य, प्रथम नरक
भवनपति से लगा कर दूसरे स्वर्ग के देवों मे और दूसरी से

ले कर सातवी नरक तथा तीसरे देवलोक से ले कर सर्वा
तक के देवों में जघन्य प्रत्येक वर्ष की स्थिति वाले जा सक

२४२ प्रश्न - असंज्ञी तिर्यच-पंचेन्द्रिय की अव अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक से अधिक कितनी हो सकती है ?

उत्तर - उत्कृष्ट एक हजार योजन की। यह बात सूत्र के चौबीसवें शतक से सिद्ध है।

२४३ प्रश्न - असंज्ञी तिर्यच-पंचेन्द्रिय का, देवता में से अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग का आयुष्य होता पल्योपम के असंख्यातवें भाग के तो असंख्य भेद हैं, फि असंज्ञी कितना आयुष्य पा सकता है ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. २४ उ. २ में टीकाकार लि कि वे असंज्ञी तिर्यच जीव, यहाँ के उत्कृष्ट आयु के स देव में उत्कृष्ट आयुष्य पा सकते हैं, अर्थात् उन्हें करोड़ पू की आयु प्राप्त हो सकती है।

२४४ प्रश्न - तीन पल्योपम की स्थिति पूर्ण हो तिर्यच-पंचेन्द्रिय की जघन्य अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर - जघन्य प्रत्येक धनुष की।

२४५ प्रश्न - चार प्रकार के देवों में उत्पन्न होने तिर्यच और मनुष्य युगलिकों में कितनी और कौनसी दृष्टि है?

उत्तर - भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी में जाने युगलिकों में एक मिथ्यादृष्टि और वैमानिक में जाने किसी में सम्यग्दृष्टि और किसी में मिथ्यादृष्टि, ये दो होती है।

२४६ प्रश्न - तिर्यच युगलिक संख्यात हैं या असंख्यात ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. २४ उ. २ की टीका में तिर्यच
लेक संख्यात बताये है।

२४७ प्रश्न - सम्पूर्ण तिच्छी लोक मे तिर्यच युगलिक होते
ा नहीं ?

उत्तर - तिर्यच युगलिक मनुष्य क्षेत्र मे ही होते हैं। यह बात
वती सूत्र के चौतीसवें शतक से प्रमाणित होती है।

२४८ प्रश्न - युगलिक-भव में दृष्टि का परिवर्तन होता है
हीं ?

उत्तर - भगवती शतक २४ को देखने से मालूम होता है
युगलिक भव मे दृष्टि का परिवर्तन नहीं होता है।

२४९ प्रश्न - श्रीजीवाभिगम सूत्र मे नरक के वर्णन में
पति का उल्लेख है, तो क्या नरक में भी वनस्पति होती है ?

उत्तर - नरक मे औदारिक शरीर वाली वनस्पति की उत्पत्ति
होती। वहाँ वैक्रिय की अपेक्षा से वर्णन हुआ है।

२५० प्रश्न - चर-चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश परस्पर एक
र का स्पर्श करता है या नहीं ? उनका तापक्षेत्र कितना है ?

उत्तर - चर (भ्रमणशील) चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश
पर स्पर्श करता भी है और उनका ताप-क्षेत्र जम्बूद्वीप आदि
-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूप से है तथा एक-एक क्षेत्र मे
भिन्न-भिन्न मण्डलों में भिन्न-भिन्न रूप से है।

२५१ प्रश्न - पुष्करवर द्वीप के मानुषोत्तर पर्वत के ओर
नदियाँ कहाँ मिलती है ? जीवाभिगम सूत्र के उल्लेख में
जय द्वार के नीचे सीता-सीतोदा नदी का उल्लेख नहीं है किन्तु

स्थानांग सूत्र के ७ वें स्थान में पुष्करवर समुद्र में सात नदियों मिलने का लिखा है। यह किस प्रकार है ?

उत्तर - स्थानांगसूत्र के उल्लेख का समाधान देखने में न आया। जीवाभिगम सूत्र से यह तो प्रमाणित होता है कि वे नदि द्वारों के नीचे तो नहीं आई। वैसे जम्बूद्वीप की अन्य नदियों व तरह द्वार से दूसरी ओर होकर वे नदियाँ पुष्करवर समुद्र में : सकती है। परन्तु ढ़ाई द्वीप के बाहर नदियों का नहीं होना लिखा है। कदाचित् पुष्करवर समुद्र की ओर जाने के का उनको पुष्करवर समुद्र में मान ली हो। सुनने में और पढ़ने में ऐसा आया है कि वे नदियाँ मानुषोत्तर पर्वत के नीचे (मूल में गई हैं। यदि वे भूमिगत होकर समुद्र में मिली हो, तो ठाणांग अ जीवाभिगम की संगति हो सकती है। तत्त्वंज्ञानीगम्य।

२५२ प्रश्न - जंबूद्वीप की जगती पर वर्षा होती है क्या ?

उत्तर - जम्बूद्वीप की जगती पर वर्षा होती है। वर्षा न होने का कोई कारण नहीं है।

२५३ प्रश्न - वीरस्तुति अध्ययन में 'कूटशामली' वृक्ष क भगवान् की उपमा में उल्लेख हुआ है और प्रश्नव्याकरण सूत्र शील की ३२ उपमा में जम्बूवृक्ष का उल्लेख हुआ है। इन दोनों क्या विशेषता है ?

उत्तर - जिस प्रकार शाल्मली-वृक्ष, स्वर्ण जाति के भवन देवों के लिये क्रीड़ा-स्थल है, उसी प्रकार भगवान् महा भव्यजीवों -आत्मार्थियों के लिये आनन्द-दायक थे। अनेक दे के लिये क्रीड़ा-स्थल होने की विशेषता के कारण तथा जम्बू की अपेक्षा भारत के निकट होने के कारण शाल्मली-वृक्ष न

उपमा दी गई और जिसके नाम से ही यह द्वीप विख्यात है-ऐसा महान् यशयुक्त होने के कारण शील को जम्बूवृक्ष की उपमा दी है।

२५४ प्रश्न - चक्रवर्ती मूल रूप से श्री देवी के पास रहते हैं तो क्या वैक्रिय रूप से अन्य रानियों के पास रहते हैं और सन्तान भी वैक्रिय रूप से होती हैं ?

उत्तर - जिसका मूल शरीर औदारिक हो, उसके वैक्रिय रूप से सन्तान हो सकती है।

२५५ प्रश्न - युगलिक मनुष्य के शव का अन्तिम संस्कार कौन करते हैं ?

उत्तर - युगलिक मनुष्य के शव (मृत शरीर) को भारण्ड आदि पक्षी उठा कर समुद्र आदि में डाल देते हैं।

२५६ प्रश्न - देवो की उपपात-शय्या पर का वस्त्र किस वस्तु से बना होता है ?

उत्तर - वह होता तो रत्नमय है, परन्तु क्षोम दुगुल्ल (कपास-रुई आदि) की तरह दिखाई देता है।

२५७ प्रश्न - बत्तीस प्रकार के नाटक में अन्तिम नाटक भगवान् महावीर की जीवनी का है, तो क्या सभी देवता इसी प्रकार से नाटक करते हैं और क्या प्रथम तीर्थपति के समय भी ऐसा ही करते थे ?

उत्तर - सूर्याभ देव ने भगवान् महावीर के सामने ऐसा ही किया था, किन्तु सभी देव ऐसा ही करते हैं- ऐसा कोई नियम नहीं है।

२५८ प्रश्न - जम्बूद्वीप के बाहर के दरवाजे के दो चौंतरे हैं

और वह लवण-समुद्र की सीमा है, फिर उस पर विजय-देव का स्वामित्व क्यों है ?

उत्तर - चौंतरे, जम्बूद्वीप के परकोटे के भीतर हैं।

२५९ प्रश्न - जम्बूद्वीप की 'पद्मवरवेदिका' की बावडी में जो 'कमल' हैं, वे वनस्पतिमय है या पृथ्वीमय ?

उत्तर - जम्बूद्वीप की जगती पर के वनखंड की बावड़ियो के कमल वनस्पतिकाय है, किन्तु पद्मवरवेदिका में कोई बावड़ी नहीं है।

२६० प्रश्न - जम्बूद्वीप के द्वार के गवाक्ष के कवेलू और बाँस, कैसे और कहाँ है ?

उत्तर - ज्योतिरस नामक रत्न के तथा लोक-प्रसिद्ध आकार वाले हैं। वे गवाक्ष के लगे हुए नहीं, उसके ऊपर हैं।

२६१ प्रश्न - देवता का महल, चबूतरा और सिंहासन, कोई एक योजन प्रमाण ऊँचे हैं औक कोई आधा योजन ऊँचे हैं, तो जब देव, सिंहासन पर बैठते हैं, तो मूल शरीर से ही चढते है या विकुर्वणा करके चढ़ते हैं ?

उत्तर - वे मूल रूप से भी चढ़ सकते हैं और वैक्रिय से भी। जब विद्याधर आदि बिना वैक्रिय के भी अनेक योजन ऊपर जा सकते हैं, तो देवों का तो कहना ही क्या * ?

* मनुष्य, मकान की दूसरी मंजिल पर सीढियो से चढना है, राजा, महाराजा, सम्राट आदि ऊँचे स्थान पर रखे सिंहासन पर सीढियाँ चढ कर जाते थे और विशाल सभा मे ऊँचे मंच पर चढ़ कर नेता लोग भाषण देते हैं, उसी प्रकार वहाँ भी होगा-डोशी।

२६२ प्रश्न - उत्सर्पिणी-काल की चौबीसी के अन्तिम तीर्थंकर का शासन कितना चलेगा ?

उत्तर - आगामी उत्सर्पिणी काल के चौवीसवे तीर्थंकर का शासन एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक चलेगा, ऐसा भगवती सूत्र के बीसवें शतक के आठवें उद्देशक में बताया है।

२६३ प्रश्न - अकर्मभूमि के मनुष्यों के वहाँ कचरा होता है या नही ?

उत्तर - अकर्मभूमि का क्षेत्र कचरे से रहित होता है।

२६४ प्रश्न - जीवाभिगमसूत्र में भरत एरवर्त क्षेत्र के मनुष्यो की अल्पबहुत्व बताई है, वह हमेशा के लिये समझनी चाहिये क्या ? जब वहाँ पहला, दूसरा और तीसरा आरा होता है, उस समय भी इस समय जितनी ही अल्प बहुत्व होती है ?

उत्तर - भरत एरवर्त क्षेत्र के मनुष्य तो परस्पर सदा के लिये प्रायः तुल्य ही होते है, परन्तु अन्तरद्वीपादि अन्य क्षेत्रों के साथ जो अल्पबहुत्व बताई गई है, वह भरत क्षेत्र और एरवर्त क्षेत्र के कर्मभूमि की अपेक्षा से समझनी चाहिये।

२६५ प्रश्न - शील की ३२ उपमा मे १४ वी उपमा में 'स्वर्णकुमार जाति के वेणुदेव' और १५ वीं में, 'नागकुमार' लिये, तो पहले 'नागकुमार' नहीं लेकर 'स्वर्णकुमार' क्यो लिये ? उल्टा क्रम क्यों रखा ?

उत्तर - वहाँ क्रम की अपेक्षा नहीं है। वे सभी उपमाएँ स्वतन्त्र हैं। यदि क्रम की अपेक्षा होती, तो केवलज्ञान आदि की उपमा के बाद वन, वृक्ष आदि की उपमा कैसे आती ?

२६६ प्रश्न - दूसरे गुणस्थान मे इस प्रकार कहते हैं कि -

'जीव अनादिकाल से उल्टे का सुल्टा हुआ, कृष्णपक्षी का शुक्ल पक्षी हुआ, तो क्या जीव पहला गुणस्थान छोड़ कर दूसरे मे जा है, या ऊपर से गिर कर आता है ? गुणस्थान को अपेक्षा उल्ट सुल्टा कैसे समझें ?

उत्तर - जीव, दूसरे गुणस्थान में ऊपर से ही आता है पहले से नहीं जाता। दूसरे गुणस्थान के वर्णन में कहा जाता कि- 'जीव उल्टा का सुल्टा और कृष्णपक्षी का शुक्लपक्षी हुआ, किन्तु ये गुण तो उसने चौथे गुणस्थान में ही प्राप्त कर लिये औ वे गुण दूससे गुणस्थान में भी हैं। यदि इस अपेक्षा से कहें त ठीक है। किन्तु यह कहना तो ठीक नहीं कि इस दूसरे गुणस्था वाले जीव में ये गुण पहले तो नहीं थे, पर दूसरे गुणस्थान मे प्राप्त हुए।

२६७ प्रश्न - भवनपति देव, चालीस हजार योजन नीचे हैं, तो ये चालीस हजार योजन कहाँ से व कैसे समझें ?

उत्तर - मेरु पर्वत की समभूमि से, उत्तर और दक्षिण दिश की तरफ चालीस हजार शाश्वत योजन नीचे, प्रथम नरक के तीसरे अन्तर में असुरकुमार जाति के भवनपति देव रहते हैं।

२६८ प्रश्न - ज्योतिषी के कल्पवृक्षों की प्रभा में 'मन्दलेश्या' मन्दान्त-लेश्या और शुभ-लेश्या बताई, किन्तु वृक्षों में तो अशुभ- लेश्या होती है, फिर शुभ कैसे बताई ?

उत्तर - वहाँ लेश्या का अर्थ 'प्रकाश' समझना चाहिए' वहाँ कृष्णादि-लेश्या का प्रसंग नहीं है। 'सुहलेसा' का अ सुखकारी प्रभा (प्रकाश) समझना चाहिये।

२६९ प्रश्न - कल्पवृक्ष को 'विस्रसा परिणमन' बता यह किस प्रकार है ?

उत्तर - यहाँ विस्रसा परिणमन का अर्थ - 'क्षेत्र स्वभाव से उत्पत्ति' समझना चाहिए। वे किसी देव द्वारा लगाये हुए नहीं हैं किन्तु क्षेत्र स्वभाव से स्वतः उत्पन्न हैं।

२७० प्रश्न - नरक में पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का वर्णन है, किन्तु तेजस्काय का नहीं है। यदि वनस्पति वैक्रियमय है, तो क्या तेजस्काय वैक्रिय से नहीं बन सकती ?

उत्तर - जीवाभिगम सूत्र में पृथ्वीकाय आदि पांचों काय के स्पर्श का वर्णन है, वहाँ तेजस्काय भी है।

२७१ प्रश्न - श्री 'जीवाभिगम' सूत्र में चार को पर्याप्ति और चार को अपर्याप्ति बतलाई, यह किस प्रकार है ?

उत्तर - यह विधान एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से है। जब तक वे शक्तियाँ अपूर्ण रहती हैं, तब तक उन्हें अपर्याप्ति कहते हैं और पूर्ण होने पर उन्हीं को पर्याप्ति कहते हैं। इस प्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्ति दोनों ही हैं। इस प्रकार किसी जीव में ५ पर्याप्ति हों तथा किसी मे ६ हों, तो ५ तथा ६ पर्याप्ति और ५ तथा ६ अपर्याप्ति समझनी चाहिए, क्योंकि 'जीवाभिगम' मे ५ तथा ६ पर्याप्ति वाले जीवों में भी इसी प्रकार का उल्लेख है।

२७२ प्रश्न - खेचर, गर्भ में रसवती नाड़ी द्वारा आहार किस प्रकार करते है ?

उत्तर - जो खेचर जीव, गर्भ में अण्डादि रूप में होते है, वे माता के कोठे में रोमादि द्वारा बिना नाड़ी भी आहार ग्रहण कर सकते हैं अर्थात् त्वचा से उसे आहार की प्राप्ति हो सकती है।

२७३ प्रश्न - भाषा-पद में दो बार पुद्गल ग्रहण में दिशा का उल्लेख क्यों हुआ है ?

उत्तर - जितने क्षेत्र में भाषा के ग्रहण करने योग्य पुद्गल अवस्थित हैं उतने ही क्षेत्र के ऊर्ध्व, अधो, तिर्यग् विभाग करन और नियम से छह दिशा बताई है, सो तो त्रसनाल के बाहर त्रस जीव नहीं होने से भाषा बोलना त्रसनाल में ही होता है। इसलिए उनके छहों दिशा के पुद्गल आते हैं किन्तु सिर्फ ३-४-५ दिश के ही आते हों, यह बात नहीं है।

२७४ प्रश्न - भाषा की उत्पत्ति, तीन शरीर से ही बताई, तो क्या तैजस् और कार्मण शरीर से भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती?

उत्तर - भाषा की उत्पत्ति औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर से ही होती हैं। इन्हीं की शक्ति से भापा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं और इन्हीं से भाषा बोली जाती है।

२७५ प्रश्न - प्रज्ञापना के दूसरे पद में 'जन्तर से पुरमान विस्तार' बताया है, इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - 'पुरमान विस्तार' कदाचित् विमानों के भीतर प्रासादों की पंक्तियों को वताया होगा। 'भौमो' का अर्थ करते हुए टीकाकार ने-'भौमानि नगराकाराणि विशिष्टस्थानानि' वताया है। तत्त्व केवलीगम्य हैं।

२७६ प्रश्न - देवलोक के विमान, सिंहासन आदि किस माप से समझे जावें ?

उत्तर - शाश्वत भवन, विमान, तोरणादि का माप प्रमाण-अंगुल से समझना चाहिए और वैक्रिय द्वारा बनाये हुए विमान-भवनादि की लम्बाई-चौडाई आदि एवं देहमान तथा शाश्वत प्रतिमाओं का मान उत्सेधांगुल से समझना चाहिए। संभवत

शय्या, शस्त्र आदि का नाप आत्मांगुल से है। इन तीन प्रकार के अंगुलों का खुलासा अनुयोगद्वार सूत्र में किया है। वहाँ से देख सकते हैं।

२७७ प्रश्न - पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के लिए-उपपात, समुद्घात, स्वस्थान, लोक के असंख्यात भाग तथा तेउकाय के पर्याप्त का उपपात, समुद्घात **'सव्वलोए'** कहा है, यह किस प्रकार है ?

उत्तर - बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और तेउकाय के पर्याप्त में उपपात समुद्घात और स्वस्थान लोक के असंख्यातवे भाग समझना चाहिए तथा वायुकाय के पर्याप्त मे तीनों ही बोल लोक के बहुत-से असंख्यात भागों में और बादर वनस्पति काय के पर्याप्त मे उपपात और समुद्घात, सर्वलोक तथा स्वस्थान लोक के असंख्यात भाग मे समझना चाहिए।

२७८ प्रश्न - सीता और सीतोदा नदी ५०० योजन समुद्र में गई, तो जम्बूद्वीप के चबूतरे, उनके बाहर है या भीतर ?

उत्तर - सीता और सीतोदा नदी दरवाजे के नीचे से गई है। दरवाजे नदियों के ऊपर आये है। अतएव चबूतर के लिए कोई बाधा नहीं आती है।

२७९ प्रश्न - देवलोक मे देव बत्तीसवां नाटक कौनसा करते है ?

उत्तर - अपनी इच्छानुसार किसी के भी जीवन चरित्र का नाटक करते होंगे। इसके लिए कोई खुलासा देखने में नहीं आया।

२८० प्रश्न - कहा जाता है कि - "युगलियो के मृत शरीर को भारण्ड-पक्षी ले जाता है," तो क्या भारण्ड-पक्षी इसी फिराक मे रहते हैं ?

उत्तर - आगमिक उल्लेख में 'भारण्ड'' आदि पक्षी 'समुद्र आदि' में डालते हैं-लिखा है। इसलिए 'केवल भारण्डपक्षी ही डालते हैं' - ऐसी बात नहीं है। दूसरे योग्य पक्षी भी डाल देते हैं और 'केवल समुद्र में ही डालते हैं' - ऐसा भी नहीं है, नदी आदि में भी डाल सकते हैं।

२८१ प्रश्न - शुक्ललेश्या वालों से पद्मलेश्या वाले असंख्यात गुणा अधिक हैं, तो फिर तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों को संख्यात गुणा कैसे बताये ?

उत्तर - यदि तीनों गति के जीवों का सम्मिलित रूप से विचार किया जाय, तो शुक्ल-लेश्या वालों से पद्मलेश्या वाले और पद्म-लेश्या से तेजोलेश्या वाले संख्यात गुणा ही होते हैं और केवल देवगति की ही लेश्या सम्बन्धी अल्प बहुत्व कहें, तो शुक्ललेश्या वालों से पद्मलेश्या वाले देव और पद्मलेश्या वालों से तेजोलेश्या वाले देव असंख्यात गुणा होते हैं। समुच्चय जीवों में असंख्यात गुणा नहीं हो सकते।

२८२ प्रश्न - सातवीं नरक का 'अप्रतिष्ठान' नामक नरकावास 'शूली के आकार' बताया। सो यह किस प्रकार है ?

उत्तर - शूली का आकार नहीं, किन्तु स्पर्श है। प्रज्ञापना में-'**अहे खुरप्पसंठाणसंठिया**'-लिखा है तथा जीवाभिगम में नरकावासों का स्पर्श, तलवार की धार, उस्तरे की धार, शक्ति, कुन्त, तोमर, नाराच और शूली आदि के अग्रभाग से भी अधिक तीक्ष्ण और अनिष्टकारी बतलाया है।

२८३ प्रश्न - तमस्काय में त्रसकाय उत्पन्न होती है क्या ?

उत्तर - हाँ, तमस्काय में त्रसकाय उत्पन्न होती है।

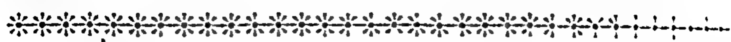
२८४ प्रश्न - श्री त्रिशलादेवी के १४ स्वप्न देखने के बाद श्री महावीर स्वामी गर्भ में ९ मास और साढ़े सात रात्रि पर्यन्त रहे- ऐसा उल्लेख है, यह किस प्रकार है ?

उत्तर - स्वप्न पाठकों ने जो नौ मास और साढ़े सात रात्रि बताई, उसका कारण यह है कि उन्हें देवानन्दाजी की कुक्षि से गर्भ-संहरण का पता नहीं था। उन्होंने उत्तम पुरुषों का पूर्ण गर्भकाल जान कर ही कहा था। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि "गर्भ मे तीर्थंकर है या चक्रवर्ती" इसी से उन्होंने कहा कि - 'या तो जिन (तीर्थंकर) होंगे या चक्रवर्ती होंगे।' जन्म-समय के उल्लेख में बताया वह भगवान् के गर्भ में रहने के पूर्णकाल की अपेक्षा से है। वे दोनो स्थान पर कुल साढ़े सात रात्रि सहित नौ माह गर्भ में रहे थे। वैसे त्रिशलादेवी के पूर्वगर्भ की अपेक्षा भी, गर्भकाल साढे सात रात्रि सहित नौ मास का होता है।

२८५ प्रश्न - संमूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति के चौदह स्थान हैं। उनमें चौदहवाँ स्थान-"समस्त अशुचि के स्थानों का है, तो क्या यह भेद पूर्व के स्थानों को संग्रह करता है या भिन्न स्थान सूचित करता है ?

उत्तर - तेरह स्थानों के अतिरिक्त और भी अशुचि स्थान-जो मनुष्यों के संसर्ग से हो, वह अंतिम भेद में गिनना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य, रोटी के टुकडे को चबा-चबा कर किसी भाजन में एकत्रित करे, तो यह भिन्न स्थान हुआ। वैसे ही तेरह स्थानों में से दो, तीन, चार बोल शामिल करने से जीवों की उत्पत्ति हो, तो वह इस अंतिम भेद में गिना जाता है।

२८६ प्रश्न - चारो गति के जीव पूर्ण पर्याप्ति से ३३६ आवलिका में पर्याप्त होता है या न्यूनाधिक ?



उत्तर - जीवों की पर्याप्ति का काल समान भी होता है अं न्यूनाधिक भी होता है। यदि सभी जीवों का काल समान ही होत तो एक मुहूर्त में भवों की संख्या कम-ज्यादा क्यों होती ? जै सूक्ष्म-निगोद के जीव एक मुहूर्त में अधिक भव करे, तो ६५५३ और असंज्ञी पंचेन्द्रिय अधिक भव करे, तो २४ ही। यदि मा जाय कि निगोद के जीवों ने वे सभी भव अपर्याप्त अवस्था किए हों, तो भी तीन पर्याप्ति पूर्ण कर चौथी पर्याप्ति अधूरी रह ही काल करते हैं और असंज्ञी मनुष्य भी चौथी पर्याप्ति अ रहते काल करता है। दोनों की पर्याप्ति लगभग समान होते हु भी एक के भव ६५५३६ और दूसरे के २४ ही। इससे सिद्ध हो है कि पर्याप्ति पूर्ण करने का काल न्यूनाधिक भी होता है।

२८७ प्रश्न - आहारक-शरीर का जो पुतला निकलता है वह कौन-से पुद्गलों का पुरिणाम है ?

उत्तर - आहारक-शरीर का जो पुतला बनता है, उस जीव के प्रदेश भी रहते हैं, अतः उसे 'प्रयोगसा' पुद्गल क चाहिए।

२८८ प्रश्न - अनुत्तर-विमान की ऊँचाई ११०० योजन है और देवों की अवगाहना एक हाथ की है तथा पंचेन्द्रिय के श्रो इन्द्रिय का विषय १२ योजन है, तब देवता ११०० योजन दू हुए मोतियों के शब्द कैसे सुन सकते हैं ?

उत्तर - तीर्थकरों के जन्म-महोत्सव आदि के लिए इन्द्र तिर्च्छालोक मे आना चाहते हैं, तब अनीकाधिपति घंटानाद से खबर पहुँचाई जाती है और वह आवाज सम्पूर्ण वि में फैल जाती है, तब सर्वार्थसिद्ध विमान में मोतियों की

ों तक पहुँच जाय, इसमें बाधा ही क्या है ? श्रोत्रेन्द्रिय का १२
जन का विषय तो बिना किसी अन्य साधन के समझना चाहिए।
न्य साधन के द्वारा तो बहुत दूर तक आवाज चली जाती है। यह
भी तो प्रत्यक्ष हो ही रही है, फिर देवों की बात ही क्या है ?

२८९ प्रश्न - 'देवदाणवगंधव्वा, जक्ख-रक्खस्स-
ण्णरा, बंभयारिं नमंसंति' गाथा में वाणव्यन्तर जाति के देवों
। ही बताने वाले चार शब्द क्यों लिये ?

उत्तर - वैसे तो उपलक्षण से भूत-पिशाच आदि भी चार
मों में ग्रहण हो सकते हैं। वाणव्यन्तरों के विशेष नाम बताने का
रण यह भी हो सकता है कि वाणव्यन्तर देव, अन्य देवों की
पेक्षा मनुष्य के विशेष निकट हैं। मनुष्यों को त्रास देने में या
ख के निमित्त बनने में वाणव्यन्तर देवों का विशेष योग रहता है।
णव्यन्तर कुतूहली भी बहुत होते हैं। ब्रह्मचारी मनुष्य को
दनादि करने में इन देवों की अनुकूलता भी विशेष है। इसलिए
का उल्लेख विशेष नामों से हुआ होगा या फिर गाथा की पूर्ति
अन्य किसी अपेक्षा से ऐसा हुआ हो। निश्चित बात ज्ञानी-गम्य

२९० प्रश्न - प्रथम देवलोक, घनोदधि के आधार पर बताया,
घनोदधि का पिण्ड कितना हैं ?

उत्तर - घनोदधि के पिण्ड का परिमाण देखने या सुनने मे
ी आया। 'हीरप्रश्न' में भी अनभिज्ञता ही बताई है।

२९१ प्रश्न - प्रथम स्वर्ग में देवियों की परिषद् बताई गई,
वह परिगृहीता देवियों की परिषद् है, या अपरिगृहीता देवियों
?

उत्तर - संभव है अपरिगृहीता देवियों की हो, किन्
बात का आधार कहीं देखने या सुनने में नहीं आया।

२९२ प्रश्न - तीर्थकर, गणधर और साधु का निर्वाण पर उस कार्य में मनुष्य भी शामिल होवें तो इसमें किसी प्रका बाधा नहीं हैं।

२९३ प्रश्न - वेदक-सम्यक्त्व की स्थिति एक समय किस प्रकार समझें ?

उत्तर - वेदक (क्षायिक-वेदक) सम्यक्त्व की ि एक समय की है। एक समय के बाद ही क्षायिक-सम्यक्त जाती है।

२९४ प्रश्न - सिद्धांत है कि चौबीस दंडक में एक- जीव ने एक-एक पुद्गल परावर्तन अनन्तानन्त किये, किन् अव्यवहार-राशि में से निकल कर व्यवहार में आया, उसने पुद्गल-परावर्तन, वचन पुद्गल-परावर्तन, वैक्रिय पुद्गलपरा अनन्तानन्त कैसे किये ?

उत्तर - टीकाकार कहते हैं कि यह सिद्धान्त बहुत की अपेक्षा से है तथा कोई यों भी कहते हैं कि अव्यवहार रा निकल कर जो जीव अनन्त पुद्गल परावर्तन कर लेता है, जीव पृच्छा में गिना जाता है-अन्य नहीं।

२९५ प्रश्न - प्राणातिपात किस कर्म से होता है ?

उत्तर - प्राणातिपात मुख्यतः मोहनीय-कर्म से संबंधित इससे नूतन कर्म-बंध होते हैं, जिनमें मुख्यता असातावेदनीय की होती है।

२९६ प्रश्न - भरत चक्रवर्ती ने विद्याधर को साधने

ःगए तेला किया, तो दक्षिण की तरफ के राजा को साधते हुए त्तर दिशा का राजा किस प्रकार प्रेरित हुआ ?

उत्तर - भरतेश्वर ने विद्याधर राजा को साधते समय दक्षिण नमि राजा और उत्तर के विनमि-इन दोनों का ध्यान किया। ोनों राजाओं ने दिव्य-मति से प्रेरित होकर चक्रवर्ती के उत्पन्न ोने की बात जानी। उनके पास जानने के अन्य साधन होते हुए ी उन्होंने भरतेश्वर की मनोकामना दिव्यमति से जानी। जिस कार सौधर्म और ईशान देवलोक की देवियाँ, ऊपर के स्वर्गों में ने वाले देवों के मनोगत परिचारणा के भाव अपनी दिव्यमति से ान लेती हैं, उसी प्रकार यह भी समझना चाहिए।

२९७ प्रश्न - वैक्रिय शरीर वाला अनेक रूप बनावे, तो न सभी शरीरों का रूप एक समान और कार्य एक ही प्रकार का ोता है या भिन्न-भिन्न ?

उत्तर - एक प्रकार का भी हो सकता है और भिन्न प्रकार ा भी। जैसे शक्रेन्द्र ने अपने पांच रूप बना कर एक रूप से ीर्थकर को हाथ में लिया, दूसरे रूप से चामर ढुलाये जाते रहे, क छत्र धारण करता रहा और एक वज्र लेकर आगे चलता रहा ौर स्नान कराते समय चार रूप वृषभ के बनाकर एक ही प्रकार ा काम किया।

२९८ प्रश्न - अजीवकाय संस्थान कैसे समझा जाय ?

उत्तर - आकार विशेष को संस्थान कहते हैं। अजीव के रिमण्डलादि ५ संस्थान और छठा अनित्थंस्थ संस्थान होता है।

२९९ प्रश्न - कषाय-समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर - कषाय-चारित्रमोहनीय कर्म के उदय के

कषायसमुद्घात होती है। कषाय के उदय से संयुक्त (व्याकु
जीव अपने आत्म-प्रदेशों को बाहर निकालता है। कषाय
मोहनीयकर्म के प्रदेश जो आत्मा के साथ लगे हुए है
कालान्तर में अनुभव में जाने योग्य हैं, उनको एकाग्रता
प्रबलतापूर्वक, उदीरणाकरण से खींच करके, उदयावलिक
प्रक्षिप्त करता है और अनुभव करके उनकी निर्जरा करता है,
'कषाय-समुद्घात' कहते हैं।

३०० प्रश्न - मारणान्तिक-समुद्घात और समोहयामरण
क्या अन्तर है ?

उत्तर - मारणान्तिक समुद्घात अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु
रहने पर होती है। यह समुद्घात एक जीव एक अथवा दो वार
कर सकता है। जो दो बार समुद्घात करता है, उसकी पहली
की समुद्घात ही मारणांतिक-समुद्घात कही जाती है और दू
बार की समुद्घात करके मृत्यु को प्राप्त होता है, वह 'समोहयाम
(समवहत मरण) भी कहा जाता है। एक बार मारणान्तिक समुद
कर के मृत्यु को प्राप्त होने वाले जीव का भी 'समोहयाम
कहा जाता है। 'मरणसमुद्घात' आयुकर्म को एकाग्रता पू
उदीरणायुक्त वेद कर निर्जरा करने की दशा को कहते हैं
'समोहयामरण' आयुकर्म के क्षय को कहते हैं। दोनों में
अन्तर है।

३०१ प्रश्न - इन्द्रिय-संवर और इन्द्रिय-प्रतिसंलीनत
क्या अन्तर है ?

उत्तर - धर्म और धर्मी, यही अन्तर है, ऐसा स्थानांग टी
में उल्लेख है। इन्द्रिय-संवर धर्म है और इन्द्रिय-प्रतिसंली
संवरवान् धर्मात्मा है।

३०२ प्रश्न - सम्वत्सरी के दिन को इतना महत्त्व क्यों
-या गया है ?

उत्तर - विशेष रूप से आत्म-शुद्धि करने के लिए सम्वत्सरी
-। महत्त्व है। आवश्यक सूत्र की टीका में बताया है कि अन्य
नों की अपेक्षा उस दिन (भाद्रपद-शुक्ला ५ को) बहुत से संज्ञी
चेन्द्रिय जीवो के परभव के आयुष्य का बन्ध होता है। इसलिए
-स दिन धर्मध्यान क्षमापनादि विशेष रूप से करना चाहिए।

३०३ प्रश्न - अलोक का द्रव्य, गुण और पर्याय क्या है ?

उत्तर - अलोक, अजीव-द्रव्य देशरूप है। यह अनन्त
गुरुलघु गुण संयुक्त तथा सर्व आकाश के अनन्तवे भाग न्यून
कम) है। उसमें अवगाहना गुण तो विद्यमान है। किन्तु उसमे
वगाहन करने वाले पुद्गल और जीव वहाँ नही है। गुण (अगुरु
घु) की हानि-वृद्धि को पर्याय कहते हैं, इत्यादि।

३०४ प्रश्न - भरत ऐरवत क्षेत्र को तो भिन्न-भिन्न कहा,
न्तु महाविदेह को एक ही रूप में कहा, इसका क्या कारण ?

उत्तर - भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र तो सर्वथा भिन्न-भिन्न
ही है। महाविदेह को यथा-प्रसंग समुच्चय भी कहा है और पूर्व-
महाविदेह और पश्चिम महाविदेह ऐसे दो भेद भी कहे हैं।

३०५ प्रश्न - काल का स्वभाव तो बरतने का है। यह
लोक के समस्त जीव और अजीव द्रव्यों पर बरतता है, तब
की सीमा ढ़ाई द्वीप प्रमाण ही क्यों बताई गई ?

उत्तर - काल के कई भेद किये गये हैं। उनमे से अद्धाकाल,
(गतिशील-चलने वाले) चन्द्रमा और सूर्यो की गति पर
धारित है। इसका क्षेत्र ढाई द्वीप और दो समुद्र तक ही है।

क्योंकि ढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में १३२ चन्द्रमा और १३२
हैं। ये चर हैं। अढ़ाई द्वीप के बाहर असंख्यात चन्द्र और सूर्य
वे सब अचर (स्थिर) हैं। जो द्रव्य काल है वह समस्त ज
और अजीवों पर बरतता है। वह सादि, अनादि, सपर्यव
अपर्यवसित स्थितिरूप है। इसके सिवाय 'यथा-आयुष्यक
आदि भेद भी हैं।

३०६ प्रश्न - वायुकाय का हरा वर्ण किस प्रकार समझे

उत्तर - वनस्पति का अंकुर भूमि में से निकलता है तब
पीला होता है, किन्तु बाद में हवा लगने पर हरा हो जाता है।
न्याय से वायुकाय का वर्ण हरा कहा गया है।

३०७ प्रश्न - पांचों स्थावरकाय का संस्थान "हुंडक
लिया है, किन्तु 'वटवृक्ष' को 'न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान'
कहा है, तो इसका क्या कारण है ?

उत्तर - वटवृक्ष, स्वतः न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान वाला
है, यह तो केवल उपमा है। जिस प्रकार वटवृक्ष का नीचे का
पतला-संकुचित और ऊपर का विस्तृत होता है, उसी प्र
जिसका नाभि से नीचे का भाग सुन्दर नही हो, हीन
अशोभनीय हो और नाभि से ऊपर का हिस्सा प्रमाण युक्त
अशोभनीय हो, वह 'न्यग्रोध-परिमण्डल' संस्थान है। इ
शोभनीय-अशोभनीय एवं अच्छे-बुरे विभाग के लिए वटवृक्ष
उपमा मात्र है। उसका संस्थान तो 'हुंडक' ही है।

वटवृक्ष में एक नहीं, अनेक जीव हैं। पत्ते आदि के अ
जीवों के मेल से वृक्ष का आकार बना। वह एक जीव का संस्
नहीं। किन्तु पंचेन्द्रिय जीवों में तो वैसा आकार एक जीव का

। इसलिए वटवृक्ष तथा अन्य स्थावरकाय में एक हुण्डक संस्थान होता है।

३०८ प्रश्न - क्या लवण-समुद्र में छहों आरों का वर्तना ल होता है ?

उत्तर - हाँ, लवण समुद्र में छहों आरों का वर्तना काल ता है।

३०९ प्रश्न - चारों दिशाओं में से शुभ पुद्गल कौनसी शा में अधिक उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थान में पूर्व दिशा और उत्तर शा को शुभ कहा है। इससे समझा जाता है कि इन दो दिशाओं शुभ पुद्गलों की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होती है। टीकाकार हते है कि - 'इन दिशाओं में जिनादि होने के कारण' तथा यह माना है कि - मेरु पर्वत सभी क्षेत्रों से उत्तर में ही रहता है ार मेरु पर्वत की ओर जिनादि अवश्य मिलते है तथा पूर्व दिशा सूर्योदय होता है, यह भी शुभ पुद्गलों का उपचय करने वाला - **"सुभे सूरिये सुभे सूरियस्स अट्ठे"** ऐसा बतलाया है तथा न दोनों दिशाओं के मध्य में होने से ईशानकोण को भी शुभ ाना है।

३१० प्रश्न - समुद्र एक हजार योजन ऊँडा होता है और थ्वीपिण्ड भी एक हजार योजन का है फिर पानी किस पर ठहरा आ है ?

उत्तर - समुद्रों के नीचे 'रत्न प्रभा' का पहला पाथड़ा आया , उसका ऊपरी भाग एक हजार योजन जाडा है, उसी पर पानी हरा हुआ है।

३११ प्रश्न - उत्तम पुरुषों का आयुष्य निरुपक्रमी होता है किंतु वासुदेवों को उपक्रम लगा है, तो उनके आयुष्य को सोपक्र कहना या निरुपक्रम ?

उत्तर - वासुदेवों को उपक्रम लगा, वह ऊपरी निमित्त मा है, उनका आयुष्य तो उतना ही था। यदि बाण नही लगता, तो भी वे उसी समय मरते। अतएव निरुपक्रम आयु वाले को उपक्रम लग भी जाय, तो वह बाह्य कारण मात्र समझना चाहिए।

जिस प्रकार चरम-शरीरी जीव निरुपक्रम आयुष्य वाले होते हुए भी श्री गजसुकुमाल मुनि, श्रीखन्दक मुनि तथा श्री खन्दकजी के ४९९ शिष्यों को उपक्रम का निमित्त मिला। वास्तव में यह उपक्रम दिखावे मात्र का है।

३१२ प्रश्न - अनुत्तर-विमान से च्यव कर आये हुए जीव सेनापति, गाथापति और पुरोहित रत्न होते हैं या नहीं ?

उत्तर - अनुत्तर विमानों से चव कर आये हुए जीव सेनापति रत्न आदि नहीं होते हैं।

३१३ प्रश्न - मेघ (पानी) का जमाव ऊँचा होता है, तो फिर ज्योतिषियों के लिए प्रतिघात रूप होता है या नहीं ?

उत्तर - ज्योतिषियो के यहाँ मेघ का जमाव नहीं होता है केवल लवण-समुद्र के ज्योतिषियो के विमान ही 'दगस्फटिक' के बतलाये हैं। इसलिए पानी का जमाव प्रतिघात रूप नहीं होता है।

३१४ प्रश्न - धर्माचार्य की वन्दना में 'धन्य हो वह ग्राम नगर' कहते हैं, सो ग्रामादि को धन्यवाद क्यों दिया जाता है ?

उत्तर - जिन ग्राम नगर आदि में महापुरुषों का पदार्पण होता है, वहाँ के निवासियों को मुक्ति-मार्ग की प्राप्ति, धर्मवृद्धि

आदि का शुभ संयोग प्राप्त होता है, जो महान् अभ्युदय का कारण है तथा नैगम नय आदि की अपेक्षा से मनुष्यों को भी ग्राम नगर आदि कह सकते हैं। अतएव यह धन्यवाद उचित ही है।

३१५ प्रश्न - ढ़ाई द्वीप के बाहर पृथ्वी का स्वाद कैसा है और वहाॅ किस आरे के भाव बरतते हैं ?

उत्तर - भोगभूमि की पृथ्वी के सामन विशिष्ट रस, ढ़ाई द्वीप के बाहर की पृथ्वी का नहीं है-ऐसा 'सेनप्रश्न' में उल्लेख है। दुषम और सुषम आरे के समान वहाँ भी अन्तर्मुहूर्त्त से करोड़ पूर्व तक का नाना प्रकार का आयुष्य, नाना प्रकार की अवगाहना, विविध संहनन एवं अनेक प्रकार के संस्थान हैं। नरकादि चतुर्गति में गमनादि वहाँ से भी होता है, किन्तु आरे की सदृशता वहाँ नही बताई जा सकती हैं।

३१६ प्रश्न - असंज्ञी तिर्यच की स्थिति ८४००० वर्ष की बताई, वह कर्मभूमि की अपेक्षा से है, या ढ़ाइ द्वीप के बाहर की है ?

उत्तर - ढाई द्वीप के बाहर और भीतर असंज्ञी तिर्यच की ८४००० वर्ष की स्थिति हो सकती है।

३१७ प्रश्न - सातवें गुणस्थान वाले जीव प्रमाद-रहित होते है, किन्तु 'कषाय प्रमाद' से वे किस प्रकार रहित हो सकते है ?

उत्तर - प्रतिसंलीनता के द्वारा उदय-निरोध एवं विफलीकरण करने से वे कषाय को सफल नही होने देते और निरन्तर आत्मचिन्तन आदि शुद्ध विचारों से उदय में आये हुए कषाय को निष्फल करते रहते है। इसलिए उन्हें अप्रमत्त कहना सर्वथा उचित है।

३१८ प्रश्न - बिना पौषध किये हुए श्रावक, नित्य प्रतिक्रमण में पौषध के अतिचार क्यो कहते है ?

उत्तर - जिस प्रकार बिना संलेखना किये ही संलेखना के अतिचार कहते हैं, उसी प्रकार पौषध के भी कहते है। श्रद्धा प्ररूपणा तो है ही, श्रावक कहते भी हैं कि "इस व्रत की श्रद्धा प्ररूपणा रूप तो है, परन्तु स्पर्शना करूँ तब शुद्ध होऊँ।" इन अतिचारों का चिन्तन स्वाध्याय रूप भी है। परिचित रहने से यथावसर शीघ्र ध्यान में आ सकते हैं। स्वप्न में पौषध किया हुआ अपने को माने और उसमें दूषण लगे, तो भी अतिचार द्वारा आलोचना हो जाती है।

३१९ प्रश्न - सम्यग्दृष्टि जीव को एक भव आश्रित मिथ्यात्व आता है ?

उत्तर - एक-जीव को एक भव या अनेक भव आश्रित मिथ्यात्व आ सकता है।

३२० प्रश्न - चार प्रकार की नीति कौनसी है ?

उत्तर - १. कुलनीति (कुल मर्यादा) २. लोकनीति (संसार की मर्यादा) ३. राजनीति (राज्य सम्बन्धी नियम तथा साम दण्डादि मर्यादा) ४. धर्मनीति (जिनेश्वर कथित अगार व अनगार धर्म प्रवृत्ति की मर्यादा)।

३२१ प्रश्न - लोकोत्तर (धर्म) नीति का विशेष स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सम, संवेग, निर्वेदादि और विरति, अपराधी पर भी क्षमा, निर्लोभतादि तथा तत्त्व-चिन्तन, स्वरूपरमणता आदि लोकोत्तर धर्म-नीति है।

३२२ प्रश्न - क्या नैरयिक के रोमराजि होती है ?

उत्तर - नारकों के स्वाभाविक रोमराजि नहीं होती है।

३२३ प्रश्न - अयोध्या नगरी का नाप, शाश्वत योजन से है या अशाश्वत से ?

उत्तर - जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में अयोध्या नगरी का नाप शाश्वत योजन से दिया गया है। भरत महाराज का जो आत्मांगुल है, वही प्रमाणांगुल है। उनके अंगुल के नाप से ही नगरी का प्रमाण-शाश्वत योजन समझना चाहिए।

३२४ प्रश्न - पानी के जमाव के क्या कारण हैं, वह बादलों में कहां से आता है ?

उत्तर - हेम अभसंथड, शीत, उष्ण, धूंअर, हवा और बिजली आदि पानी के जमाव के कई कारण हैं। जो पुद्‌गल दूसरे रूप में होते हैं, वे ही पुद्‌गल परिणामान्तर होकर पानी रूप हो जाते हैं। इसके सिवाय त्रस तथा स्थावर के शरीर में भी अपूकाय उत्पन्न होती है, तो फिर बादलों के लिए तो कहना ही क्या ?

३२५ प्रश्न - क्या अभव्य जीव, धर्म-नीति की आराधना कर सकता है ?

उत्तर - निश्चय को छोड़ कर शेष धर्मनीति की आराधना अभव्य भी कर सकता है। वह भी चारित्र-क्रिया का आराधक होकर नव-ग्रैवेयक तक जा सकता है। जो क्रिया का विराधक होता है, वह इतना ऊँचा नहीं जा सकता।

३२६ प्रश्न - राशि-भव्य को छोड़ कर शेष भव्य जीवों के भी मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट बन्ध हो सकता है क्या ?

उत्तर - भव्य जीवों के भी मोहनीय-कर्म का उत्कृष्ट बन्ध हो सकता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि होने पर नहीं होता। संसारी जीवों के दो भेद होते हैं - भव्य (भवी) और अभव्य (अभवी)। ऐसा

भगवती सूत्र में बतलाया गया है। राशि भव्य, जाति भव्य, दूरभव्य (दुर्भव्य) निकट भव्य, ऐसे भेद नहीं होते हैं। ये भेद आगम सम्मत नहीं हैं।

३२७ प्रश्न - सम्यग्दृष्टि जीव, उसी भव में मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है क्या ?

उत्तर - हाँ, सम्यग्दृष्टि जीव उसी भव में मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है। क्योंकि जीव को एक भव में सम्यक्त्व की प्राप्ति, जघन्य एक बार उत्कृष्ट प्रत्येक हजार (नौ हजार) बार हो सकती है। एकान्त सम्यग्दृष्टि को उसी भव में मिथ्यात्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे कि अनुत्तर विमानवासी देवों को उस भव मे मिथ्यात्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

३२८ प्रश्न - लोक में जितने पुद्गल हैं, उनको जीव ने आहार रूप में ग्रहण करके छोड़े या नहीं ?

उत्तर - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, श्वासोश्वास, भाषा, मन और अग्राह्यादि सभी वर्गणाओं के पुद्गलों [illegible] शनैः-शनैः कालक्रम से वर्गणान्तर होने का स्वभाव है। [illegible], प्रतर, विमान, मेरु आदि पहाड़ और सिद्धशिला के परमाणु भी सदा उसी रूप में नहीं रहते हैं, धीरे-धीरे उनमें से भी पुद्गलों का गमनागमन स्वरूप (वर्गणान्तर स्वरूप) होना चालू रहता है। जब सभी पुद्गल प्रत्येक वर्गणा रूप हो जाते है, तब जीव सभी पुद्गलों को आहार के रूप में लेकर छोड़ सकता है, इसमें कोई बाधा नहीं आती है।

३२९ प्रश्न - आहार, पुरुष के लिए ३२ कवल प्रमाण, स्त्री के २८ और नपुंसक के २४ कवल प्रमाण माना है, तो क्या सभी के लिए इसी प्रकार समझना ?

उत्तर - इसका खुलासा तो टीका में बहुत दिया है, परन्तु संक्षेप में यह कि जितने आहार में साधारण तृप्ति हो जाय, बुद्धि की स्फूरणा चालू रहे, इस प्रकार की परिमित खुराक के ३२ वें हिस्से को उसके लिए एक कवल प्रमाण समझना चाहिए। ३२ कवल प्रमाण आहार को पूर्ण आहार (परिमित आहार) समझना चाहिए, इसी प्रकार स्त्री के २८ और नपुंसक के २४ कवल परिमाण आहार को परिमित आहार समझना चाहिए।

३३० प्रश्न - जब जीव के शुक्ल-लेश्या के परिणाम वर्त्तते हों, तब उसके कितने कर्म का बन्ध होता है ?

उत्तर - शुक्ललेशी जीव के ७, ८, ६ तथा एक कर्म का भी बन्ध हो सकता है।

३३१ प्रश्न - भरत महाराज अपनी बहिन ब्राह्मी और सुन्दरी पर मुग्ध हो गये और शादी की इच्छा की। यह बात शास्त्रोक्त है क्या ?

उत्तर - सुन्दरी भरत महाराज की तथा ब्राह्मी बाहुबलीजी की भार्या है, ऐसा टीकाकार कहते हैं तथा कथाओं में भी उल्लेख है, किन्तु यह अनुचित है और शास्त्रों में कहीं देखने मे नहीं आया।

३३२ प्रश्न - जीव के एक आत्म-प्रदेश पर आठों कर्मो की आवेड़ी पवेड़ी (पटल) अनन्ती अनन्ती है, तो क्या आत्म-प्रदेश अलग-अलग हैं ?

उत्तर - जीव के आत्म-प्रदेश अलग-अलग गणनारूप हैं, तभी तो एक जीव के प्रदेश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं तथा प्रत्येक जीव के प्रदेश

कृतयुग्म बतायें हैं और मारणान्तिक-समुद्घात में भी प्रदेश गमनागमन करते हैं। वैक्रिय रूपों में भी अनेक प्रदेश मिलाये जाते हैं तथा आहारक आदि समुद्घातों में प्रदेश भिन्न-भिन्न होने से ही बाहर निकाले जाते हैं और केवली-समुद्घात में तो लोक के समस्त प्रदेशों पर केवली अपना एक-एक प्रदेश रख कर चौथे समय में सम्पूर्ण लोक को भर देते हैं। अतः अपेक्षाकृत भेदार्थ विवक्षा से आत्म-प्रदेश अलग-अलग हैं, किन्तु परमाणु की तरह अत्यन्त-सर्वथा भिन्न-भिन्न नहीं है।

३३३ प्रश्न - अवधिदर्शन की स्थिति दो ६६ सागरोपम जाजेरी कैसे समझी जाय ?

उत्तर - बारहवें देवलोक में तथा ग्रैवेयक में जो मनुष्य विभंगज्ञान लेकर जावे वहाँ से अवधिज्ञान लेकर वापिस मनुष्य में आवे, ऐसे तीन भव बारहवें स्वर्ग के अथवा प्रथम ग्रैवेयक के करने से ६६ सागरोपम जाजेरे विभंग के साथ अवधि दर्शन के हुए। फिर अनुत्तर विमान के ३३ सागरोपम के दो भव करे या ग्रैवेयकादि के तीन भव करने से अवधिज्ञान के साथ ६६ सागरोपम जाजेरे हुए। इस प्रकार दो ६६ सागरोपम तथा मनुष्यभव की स्थिति गिनने से जाजेरे हो जाते हैं। इस प्रकार संगति बैठती है किन्तु टीकाकार कुछ और रूप में अर्थ करते हैं।

३३४ प्रश्न - प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, ये भिन्न-भिन्न संज्ञा क्यों दी गई ?

उत्तर - सामान्यतया प्रत्येक संसारी जीव को ये चारों विशेषण लग सकते हैं (भगवती सूत्र श. २ उ. १) तथा आचारांग के

टीका में भिन्न-भिन्न शब्दों की व्युत्पत्ति, समभिरूढ़-नय से की हैं और विशेष प्रकार से उनकी पृथक्-पृथक् संज्ञा भी कायम की है।

३३५ प्रश्न - वर्तमान शक्रेन्द्र को पूर्व-भव के कार्तिक सेठ के उदाहरण से सहस्राक्ष (हजार आँख वाला) कहा, तो क्या सभी शक्रेन्द्र ऐसे ही होते हैं ?

उत्तर - कार्तिक सेठ का उदाहरण सहस्राक्ष (हजार आँखें वाला) के विषय में नहीं है, क्योंकि कार्तिक सेठ के तो १००८ व्यापारी मित्र थे जिनकी २०१६ आँखें थी। वह उन सब मे मुखिया था। जिनकी १००० आँखें शक्रेन्द्र के प्रयोजन में लगी रहती है, इसलिए उसे 'सहस्राक्ष' कहा जाता है और यह विशेषण सभी शक्रेन्द्रों के लिए लागू होता है।

३३६ प्रश्न - अनन्तानुबन्धी कषाय का क्षय हो जाने के बाद भी उदय होता है क्या ?

उत्तर - अनंतानुबंधी कषाय का क्षय हो जाने के बाद तो उदय नहीं होता है, किन्तु विसंयोजना होने पर वापिस उदय हो सकता है।

३३७ प्रश्न - पाँचवें गुणस्थान वाला श्रावक जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट १५ भव में मोक्ष जाता है, तो क्या बीच में कभी मिथ्यात्व में चला जाय तो भी ऐसा ही मानना चाहिए ?

उत्तर - यह नियम मिथ्यात्व में जाने वालों के लिए नहीं। अनाराधक के लिए भवों की नियमितता नहीं है। वह अधिक से अधिक, कुछ कम अर्ध पुद्गल-परावर्त्तन (अनन्त भव) भी कर सकता है और वापिस मिथ्यात्व छूट कर सम्यक्त्व प्राप्त करले, तो आराधक हो कर शीघ्र मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है।

३३८ प्रश्न - आठवें, नववें और दसवें गुणस्थान के विषय में कहा है कि - 'नवकारसी यावत् वरसी-तप को भला सधे और शक्ति प्रमाणे करे' तो प्रश्न है कि इन गुणस्थानों की स्थिति तो थोड़ी है, फिर तप कैसे करे ?

उत्तर - जिसके नवकारसी से लगा कर वर्षी-तप मे से कोई तप चालू हो, उस तप के चलते वह जीव, श्रेणी चढ़ते हुए ८ वें, ९ वें और १० वें गुणस्थान में चला जावें, तब उसके वही तप गिना जाता है- भले ही स्थिति कम हो। जैसे किसी ने मासखमण किया हो, परन्तु वह मुहूर्त्त बाद या प्रहर अथवा एक-दो दिन के बाद काल कर जाय, तो भी भाव की अपेक्षा उसके मासिक तप होना माना जाता है। इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।

३३९ प्रश्न - मिथ्यादृष्टि की आगत (आगति) ३६६ की है या ३७१ की है ?

उत्तर - ३७१ की हो सकती है। इसमें पाँच भेद अनुत्तर-विमान के भी लिए गए हैं। यद्यपि अनुत्तर-विमान मे कोई भी देव मिथ्यादृष्टि नहीं होता, तथापि वहाँ से च्यव कर मनुष्य होने के बाद उसमें से कोई कुछ समय के लिए मिथ्यात्व में चला जाय, तो यह असंभव नहीं है क्योंकि क्षयोपशम समकित वाले जीव के मिथ्यात्व आ जाना संभव है और यह आगम-सम्मत भी है।

३४० प्रश्न - आभिनिवेशिक-मिथ्यात्व का स्वरूप क्या ?

उत्तर - अतत्त्व आग्रह। यथार्थ जानते हुए भी कदाग्रह वश पकड़े हुए असत् आग्रह को नहीं छोड़ना और सत्य का स्वीकार नहीं करना आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहलाता है।

३४१ प्रश्न - रसनेन्द्रिय का विषय किस प्रकार समझना चाहिये ?

उत्तर - जैसे हुक्के की नली बहुत लम्बी होती है, किन्तु नमें से होकर भी तमाखू आदि का रस आ सकता है। इस प्रकार नेन्द्रिय का विषय समझना चाहिए।

३४२ प्रश्न - नरक भूमि और देवभूमि के वर्ण-गन्धादि ाँ के किस आरे के वर्ण-गन्धादि के समान समझना चाहिए ?

उत्तर - नरकभूमि और देवभूमि के वर्ण आदि का यहाँ के र्ग आदि से मेल नहीं मिलता, क्योंकि नरकभूमि के वर्ण आदि यहाँ के दुषमा-दुषम आरे से भी अधिक अनिष्ट और देवभूमि वर्ण आदि सुषमा-सुषम से भी अधिक उत्तम है। अतः यहाँ भूमि से मिलान नहीं किया जा सकता है।

३४३ प्रश्न - द्रव्य की अनुकूलता नहीं होने पर भी भाव सकता है या नहीं ?

उत्तर - द्रव्य की अनुकूलता न होने पर भी भाव हो सकता ।

३४४ प्रश्न- आठवें और नौवें गुणस्थान में अन्तर क्या है?

उत्तर - बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता की प्रकृतियों का न्तर है तथा आठवें गुणस्थान में एक समय में जाने वाले अनेक वों के अध्यवसायों में निवृत्ति (भिन्नता-असमानता) रहती है, न्तु नौवें गुणस्थान में एक समय में जाने वाले जीवों के ध्यवसायों में अनिवृत्ति (समानता) रहती है। इत्यादि अन्तर नों गुणस्थानों में है।

३४५ प्रश्न - यथाख्यात-चारित्र और असंयम, एक स्थान कहाँ मिलते हैं ?

उत्तर - कार्मण योग में और श्रोत्रेन्द्रिय के अलद्धिया मे

तथा इसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय और रसनेन्द्रिय अलब्धिया में यथाख्यात चारित्र और असंयम एक स्थान पर जा सकता है।

३४६ प्रश्न - अट्ठावीस प्रकार की लब्धियों में से अ को कितनी लब्धियाँ प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर - शास्त्रों में अनेक लब्धियों के नाम आये हैं, उन सबके नाम एक ही जगह नहीं आये हैं। प्रवचनसारोद्धार २७० में गाथा १४९२ से १५०८ तक २८ लब्धियों के नाम और विशेष विवेचन पाया जाता है। उन अट्ठावीस लब्धियों के इस प्रकार हैं - १. आमर्शौषधि लब्धि २. विप्रुडौषधि ३. खेलौ ४. जल्लौषधि ५. सर्वौषधि ६. संभिन्नश्रोत लब्धि ७. अवधि ८. ऋजुमति लब्धि ९. विपुल मति लब्धि १०. चारण ल ११. आशीविष लब्धि १२. केवली लब्धि १३. गणधर लब्धि पूर्वधर लब्धि १५. अरिहंत (तीर्थकर) लब्धि १६ चक्रवर्ती ल १७ बलदेव लब्धि १८ वासुदेव लब्धि १९. क्षीरमधुसर्पि लब्धि २० कोष्ठक बुद्धि लब्धि २१. पदानुसारी लब्धि २२ बीज लब्धि २३ तेजो लेश्या लब्धि २४ आहारक लब्धि २५. शीत लब्धि २६ वैकुर्विक देह लब्धि २७ अक्षीणमहानसी लब्धि पुलाक लब्धि। उपरोक्त अट्ठावीस लब्धियों में से भव्य पुरु अट्ठाईस ही लब्धियाँ पाई जाती है। भव्य स्त्रियों में निम्न लब्धियों के सिवाय शेष लब्धियाँ पाई जाती है - १. अ (तीर्थकर) लब्धि २. चक्रवर्ती लब्धि ३. वासुदेव लब्धि ४. ब लब्धि ५. सम्भिन्नश्रोत लब्धि ६ चारण लब्धि ७. पूर्वधर ल ८. गणधर लब्धि ९. पुलाक लब्धि १०. आहारक लब्धि।

उपरोक्त दस और केवली लब्धि, ऋजुमति लब्धि तथा पुलमति लब्धि, ये तेरह लब्धियाँ अभव्य पुरुषों में नहीं होती उक्त तेरह और मधुक्षीरसर्पिराश्रव लब्धि ये चौदह लब्धियाँ भव्य स्त्रियों में नहीं पाई जाती है। अर्थात् अभव्य पुरुषों में पर बताई गई तेरह लब्धियों को छोड़कर शेष पन्द्रह लब्धियाँ र अभव्य स्त्रियों में उपरोक्त चौदह लब्धियों को छोड़कर की चौदह लब्धियाँ पाई जा सकती है।

३४७ प्रश्न - भगवान् ने मेरु पर्वत को अंगूठे से हिलाया, ह बात किस सूत्र में है ?

उत्तर - मूलसूत्र में तो देखने में नहीं आई, पर ग्रन्थों में है। र्थकर भगवान् अनन्त बलवान् होते हैं। जब एक देव भी सारी थ्वी को हिला सकता है अर्थात् भूमिकम्प कर सकता है तो र्थकर भगवान् के बल का तो कहना ही क्या ?

३४८ प्रश्न - 'उपशम-सम्यक्त्व' और 'उपशम' में क्या न्तर है ?

उत्तर - उपशम समकित, उपशम क्रोध, उपशम मान आदि पशम के अनेक भेद हैं। उपशम का अर्थ है - उदय मे आई हुई कृति को दबा देना। उपशम में विपाकोदय और प्रदेशोदय दोनो क दिये जाते हैं।

३४९ प्रश्न - कर्म के विपाक का उपशम कैसे होता हैं ? दि उदय मे आने जैसे का उपशम होता है, तो प्रदेशोदय का पशम कैसे होता है ?

उत्तर - जिस प्रकृति का प्रदेश उदय मे है, उनको तो क्षय कर देते हैं और उदय की संतति को तोड़ देते हैं तथा जो सत्ता मे

होती है, उसका उपशम कर देते हैं - अन्तर्मुहूर्त तक उ
आने के अयोग्य कर देते हैं। अतः उपशंम में, उपशम हो
कारण अन्तर्मुहूर्त्त तक तो प्रदेश उदय भी नहीं होता और
नहीं होने से फल भी नहीं दे सकते हैं।

३५० प्रश्न - चक्रवर्ती खंड साध कर आते है, तब
साथ ३२००० मुकुट-बन्ध राजा भी आते हैं, तो वे वापिस
अपने स्थान पर कैसे जा सकते होंगे, क्योकि गुफाएँ अ
बन्द हो जाती होगी ?

उत्तर - जब तक चक्रवर्ती का राज्य रहता है तब त
गुफाएँ खुली ही रहती है। इसी प्रकार गुफाओं के अ
नदियों की पाज व मण्डल भी रहते हैं। जहाज और नाव
साधन भी होते हैं। उनकी सेवामें अनेक विद्याधर आदि
हैं। चक्रवर्तियो के पास दिव्य-शक्ति भी होती है। इस
अनेक साधन उनके पास मौजूद रहते हैं और उनके रा
पर्यन्त आवागमन भी होता रहता है।

३५१ प्रश्न - महाविदेह की सभी विजय एक सम
समझें, जब कि 'सीता-सीतोदा' नदी उत्तरोत्तर बढ़ती गई है

उत्तर - सीता-सीतोदा नदी कच्छादि विजयों के पा
योजन से जितनी कम हो उतनी भूमि दोनों तटों की
नदियों की गिननी चाहिए, अर्थात् ५०० योजन से कम छू
पास का हिस्सा, रमण-प्रदेश, नदी का ही समझना। उस स
टीका में लिखा है कि -

**''यद्यपि शीतायाः शीतोदयायाः वा समु
एवपञ्चशतयोजनप्रमाणे विष्कम्भोऽन्यत्र तु हीनो हीनतर**

गदिविजयसमीपे उभयकुलवर्तिनौ रमणप्रदेशावधिकृत्य ोजनशतप्रमाणो विष्कम्भः प्राप्यते इति।"

३५२ प्रश्न - २५६ ढ़गले में सोये कौन व जागते कौन ?

उत्तर - जो वर्त्तमान में अपर्याप्त हैं, वे सोये हैं और र्प्त भी वही कि जो पर्याप्त होने के पूर्व ही मर जावेंगे।

३५३ प्रश्न - उत्पल की अवगाहना एक हजार योजन ी कैसे है और वह योजन भी कैसा है ?

उत्तर - समुद्र के गोतीर्थ-टापू आदि में एक हजार योजन : उत्पल-कमल कहे हैं। यह अवगाहना उत्सेधांगुल से नी चाहिए।

३५४ प्रश्न - उत्पल में तीन दृष्टि विषयक प्रश्न पूछे, लेश्या चार का पूछा, इसका क्या कारण ?

उत्तर - प्रश्न पूछने के अनेक तरीके है। गणधर भगवान् । हुए भी अनेक प्रकार से पूछते है और पृच्छा के रूप में करते है।

३५५ प्रश्न - स्पर्शनेन्द्रिय का विषय कितना है ?

उत्तर - स्पर्शनेन्द्रिय के िषय में ९ योजन तक के (द्रव्यान्तर प्रतिहत शक्ति वाले) आये हुए पुद्गल स्पर्श रूप से अनुभव । सकते हैं। इससे अधिक दूर के मन्द परिणाम वाले होने से रूप अनुभव में नहीं आ सकते है।

३५६ प्रश्न - चक्षु इन्द्रिय का विषय कितना है ?

उत्तर - उत्कृष्ट एक लाख योजन दूर रहे हुए अस्पृष्ट लो के रूप को जान सकते हैं।

३५७ प्रश्न - मनःपर्यवज्ञानी मुनि देवता के मन की बात सकते हैं क्या ?

उत्तर - जो देव मनःपर्यवज्ञान की सीमा के भीतर है उनके मन की बात जान सकते हैं।

३५८ प्रश्न - क्षेत्र और क्षेत्र-स्पर्शना में क्या अन्तर है ?

उत्तर - अवगाहना में दबे हुए-अवगाहित प्रदेश को क्षेत्र कहते है, किन्तु स्पर्शना छहों दिशा की गिनी जाती है। अवगाहित प्रदेशों के अतिरिक्त भी छहों दिशा के निकटवर्ती प्रदेश भी स्पर्शना में शामिल गिने जाते हैं। जैसे - परमाणु का अवगाहना क्षेत्र एक आकाश प्रदेश है, परन्तु स्पर्शना जघन्य चार प्रदेश और उत्कृष्ट सात प्रदेशों की होती है। यह दोनों का अन्तर है।

३५९ प्रश्न - भवनपति के दण्डक पृथक्-पृथक् कहे, किन्तु वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के दण्डक भिन्न-भिन्न क्यों नहीं कहे ?

उत्तर - भवनपति देवों के बीच में पहली नरक के नैरयिकों के पाथड़े आये हुए हैं, इसलिए वे उन्हें भिन्न-भिन्न कर देते हैं इसलिए उनके दंडक भिन्न-भिन्न कहे गये है। एक नरक से दूसरे के मध्य में तथा वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के बीच में, अन्य कोई वैसे जीव नहीं आये हैं। इसलिए उनके दण्डक भिन्न-भिन्न नहीं कहे गये हैं।

३६० प्रश्न - चक्रवर्ती को पुस्तक-रत्न की प्राप्ति तो बाद में हुई, फिर पहले ही बिना पुस्तकों के खण्ड साधने की विधि कैसे जान ली ?

उत्तर - वे स्वयं भी बुद्धिशाली हैं और उन्हें चक्ररत्न मार्ग बताता है, अंगरक्षक देव और अन्य अनेक देव भी उनकी सेवा में रहते हैं। इसलिए खंड साधने की विधि जानने में बाधा नहीं आती।

३६१ प्रश्न - नव निधान चक्रवर्ती के पाँवों के नीचे किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर - निधान आराधना के बाद, चक्रवर्ती के नीचे भूमि में चलते हुए, चक्रवर्ती की नगरी के बाहर आ जाते हैं। उनके मुँह भी श्रीधर तक कहे जाते हैं और चक्रवर्ती का घूमना भी निधानो की भूमि पर हुआ करता है। इसलिये नवनिधान चक्रवर्ती के पैरो के नीचे कहे जाते हैं।

३६२ प्रश्न - जीव, नारकी और देवता में कितने ज्ञान और कितने अज्ञान लेकर जावे और निकले ?

उत्तर - प्रथम नरक तथा भवनपति और वाणव्यंतरों में यदि असंज्ञी जीव जावे, तो दो अज्ञान लेकर जावे और संज्ञी जावे तो तीन अज्ञान लेकर जावे। दूसरी नरक से छठी नरक तक और ज्योतिषी से ग्रैवेयक तक जावे, तो तीन ज्ञान या तीन अज्ञान लेकर जावे। सातवीं नरक में तीन अज्ञान लेकर जावे। अनुत्तर विमान में तीन ज्ञान लेकर जावे।

पहली से तीसरी नरक तथा प्रथम देवलोक से ग्रैवेयक तक के जीव अज्ञान लेकर आवे, तो दो और ज्ञान लेकर निकले तो दो या तीन। चौथी से छठी नरक और भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी के जीव दो ज्ञान या दो अज्ञान लेकर निकलते हैं। सातवीं नरक का जीव, दो अज्ञान लेकर निकलता है और अनुत्तर-विमान से दो या तीन ज्ञान लेकर निकलते हैं।

३६३ प्रश्न - तैजस्काय और वायुकाय के जीव वहाँ से मर कर मनुष्य क्यों नहीं होते ?

उत्तर - तैजस्काय और वायुकाय के जीवों में मनुष्यायु बन्ध के योग्य अध्यवसायों का ही अभाव है।

३६४ प्रश्न - ग्रैवेयक और अनुत्तर-विमानवासी दे
पांच प्रकार की समुद्घात होने का भगवती सूत्र में उल्ले
जब कि जीवाभिगम में तीन प्रकार की लिखी है। इस भे
क्या कारण है ?

उत्तर - भगवती सूत्र में पाँच प्रकार की समुद्घात
उल्लेख है। उसमें से वैक्रिय और तेजस् समुद्घात तो वे
लब्धि की अपेक्षा से ही है। ये दो समुद्घात उन देवों के हुई
होती नहीं और आगे भी नहीं होगी, ऐसा स्पष्ट उल्लेख भगव
के मूल पाठ में है। जीवाभिगम में उन तीन समुद्घातों का
है, जो उन्हें होती है। इस पाठ से आगे चल कर उनकी विकु
शक्ति का भी वर्णन है, किन्तु उन्होंने वैक्रिय रूप किये नहीं
भी लिखा है। अतएव दोनों बातों में मात्र अपेक्षा भेद है, वास्त
भेद नहीं है।

३६५ प्रश्न - स्थानांग सूत्र ठा ४ में चार प्रकार का
बताया, जैसे - १. आभोग-निर्वर्तित २. अनाभोग-निर्वर्ति
उपशांत और ४. अनुपशान्त । ये चारों प्रकार के क्रोध नैरयि
लगा कर वैमानिक तक सभी दण्डक में होना लिखा है, तो
हैं कि उपशांत-क्रोध तो ११ वें गुणस्थान वाले मनुष्यो के
सकता है, सभी दण्डकों में कैसे माना जाय ?

उत्तर - स्थानांग ४-१ तथा प्रज्ञापना पद १४ में वर्णित
प्रकार के क्रोध में से उपशांत क्रोध जीव में उस समय पा
जबकि वह क्रोध कषाय में नहीं , किन्तु मानादि अन्य कषा
वर्तता हो अथवा विशिष्ट उदय के अभाव के समय भी उपश
क्रोध कह सकते हैं। क्रोध का उदय निरन्तर तो रहता ही

इसकी काय-स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं होती। कर्म-ग्रन्थ मे भी क्रोध की प्रकृति ध्रुव उदय मे नही बता कर, अध्रुव उदय में ही बताई है। अतः इसका उदय निरन्तर नही रह कर अन्तर सहित ही रहता है। जब इसका उदय नही हो या विशिष्ट उदय नही हो, उस समय 'उपशांत क्रोध' समझना चाहिए। इस प्रकार यह भेद सकषायी जीवो मे ही होता है। अकषायी मे नही और ग्यारहवें गुणस्थान वाले जीव तो अकषायी है। ये भेद क्रोध के हैं। इसलिए सकषायी के है। इसी प्रकार मान आदि तीन कषायो का तीसरा भेद भी समझना चाहिए। वह भी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुदय अथवा विशिष्ट उदय के अभाव की अवस्था में २४ ही दण्डकों में होता है।

३६६ प्रश्न - ज्ञाता सूत्र मे श्री थावच्चापुत्र अनगार ने विनयमूल-धर्म में पांच महाव्रत बतलाये हैं। श्री थावच्चापुत्र अनगार तो भगवान् नेमिनाथ जी के शासन के थे। उस समय साधु चार याम रूप धर्म पालते थे। फिर उन्होंने पांच महाव्रत कैसे बतलाए?

उत्तर - नगर-सेठ सुदर्शन पहले सांख्यमतानुयायी था। सांख्य मतानुयायी पांच यम और पांच नियम मानते है और शूचि-मूल धर्म मानते है। उनके पांच यम में किञ्चित् प्राणातिपात विरमणादि है, तो उन्हें समझाने के लिए पांच महाव्रत बताये होंगे-ऐसा संभव है। श्री थावच्चापुत्र महाराज चौदह पूर्वधर, आगम-विहारी थे। उन्होंने 'बहिद्धा' (मैथुन) और आदान (परिग्रह) इस प्रकार **'बहिद्धादाण'** शब्द से मैथुन और परिग्रह का विश्लेष करके पांच महाव्रत बताये होंगे। चार पांच महाव्रतों में त्याग की मात्रा तो समान ही है। पांच हैं वे भी चार के भेद स्वरूप हैं। समझ की सरलता के लिए चौथे के दो भिन्न-भिन्न भेद कर दिए हैं।

३६७ प्रश्न - स्थानांगसूत्र के चौथे ठाणे में चार प्रकार के फल बताये हैं। जैसे - "**आमलगमहुरे, मुदियमहुरे, खीरमहुरे, खंडमहुरे**" यहाँ प्रश्न होता है कि - आँवला तो पकने पर भी खट्टा ही होता है। उसे मधुर फल कैसे माना ?

उत्तर - खट्टा होते हुए भी आँवले में कुछ मधुरता होती है। आँवले तीन प्रकार के होते हैं। उनमें "खीर" जाति का आँवल भी होता है। वह अन्य आँवलों की अपेक्षा अधिक मधुर होता है जैसे - खीरामलय 'अबद्धास्थिकेफले क्षीरन्वमधुरे आमलके।"

३६८ प्रश्न - स्थानांग के चौथे स्थान में अनन्तानुबन्धी आदि चारों ही कषाय में क्रम से नरकादि का बन्ध बताया है औ तीसरे कर्मग्रन्थ में अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन-चतुष्क में एक-एक चतुष्क में चारों आयुष्य क बन्ध होना बताया गया है। इसकी संगति कैसे होती है ?

उत्तर - स्थानांग ४ में अनन्तानुबन्धी आदि चारों कषाय मे क्रम से नरकादि चारों आयु का बन्ध नहीं बताया है, परन्तु वह तो अनन्तानुबन्धी आदि चारों के उदय में क्रम से नरक आदि चारो में गमन करते हैं- ऐसा बताया है। जैसे "**अणुप्पविट्ठे जीवे काल करेइ**" अर्थात् उसमें प्रवेश किया हुआ जीव काल करे, तो ऐसा बताया है। इस पाठ से नरकादि के आयु का बन्ध नहीं समझ कर उसके उदय में जीव का नरकादि में जाना समझा जाता है तथा यह भी ध्यान में रहे कि जब तक जीव के अनन्तानुबन्धी कषाय रहता है, तब तक १६ ही कषाय रहते हैं। उदय तो सोलह में से किसी भी एक कषाय का ही रहता है और वह उदय भी अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं रहता है। क्योंकि १६ में से किसी भी

कषाय की उदय स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं और परिवर्तित रूप से तो सोलह ही कषाय चौथे ठाणे व चौदहवें पद के हिसाब से २४ ही दंडकों में बताया है। जैसे - **"चउविहे कोहे पण्णत्ते तंजहा - अणंताणुबंधी कोहे, अपच्चक्खाणे कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे संजलणे कोहे, एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं २४ एवं जाव लोभे वेमाणियाणं २४"** तथा कर्मग्रन्थ में भी प्रथम गुणस्थान में ११७ प्रकृति का उदय बताया है। उसमें भी पहले गुणस्थान में १६ ही कषाय का उदय सिद्ध होता है। अतएव अनन्तानुबन्धी रहे तव तक १६ और अनन्तानुबन्धी नष्ट होने के बाद अप्रत्याख्यानी रहे तब तक १२ और अप्रत्याख्यानी नष्ट होने के बाद प्रत्याख्यानावरण रहे तब तक आठ कषाय की प्रकृति का उदय परिवर्तित रूप से रहता है। अतः अनन्तानुबंधी बिना छूटे, प्रत्येक कषाय के उदय में जीव नरक आदि चारों में से किसी भी आयु का बन्ध, संयोग पाकर कर सकता है। अभव्यजीव, चारों गति का आयुष्य बाँधता है, परन्तु उसका अनन्तानुबन्धी तो छूटता ही नही। इसी प्रकार भव्य मिथ्यात्वी भी प्रत्येक कषाय के उदय में चारों गति का आयुष्य बाँध सकता है। अनन्तानुबन्धी का सर्वथा क्षय (क्षायिक-समकित) होने के बाद तो कर्मभूमि का मनुष्य किसी भी गति का आयुष्य नहीं बांधता। शेष अप्रत्याख्यानी आदि कषाय का क्षय होने के बाद तो आयु सर्वथा बांधते ही नही तथा जिस कपाय में आयु बांधे, उसी कषाय में मृत्यु होवे, ऐसा भी कोई खास नियम नही है। इस प्रकार चारो चतुष्क मे चारों ही प्रकार के आयुष्य का बंध होते हुए भी स्थानांग कथित वात में कोई वाधा नही आती है।

३६९ प्रश्न - शुक्ल-लेश्या में सामान्य से २०४ प्रकृतियों का बन्ध होना, तीसरे कर्मग्रन्थ के लेश्याधिकार में बताया है। वहाँ तिर्यचत्रिक को वर्जित किया है। प्रश्न होता है कि आठवें देवलोक तक के देव, तिर्यच में आकर उत्पन्न हो सकते हैं और वहाँ केवल शुक्ल-लेश्या ही होती है। यदि शुक्ल-लेश्या में तिर्यचत्रिक का बन्ध नहीं हो, तो फिर वह तिर्यच में कैसे उत्पन्न होंगे ?

उत्तर - नारक और देवों की द्रव्य-लेश्या जन्म से जन्मान्त तक पलटती नहीं अर्थात् उत्पत्ति के समय जो द्रव्यलेश्या होती है, वही अंत तक रहती है, किन्तु भाव-लेश्या में परिवर्तन होता रहता है। छठे से आठवें देवलोक के देवों में जब भाव शुक्ल-लेश्या नहीं होती, तब यदि तिर्यच आयु का बन्ध उनके हो, तो हो सकता है, ऐसी सम्भावना है।

३७० प्रश्न - चक्रवर्ती के दण्डरत्न, चर्मरत्न, असिरत्न तो निर्जीव होते हैं। फिर इन्हे एकेन्द्रिय जीव कैसे माना है ?

उत्तर - प्रज्ञापना सूत्र के २० वें पद में लिखा कि - असुरकुमार से लगा कर अन्तर-रहित ईशान देवलोक तक के जीवों में से कोई जीव मर कर चक्रादि सातों रत्नो में किसी भी रत्नपने को प्राप्त कर सकता है तथा स्थानांगसूत्र स्था. ७ मे ७ एकेन्द्रिय रत्न कहे हैं। उसकी टीका में भी "पृथ्वीरूपेरत्ने" लिखा है तथा समवायांग, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, प्रवचन-सारोद्धार आदि देखते हुए देवों के शस्त्र, वस्त्र, पुस्तकादि की तरह दण्डरत्न, असिरत्न आदि सजीव होने की संभावना है, किन्तु अन्य मनुष्यों के दण्डादि की तरह निर्जीव होना संभव नहीं लगता है।

३७१ प्रश्न - ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के १६ वें अध्ययन में

सुकुमालिका को चारित्र-धर्म की विराधिका हो कर ईशानकल्प में 'देवगणिका' के रूप में उत्पन्न हुई- लिखा है। प्रश्न है कि विराधक साधु-साध्वी की गति तो प्रथम देवलोक तक ही है। फिर सुकुमालिका दूसरे देवलोक मे कैसे उत्पन्न हो गई ?

यह भी पूछना है कि दूसरे कर्मग्रन्थ के अनुसार सम्यक्त्व की मौजूदगी में स्त्रीवेद और नपुंसक वेद का बन्ध नही होता, फिर वह स्त्री-वेद मे कैसे उत्पन्न हुई ? क्या स्त्रीवेद बांधते समय वह प्रथम गुणस्थान में थी ?

उत्तर - मूलगुण के विराधक साधु-साध्वियो की गति, पहले देवलोक से आगे नहीं होती, परन्तु उत्तरगुण विराधक साधु साध्वियों की गति तो १२ वें देवलोक तक की है। देव उत्पाद के १४ बोल में से १३ वे बोल वाले आभियोगिक है। वे जघन्य भवनपति मे और उत्कृष्ट १२ वे देवलोक तक उत्पन्न होते हैं। वे उत्तरगुण के विराधक अवश्य है। अतएव सुकुमालिका के लिये भी इसी प्रकार समझना चाहिये। जो आराधक होते है, वे देवियों मे और आभियोगिक देवों में उत्पन्न नहीं होते। उन्हें देव सम्बन्धी पांच पदवियों में से कोई भी पदवी प्राप्त नही होती।

सुकुमालिका को स्त्रीवेद का बन्ध, अज्ञान दशा में (मिथ्यात्व के सद्भाव में) ही हुआ है। तृतीयादि गुणस्थानों मे स्त्रीवेद का बन्ध है ही नहीं। सुकुमालिका **"पासत्था पासत्थविहारी"** आदि हो चुकी थी। वह ज्ञानादि से बाह्य हो चुकी थी। टब्बाकार लिखते हैं कि "ज्ञानादि थी बाह्य ते पासत्था" अतएव वह दर्शन (सम्यक्त्व) से भी बाहर हो गई थी। मिथ्यात्व अवस्था में स्त्रीवेद का वन्ध हुआ मानना चाहिए।

बकुश और प्रतिसेवनाकुशील की स्थिति भी कुछ कम करोड़पूर्व तक की है, परन्तु इनके जघन्य चारित्र के पर्याय, पुलाक के जघन्य तथा उत्कृष्ट पर्यवों से और कषायकुशील के जघन्य पर्यवों से अनन्त गुण अधिक हैं। इसलिए इनमें स्थिति अधिक होते हुए भी अशुभ लेश्या नहीं आ सकती *।

* नोट - पुलाक, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील साधु तो चारित्र मे दोष लगाते हैं, किन्तु कषायकुशील निर्ग्रन्थ चारित्र में दोष नहीं लगाते। उनकी कषायो मे ही शुभाशुभता होती है। विशुद्ध ज्ञानाचारादि के पालक ऐसे कपायकुशील निर्ग्रन्थ मे अशुभ कषाय के आने का कारण भी प्राय: दूसरों की चारित्रिक-हीनता एव शिथिलता निमित्त वनती होगी। शिष्यों या साधुओ की मर्यादाहीनता, पांच आचार के विरुद्ध प्रवर्त्तन, उत्सूत्र-प्ररूपणा, उन्मार्ग-गमन आदि के निमित्त से उन में अशुभ लेश्या आ सकना सरल है। वे आचार्य हो, तो सारणा-वारणादि के प्रसंग पर या किसी अनार्य अथवा दुष्ट के द्वारा संघ पर संकट उपस्थित होने पर अशुभ भावना आ सकती होगी। जैसे मर्यादाहीन एवं दूषित आचरण वाले शिष्यों से खेदित होकर श्री गर्गाचार्य जी ने सोचा - **"किं मज्झ दुट्ठ सीसेहिं अप्पा मे अवसीयइ"** इस प्रकार अन्य भी उदाहरण हो सकते है। किन्तु वह अशुभ लेश्या भले ही कृष्ण ही क्यो न हो, पर सज्वलन के चौक के दायरे से आगे वढ़ने वाली नहीं हो। यदि इस दायरे से आगे वढी, तो कषायकुशीलपन से भी गिरा देती है। परिणामों की हीयमानता के कषायकुशील भी बकुशादि मे या असंयम मे जा सकते है और वर्द्धमानता से बकुशादि भी आगे बढ कर कषायकुशीलादि हो सकते है।

शुभ-लेश्या संसारियो के और मिथ्यादृष्टियो के भी होती है। ज्योतिषीदेव व पहले-दूसरे देवलोक के देव, मनुष्य के समान भोगी हैं, फिर भी उनमे सिर्फ एक 'तेजो लेश्या' ही होती है। सामान्यतया शरीर व उपकरण मे शोभाप्रिय मे शुभलेश्या हो सकती हैं। ऐसे शिथिलता चला लेते हैं। उनकी आत्मा मे विपरीताचरण देख कर ठेस नहीं पहुँचना स्वाभाविक है, क्योंकि स्वय मे भी कुछ ढिलाई है - डोशी।

३७३ प्रश्न - छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो भेद शास्त्र मे बतलाए हैं - सातिचार और निरतिचार। निरतिचार चारित्र का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्री पार्श्वनाथ भगवान् के शासनवर्ती साधु जब महावीर स्वामी के शासन में आते हैं तब उनमें निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र स्थापित होता है। यहां पूछना है कि - श्री पार्श्वनाथस्वामी के शासनवर्ती साधु, पूर्व दीक्षित हैं और महावीरस्वामी के शासनवर्ती साधु पश्चात् दीक्षित हैं। इन दोनों में छोटे-बड़े का क्रम और वन्दन व्यवहार किस प्रकार होता होगा ?

उत्तर - पूर्व पर्याय का छेद करके पांच महाव्रत रूपी पर्याय में स्थापित करने को छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। जैसे - **"छेत्तूण उ परियागं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं धम्मंमि पंचजामे छेदोवट्ठावणो स खलु" भगवती श. २५ उ. ७ में तथा "परियायस्सच्छेओ जत्थोवट्ठावणं वएसु च च्छेदो छेदोवट्ठावणमिह, तमणइयारेतरं दुविहं॥ १॥ सेहस्सनिरइयारं तित्थंतरसंकमेव तं होज्जा। मूलगुणघाइणो साइयारमुभयं च ठियकप्पे" ॥ २॥ सातिचारं-यन्मूल प्रायश्चित्त प्राप्तस्येति प्रथम पश्चिम तीर्थयोरित्यर्थः**, स्था. ५ उ. २ में इस प्रकार कहा है। उपरोक्त अर्थ के हिसाब से तो जो छेदोपस्थानीय चारित्र में बड़े वे ही बड़े और उन्ही को वन्दना व्यवहार भी किया जाता है, ऐसा संभव है ✧ ।

✧ नोट - उत्तराध्ययन २३, भगवती १-९ आदि के वर्णन को देखने से तो ऐसा ही प्रमाणित होता हे - डोशी।

३७४ प्रश्न - अनाकार उपयोग मे १०वे गुणस्थान को छोड कर शेष १३ गुणस्थान बताये है। इसका क्या कारण है ? सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान में सात उपयोग भी बताये हैं, तो इन दोनों में परस्पर संगति कैसे होगी ?

उत्तर - साकार उपयोग मे ही जीव को १० वे गुणस्थान की प्राप्ति होती है और उस साकार उपयोग की समाप्ति के पहले ही उस जीव के दसवें गुणस्थान की स्थिति समाप्त हो जाती है। इसलिए दसवे गुणस्थान में रहने तक कोई भी जीव अनाकार उपयोग में प्रवृत्त नहीं हो सकता ★। इसीलिए अनाकार उपयोग में दसवें को छोड़ कर शेष तेरह गुणस्थान बतलाये हैं। वैसे तो अनाकार उपयोग के विना कोई भी जीव नही होता। मोक्ष जाते समय जीव में साकार और अनाकार उपयोग होता है, परन्तु प्रवृत्ति उस समय सब के ज्ञानोपयोग (साकारोपयोग) की ही होती है, दर्शनोपयोग (अनाकारोपयोग) में नही होती, "**सागारोवउत्ते सिज्झइ**" ऐसा उल्लेख है। इसी प्रकार दसवें गुणस्थान के विषय में भी समझना चाहिए।

३७५ प्रश्न - सेनप्रश्नकार लिखते है कि - अकाम निर्जरा वाला व्यन्तर तक ही जाता है और अन्य परिव्राजकादि ब्रह्मचर्यादि के प्रभाव से वैमानिक मे भी जाते हैं। अतएव यह 'सकाम-निर्जरा' है। यह उववाई-सूत्र से सिद्ध होता है। क्या यह ठीक है ?

उत्तर - खान-पान, भोगविलास आदि की इच्छा होते हुए भी, सामग्री और अनुकूलता के अभाव मे खाना पीना आदि नहीं

★ मोहनीय की आखिरी सत्ता को नष्ट करने या सर्वथा दवाने मे साकारोपयोग की वलवान् परिणति आवश्यक होने का अनुमान होता है - डोशी।

कर सकने को 'अकाम-निर्जरा' और इच्छापूर्वक भोग-वि
आदि छोड़ने को 'सकाम-निर्जरा' इस अर्थ में 'सेनप्रश्नक
कहा हो, तो ठीक है। क्योंकि सम्यक्त्वी व्रतधारी के समान
परिव्राजकादि भी वस्तुओं का संयोग होते हुए भी परलोक सा
इच्छापूर्वक छोड़ते हैं। किन्तु यह वह सकाम निर्जरा नहीं है
मोक्ष प्राप्ति के साधनरूप सम्यग्दर्शन के साथ होती है। क
उववाई सूत्रोक्त परिव्राजकादि परलोक साधना की क्रिया
कई क्रिया करते हुए भी परलोक के आराधक नहीं बताये ग
मिथ्यात्व की अवस्था में, जिन-प्रणीत चारित्र की क्रिया, जी
अनन्त बार पालन की, किन्तु वह मुक्ति के निकट नहीं हो
तो परिव्राजकादि की क्रिया से कैसे हो सकेगा ? हाँ, भ
परिपाक एवं सम्यक्त्वाभिमुख होते समय ऐसी क्रियाएँ जीव
कुछ उज्ज्वल बनाने में सहायक बन सकती हैं, किन्तु वास्त
सकामनिर्जरा उनके नहीं होती है।

३७६ प्रश्न - श्रावक के सामायिक में अशन, पान, खा
स्वादिम के त्याग नहीं हैं, सो यदि वह सामायिक में स्वयं
पीवे, या किसी को पिलावे, तो क्या आपत्ति है ? यदि
पिलाना सावद्य योग है, तो तेरापंथी में व आप में क्या अन्तर
वे अविरत को दूध पिलाना सावद्य-योग मानते हैं। वे कहते
अविरत को दिया जाने वाला दान ही सावद्य है। यदि मुंहप
जाय तो भी सावद्य। इसका क्या समाधान है ?

उत्तर - श्रावक थोड़े काल (एक मुहूर्त्त आदि) की साम
करते हैं। उसमें भी यदि दूध पीने-पिलाने का काम करे, तो
तो दूध की तरह अन्य अचित्त पदार्थ, रोगी आदि खाने-पि

पीने-पिलाने में क्या हर्ज है ? - इस प्रकार के प्रश्न उत्पन्न ।। जव वह थोड़े काल की सामायिक में भी ऐसे प्रपंचों मे . जायगा, तो समभाव एवं आत्म-चिन्तन आदि कब करेगा ? ात् इन प्रपंचों में ही उसकी सामायिक के समय की परिसमाप्ति जायगी। सामायिक के सिवाय अन्य समय में तो वह सामायिक योग्य समभाव एवं आत्मसाधना कर भी नही सकेगा। फिर का थोड़े समय की सामायिक करना कैसे सार्थक हो सकेगा ?

दूध आदि के बर्तन को पीने-पिलाने के बाद यों ही रख ।, तो चींटियाँ आदि की विराधना का भय रहेगा और सफाई ने-कराने मे अन्य आरम्भादि प्रपंच होंगे। इसलिए सामायिक में प्रकार की प्रवृत्ति की रोक लगाई गई है। परन्तु ग्यारहवी ामा (पडिमा) का पालन करने वाला श्रावक तीनकरण, ा योग से आरम्भ का त्यागी होते हुए उसके त्याग की अवधि ्वी होने से वह स्वयं खाता-पीता है और दूसरे प्रतिमाधारी वक को भी खिला सकता है तथा उनकी अन्य प्रकार की सेवा ाने में भी वे पाप नहीं समझ कर धर्म ही समझते हैं। छोटी ्ची की माता यदि आवश्यकता हो तो सामायिक में बच्ची को ानपान भी करा दे, तो सामायिक भंग होने की संभावना नहीं है।

यो तो तेरापंथी और साधुमार्गी सम्प्रदाय के मुनि, यूकाओं ूओ) को खून पिलाने के लिए अपने शरीर के किसी भाग में ुछ देर बॉधते है। वे यूकाएँ भी तो अविरति वाली हैं। इस प्रकार च्छर आदि अव्रती होते हुए भी उनको अपना खून पीते नहीं कना-ऐसा सूत्र मे बताया है तथा भगवान् जानते थे कि मैं इधर

जाऊँगा, तो अविरत चण्डकौशिक मेरा रक्त व मांस लेगा, तो
उधर पधारे। जिनेश्वर ने प्रत्येक प्रवृत्ति की व्यवस्था ठीक
निर्वाह योग्य देख कर ही बताई है। जैसे - रोटी आदि पडि
नहीं लेना और बढ जाने पर जिनकी हो, उसे देना भी नहीं, कि
पाट-पाटले, सूई आदि पडिहारी ही लेना और काम हो जाने
वापस दे देना।

जिस प्रकार तेरापंथी व स्थानकवासी जैन साधु, गृहस्थों
उसी स्थान पर पढने के लिए पुस्तक पाने देते हैं, तो फिर श्राव
श्रावक को पुस्तक मुँहपत्ति आदि दे, तो हर्ज ही क्या है ? इ
प्रकार सामायिक मे रहा हुआ सामायिक वाले की आवश्यक
होने पर सेवा करे, तो इससे सामायिक का भंग नहीं होता है।

३७७ प्रश्न - सिद्ध भगवान् के गुणों में भी हानि वृ
होती है क्या ?

उत्तर - सिद्ध भगवान् के जो अनन्त ज्ञानादि निज गुण
वे तो अपर्यवसित हैं। उनमें कभी भी न्यूनाधिकता नही हो
किन्तु अगुरुलघुत्व गुण की अपेक्षा प्रति समय हानि वृद्धि है
है। जलकल्लोल और रत्नों की लहरों की तरह प्रति समय उत
और व्यय होता है। अगुरुलघुत्व गुण धर्मास्तिकायादि सभी द्र
में है और सिद्धो में भी है तथा जीव और पुद्गल आदि पदार्थों
ज्ञानादि वर्णादि और क्षेत्रादि संबंधी ज्यों-ज्यो परिवर्तन होता
त्यों-त्यों उन पदार्थो की अपेक्षा सिद्धों के ज्ञान में भी परि
होता है, जैसे किसी जीव की वर्त्तमान पर्याय नारक रूप है,
वर्त्तमान में सिद्धों के ज्ञान में नारक रूप आता है किन्तु वही
नरक से निकल कर मनुष्य हो जाय, तो फिर उसकी वर्त

र्याय मनुष्य की आयगी ❖। इसी प्रकार लोक के पदार्थों मे जो रिवर्तन होते है, वे सिद्धों के ज्ञान में आते हैं। उसमें उत्पाद व्यय हता ही है।

३७८ प्रश्न - यदि कोई व्यक्ति छोटे बच्चे को साधु की ोली में डाल दे, तो साधु, उस बच्चे को ले सकते हैं ?

उत्तर - पूर्वधर आदि विशेष ज्ञानी, उस बालक संबंधी ूत-भविष्य की अनेक परिस्थितियों को भलीभांति जानते हों और सका लेना उचित समझते हों, तो वे उसे ले सकते हैं, परन्तु लेने र भी वे गृहस्थ के रूप में रहे हुए उस बालक का पालन-पोषण ही करते। सामान्य साधु को तो ऐसे बाल को योग्यता प्राप्त हुए ना दीक्षा देना भी नहीं कल्पता है।

३७९ प्रश्न - जिस व्यक्ति ने झोली में बच्चा डाला, वह स बच्चे को वापिस मांगे, तो दे सकते हैं ?

उत्तर - केवलज्ञानी के अतिरिक्त किसी सामान्य साधु की ोली में कोई बच्चा डाल दे, तो उसे लेना ही नहीं, वही छोड़ ना, फिर वापिस देने का तो प्रश्न ही नहीं रहता है।

३८० प्रश्न - जहाँ भाव होता है, वहाँ द्रव्य होता है क्या ?

उत्तर - यदि चारित्र की अपेक्षा प्रश्न किया है, तो भाव-ारित्र के साथ द्रव्य होता ही है, श्री गौतमादि मुनिवरो की तरह ौर विना द्रव्य-चारित्र के भी भाव-चारित्र हो सकता है, श्री रुदेवी माता की तरह।

३८१ प्रश्न - जहाँ भाव नही वहाँ द्रव्य होता है क्या ?

❖ नारक-पर्याय भूतपूर्व हो जायगी। पहले मानव-पर्याय भविष्य म्बन्धी थी, वह अव वर्त्तमान हो गई - डोशी।

उत्तर - हाँ होता भी है। उदायी-नृप-घातक में भावच
तो नहीं था परन्तु द्रव्य-चारित्र तो था ही। तथारूप के असं
अविरत जीवों की तरह।

यदि षट् द्रव्य की अपेक्षा प्रश्न हो, तो जिसमें भाव हैं,
में द्रव्य है, जिसमें भाव नही है, वह द्रव्य नहीं है। प्रश्न
अपेक्षा स्पष्ट नही है।

३८२ प्रश्न - भगवान् महावीर आदि के पास बैठ
किसी साधु या श्रावक ने 'महावीर' 'महावीर' - इस प्रकार
का रटन, बार-बार माला फिराने रूप किया था क्या ? ऐसा
उल्लेख है क्या ?

उत्तर - उत्तराध्ययन, उववाई, दशाश्रुतस्कन्ध, आवश्य
भगवती और ज्ञाताधर्मकथादि अनेक सूत्रों मे अरिहंतों की स्तु
गुण-कीर्तन आदि मे समकित निर्मल होना, तीर्थकर-गोत्र
वन्ध करना, इस-भव पर-भव मे हितकारी सुखकारी, मोक्ष
आराधना आदि होना बताया है। तथारूप के अरिहंत भगवंता
नाम-गोत्र गुनने से भी महाफल माना हैं, तव नाम रटन (स्मर
करने से महाफल हो, उसका तो कहना ही क्या ? श्रेणिक
भी प्रभु का नाम वार्त्ता आदि सुन कर अत्यन्त प्रसन्न होते थे
हमेशा प्रभु की सूचना चाहते थे। भगवंत के पास रहने वाले
भी प्रतिदिन कम से कम उभय संध्या तो - "नमोत्थु
अरिहंताणं"......से तथा "**लोगस्स उज्जोयगरे**" आदि से भग
की स्तुति और स्मरण करते थे ❂।

❂ कदाचित् यह प्रश्न मेरा ही था। प्रश्न का आशय, माला
की पवृत्ति की आगमिकता जानने का था। लगता है कि माला फिरा

३८३ प्रश्न - असंयत अविरत भूखे-प्यासे को अचित्त प्रासुक आहार-पानी देना, सावद्य योग है या निरवद्य-योग ? निरवद्य-योग सेवन से (सामायिक मे देने से) कौनसी बाधा आती है ?

उत्तर - सावद्य-योग का त्यागी, सावद्य-योग के त्याग की निवृत्ति में सहायक प्रवृत्ति कर सकता है। असंयत-अविरत के तो सावद्य-योग की प्रवृत्ति चालू ही रहती है। अतः उसको आहारादि देने से सावद्य-योग की अनुमोदना भी होती है। अनुकम्पा ठीक होते हुए भी सावद्य-योग के त्यागी का यह कल्प नहीं हैं। अतः सामायिक वाला ऐसी क्रिया नहीं करता, किन्तु इसमें पाप नहीं मानता है।

३८४ प्रश्न - ईशानेन्द्र पूर्वभव में बालतपस्वी-मिथ्यादृष्टि था और अन्त तक बालतपस्वी ही रहा। तब उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति कहॉ हुई और संसार-परिमित कहाँ किया ? ईशानेन्द्रपने तो वह सम्यग्दृष्टि ही रहा। मनुष्य-भव में उम्र भर बालतपस्वी एवं मिथ्यादृष्टि रहने वाला क्या इन्द्र के रूप में उत्पन्न होते ही सम्यग्दृष्टि हो जाता है ?

उत्तर - जब तामली बालतपस्वी संथारे मे था, तब बलिचंचा

एक नाम को बार-बार, सैकडो बार रटन करने की प्रवृत्ति आगमिक काल मे नहीं थी। जिस प्रकार 'अखण्ड जाप' की प्रवृत्ति इस काल की देन है, उसी प्रकार माला फिराने की प्रवृत्ति भी मध्यकाल से प्रचलित हुई हो। अखण्ड जाप के साथ तो प्रारम्भ से ही पौद्गलिक ध्येय और आडम्बर लग गया। इसका मूल प्रेरक प्राय· त्यागी-वर्ग रहा। कदाचित् अखण्ड जाप के प्रेरक यह मानते हो कि जैसे मण्डप बनाना सजावट करना, दीप जलाना, चावल या लोग की गिनती कर प्रयोग करना और समाप्ति का जुलूस निकालना आदि क्रियाएँ किए विना अखण्ड जाप हो ही नही सकता है ? - डोशी।

३८७ प्रश्न - बीमारी में मुनिराज, असंयत, अविरत एवं मिथ्यादृष्टि से आपरेशन करा सकते हैं और उसमें सदोष पानी आदि काम में लाया जा सकता है और बाद में प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि हो सकती है, तो प्राण संकट में पड़े हों, तब सचित जल पान से आत्म-रक्षण कर के फिर प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होने में क्या रुकावट है ?

उत्तर - साधुओं को असंयत आदि से आपरेशन कराने की शास्त्रों में बिलकुल छूट नहीं है, न सदोष पानी आदि वापरने की छूट है। शास्त्रकार ने तो उपरोक्त कार्यों की मनाई बताई है, तदुपरान्त भी कोई करे, करावे और अनुमोदे, तो उसे प्रायश्चित्त आता है। उपरोक्त कामों की छूट नहीं है, तो कच्चा पानी पीने की छूट तो हो ही कैसे ?

अम्बड जी संन्यासी के ७०० शिष्य, कच्चा पानी पीने वाले थे, सिर्फ बिना आज्ञा नहीं पीना-ऐसी उनकी प्रतिज्ञा थी। वे भी प्रतिज्ञा पर कायम रह कर संथारा कर के पांचवें स्वर्ग गये, तो निर्ग्रन्थ-श्रमण तो पिये ही कैसे ? इतने पर भी कोई सचित्त जल पियेगा, तो उसे प्रायश्चित्त अवश्य ही आयगा *।

३८८ प्रश्न - घरबार, कुटुम्ब, परिवार का त्याग करके मुनि-धर्म स्वीकार किया जाता है। संयम पाल कर स्वर्ग मे जाने के बाद, उन्हे घर पर छोड़े हुए द्रव्य की क्रिया आती है क्या ?

---

* शुद्ध निर्ग्रन्थ जीवन की तो यही रीति है। किन्तु कुछ साधु, बिगडे जमाने की पतित साधुता का अनुकरण करके, सदोष रीति को भी निर्दोष बताने की कुचेष्टा करते है। यह बिगड़े जमाने की बिगडी भावना का परिणाम है - डोशी।

उत्तर - देव अव्रती है। अतएव आमतौर पर उन्हें सम्पूर्ण लोक आश्रयी क्रिया आती है, उसी प्रकार घर पर छोड़े हुए द्रव्यादि की क्रिया भी आती है। एक बार विरति होने के वाद अविरति की क्रिया आती तो है, परन्तु पहले की अपेक्षा मन्द रूप से आती है।

३८९ प्रश्न - किसी मनुष्य ने अन्न का भोजन किया और किसी ने पंचेन्द्रिय जीव के शरीर का (मांस का) इन दोनों मे अधिक पाप किसे लगा ?

उत्तर - मांसाहारी को अधिक पाप लगता है। क्योंकि मांसाहार, नरकगति का कारण है। श्री स्थानांग सूत्र में पंचेन्द्रिय जीव को मारने से दस प्रकार का असंयम होना बताया है। इत्यादि बातें सोचते अन्नभोजन की अपेक्षा पंचेन्द्रिय के शरीर का भोजन करना अधिक पाप का कारण है।

३९० प्रश्न - दान देने वाले को और लेने वाले को क्या लाभ होता है ?

उत्तर - यदि यह प्रश्न विशुद्ध भावों से सुपात्रदान के विषय में हो, तो लेने वाले और देने वाले दोनों को '**मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गइं**'' - दशवैकालिक सूत्र के पांचवें अध्ययन के पहले उद्देशक में बताया है तथा भगवती सूत्र श. ७ उ. १ में दाता को सिद्ध होने तक का फल बताया है और संयम तो मोक्ष प्राप्ति का कारण है ही। तात्पर्य यह है कि संयम की सहायता के लिए भिक्षा लेने व देने का अंतिम फल मोक्ष प्राप्ति है।

३९१ प्रश्न - चातुर्मास में साधु, कपड़ा क्यों नहीं याचते ?

उत्तर - साधु के लिए वस्त्र खरीदने और वस्त्र की मर्यादा

का उल्लघन होने आदि दोषों की सम्भावना से चौमासे में वस्त्र लेने की मनाई की है (निशीथ उ १०)।

३९२ प्रश्न - जघन्य दो हजार करोड़ और उत्कृष्ट नौ हजार करोड़ साधु-साध्वी, यह संख्या महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से है या १५ क्षेत्र की अपेक्षा से है ?

उत्तर - सभी-पन्द्रह क्षेत्र के मिला कर जघन्य प्रत्येक दो हजार करोड और उत्कृष्ट प्रत्येक नौ हजार करोड़ साधु-साध्वी होते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

३९३ प्रश्न - पाप के क्षयोपशम से चारित्र प्राप्ति और पाप के उदय से चारित्र नहीं आता, परन्तु पुण्य के उदय की प्रकृति किस प्रकार समझी जाय ?

उत्तर - मोहनीय कर्म के मुख्य रूप से दो भेद है - दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। उनमें से चारित्र-मोहनीय कर्म का क्षय और क्षयोपशमादि चारित्र प्राप्ति का तथा चारित्र-मोहनीय का उदय चारित्र अप्राप्ति का खास कारण है और बादर, त्रस, पर्याप्त, पचेन्द्रियजाति, मनुष्य-गति, दीर्घायु आदि पुण्य-प्रकृतियाँ चारित्र प्राप्ति मे सहायक होती हैं। ऐसा समझना चाहिए।

३९४ प्रश्न - तेजोलेश्या-लब्धि और तेजस्-समुद्घात मे क्या अन्तर है ? और इस लब्धि का उपयोग तिर्यंच भी कर सकते है क्या ?

उत्तर - 'तेजोलेश्या-लब्धि' उस शक्ति को कहते हैं, जिसके द्वारा क्रोध की उग्रता में आसानी से अनेक योजन प्रमाण क्षेत्र मे रही हुई वस्तु जला कर भस्म की जा सके। अर्थात् तेजोलेश्या लब्धि एक दाहक-शक्ति का नाम हैं। तेजस्-समुद्घात उस शक्ति

अनुभव नहीं करते, क्योंकि दोनों रूपों में वेद का अनुभव करने वाला जीव तो एक ही है और एक जीव की एक समय में एक साथ दो उपयोग में प्रवृत्ति नहीं होती। विपाकोदय भी तीन वेदों में से किसी एक का ही एक समय में होता है। इसलिए एक जीव के खुद के दो रूपों की परस्पर परिचारणा होते हुए भी एक समय में अनुभव तो एक ही वेद का होता है।

३१७ प्रश्न - श्री भगवती सूत्र श. ३ उ. ८ में देवों के अधिपति का विषय चला है। जिसमें पहले-दूसरे तथा तीसरे-चौथे देवलोक के दस-दस अधिपति बतलाये हैं और ५ से ८ देवलोक तक पाँच-पाँच अधिपति बतलाये हैं। इनमें एक इन्द्र और चार लोकपाल है। यह तो ठीक है, परन्तु ९, १० तथा ११, १२ के भी दस-दस अधिपति बतलाये हैं, सो यह कैसे हो सकता है ?

उत्तर - ९ वें से १२ वें तक चार देवलोकों के कुल दस अधिपति ही है, क्योंकि इन चार देवलोको के इन्द्र दो ही हैं और एक-एक इन्द्र के चार-चार लोकपाल हैं। इस प्रकार दस अधिपति हुए। सारांश यह है कि बारह देवलोकों के दस इन्द्र हैं। जिसमें अनुक्रम से दो-दो देवलोक के दो-दो इन्द्र और इनके आठ-आठ लोकपाल, इस प्रकार दस-दस होते है अर्थात् समानता में आये हुए पहले दूसरे देवलोकों के दस तथा समानता (बराबरी) मे आये हुए तीसरे और चौथे देवलोक के दस अधिपति होते हैं। पांचवां, छठा, सातवाँ और आठवाँ ये चार देवलोक एक दूसरे के ऊपर घड़े के आकार आये हुए हैं। इसलिये इनके प्रत्येक के पांच-पांच अधिपति बतलाये गये हैं। नववां और दसवां दोनो

बराबरी में आये हुए हैं इन दोनों का एक इन्द्र है। इसी प्रका
ग्यारहवें और बारहवें इन दोनों का एक इन्द्र है। इन चा
देवलोकों के दस अधिपति है। इस प्रकार बारह देवलोकों के इन
दस हैं और अधिपति पचास हैं।

३९८ प्रश्न - स्थानांग सूत्र स्था. ७ में 'तथारूप के श्रम
माहण को विभंगज्ञान' होना लिखा है। यह किस प्रकार है ?

उत्तर - वहां जिनाज्ञानुवर्ती आचार-गोचर के पालक श्रमण-
माहण का ग्रहण नहीं है, किन्तु अन्य मतानुयायी श्रमण-माहण क
ग्रहण है। वे जिस मत के अनुयायी हैं, उसकी मान्यता के अनुसा
प्रवृत्ति करते हैं, वैसा आचार पालते हैं, वेश आदि रखते है
इसलिए वे उस मत के तथारूप के श्रमण-माहण कहलाते

३९९ प्रश्न - सूयगडांग सूत्र अ. ५ में नरक व नेरिया क
वर्णन करते हुए उनके शरीर में से खून झरने व उस खून में उनके
को पचाने का उल्लेख है, तो क्या नेरियों के शरीर में खू
होता है ?

उत्तर - नरक के जीवों का वैक्रिय-शरीर होता है, इसलि
उसमें रक्त तो नहीं होता किन्तु उनके शरीर से जो पुद्गल झरत
है, वह रक्त के समान वर्ण युक्त है। इसलिए उसे रक्त कहा हैं।

४०० प्रश्न - स्थानाग ४ में मक्खन को 'दूधविगय' में भ
लिया और 'स्नेहविगय' तथा 'महाविगय' में भी लिया, इसक
क्या कारण है ?

उत्तर - गाय, भैस आदि के दूध आदि रस को 'गोरस
कहते हैं। उसके दूध, दही, घृत, मक्खन और छाछ ये पाँच भे
मुख्य हैं। इनमें से छाछ तो विगय में नहीं है, शेष चार 'गोरस

विगय मे है। इस प्रकार मक्खन गोरस में भी है और उसका समावेश दूध विगय में नहीं होकर 'गोरस विगय' मे होता है। वही मक्खन चिकनाहट की अपेक्षा 'स्नेह-विगय' में भी गिना जाता है और महान् विकार कारक होने के कारण 'महाविगय' मे भी माना जाता है। एक ही मक्खन को प्रकारान्तर से तीन वर्गो मे गिनाया गया है।

४०१ प्रश्न - एक पूर्व का ज्ञान लिखने में एक हाथी प्रमाण स्याही लगती है, उससे दुगुनी दूसरे पूर्व में। इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ते हुए स्याही का प्रमाण माना गया है और ज्ञान भी उत्तरोत्तर बढ़ता है, किन्तु समवायांग सूत्र मे दृष्टिवाद के वर्णन में सातवें पूर्व के तो २६ करोड़ पद बताये और ९ वे पूर्व मे ८४ लाख पद बताये, फिर सातवें पूर्व से ९ वे पूर्व के लिखने में चौगुनी स्याही कैसे लगती होगी ?

उत्तर - पद प्रमाण सभी का समान नहीं होकर छोटे-बड़े भी होते हैं। इसलिए असंगति नही है*।

४०२ प्रश्न - 'पुलाक-निर्ग्रथ' कब कहलाते है ? पुलाक-लब्धि प्राप्त होकर सत्ता में रहने की हालत में, लब्धि फोड़ते समय, या लब्धि का प्रयोग करने के बाद वे 'पुलाक-निर्ग्रथ' कहलाते है ?

उत्तर - पुलाक की स्थिति और अन्तर को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि जो वर्त्तमान काल में पुलाकपने में वर्त्तते हो, उन्ही को पुलाक कहते है-दूसरों को नही।

---

* जैसे दशवैकालिक का पहला अध्ययन केवल पॉच गाथा का ही है, जबकि पाँचवे की कुल १५० गाथा है -डोशी।

४०३ प्रश्न - भगवती सूत्र श. ७ उ. २ में प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी का विषय आया है। तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी की अपेक्षा उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी असंख्य गुण बतलाया यह मनुष्य और तिर्यंच मिला कर है, या केवल तिर्यंच ही है ?

उत्तर - तिर्यंच-पंचेन्द्रियों में ही देश मूलगुण-प्रत्याख्यानी से देश उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी असंख्य गुण अधिक है और उनसे अप्रत्याख्यानी असंख्य गुण अधिक है। इसमें शंका जैसी बात नहीं है ✻।

४०४ प्रश्न - पूर्वो का ज्ञान तो बिना पढ़े ही क्षयोपशम से प्राप्त हो जाता है, फिर कई स्थानों पर उल्लेख आया कि अमुक ९ वें पूर्व की तीसरी आचार-वस्तु तक पढ़े, अमुक दस पूर्व तक पढ़े, यह किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर - पूर्वो का ज्ञान भी श्रुतज्ञान है। यह विशिष्ट प्रकार के क्षयोपशम से भी होता है और पढ़ने से भी। व्यवहार सूत्र उ १० में पढ़ने का उल्लेख है और अन्तगड आदि सूत्रों मे भी पूर्वो का ज्ञान पढ़ने वालों का उल्लेख है। गणधर महाराज अपने विशेष प्रकार के क्षयोपशम से मात्र त्रिपदी सुन कर भी सम्पूर्ण १४ पूर्व का ज्ञान कर लेते हैं।

४०५ प्रश्न - द्वीप-समुद्रों की वेदिका और वनखण्ड किस स्थान पर समझना चाहिए ? (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, जीवाभिगम)

उत्तर - प्रत्येक द्वीप और समुद्र की वेदिका तथा वनखण्ड

✻ अल्पबहुत्व के ९८ बोलो मे 'असंख्यात-गुण अधिक का मान तीसरे बोल से ही प्रारंभ हो जाता है, तब तिर्यंच पंचेन्द्रिय तो ३२ से ३७ और ४० से ४४ तक है। इसलिए उनमे असंख्यात से असंख्य गुण वाले भी होते हे - डोशी।

अपने-अपने द्वीप व समुद्र के सभी ओर (वलयाकार-गोल) होते हैं। किनारे पर वेदिका उसके बाद वनखण्ड की समाप्ति के स्थान पर ही प्रायः उस द्वीप-समुद्र की समाप्ति होती है।

४०६ प्रश्न - कर्म-आशीविष आठवें देवलोक तक जाते हैं, आगे नहीं जाते। इसका क्या कारण ?

उत्तर - संख्यात वर्ष के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य को तपाचरण से या अन्य गुण से कर्म-आशीविष लब्धि उत्पन्न होती है। वे उस लब्धि के स्वभाव से देवलोक मे आठवें स्वर्ग तक ही उत्पन्न हो सकते हैं-आगे नहीं। पूर्वभविक आशीविष लब्धि के संस्कार से इन देवों में उत्पन्न होने पर भी अपर्याप्त अवस्था मे वे संस्कार उनमें रहते हैं और पर्याप्त अवस्था होने पर उन संस्कारों की निवृत्ति हो जाती है। यह कर्म आशीविष लब्धि भवनपति से लगा कर आठवें देवलोक तक अपर्याप्त अवस्था में रहती है।

४०७ प्रश्न - चमरेन्द्र पहले देवलोक में गया, जब ज्योतिषी देवों में बारह हजार योजन का व्याघात करता हुआ आगे बढ़ा-ऐसा भगवती सूत्र में है, सो शाश्वत विमानों में व्याघात कैसे हुआ ?

उत्तर - भगवती सूत्र में वहाँ - **"जोइसिए देवे दुहा विभयमाणे"** ऐसा पाठ है। इससे ज्योतिषी देव कुछ इधर-उधर हुए-ऐसा सिद्ध होता है। इस उल्लेख से विमानों का इधर-उधर हटना एकान्त सिद्ध नहीं होता। कदाचित् उस समय विमान भी कुछ इधर-उधर हुए हों, तो भी यह 'अछेरेभूत' (आश्चर्यकारी) बात है। इस अछेरे मे यह भी शामिल हो जाती है। किन्तु १२

हजार योजन के व्याघात सम्बन्धी वर्णन के मूलपाठ और टीका
देखने में नहीं आया। अन्य स्थान पर १२२४२ योजन का मे
पर्वत के पास ज्योतिषियों का अन्तर बतलाया है।

४०८ प्रश्न - पाताल-कलश के मध्यभाग में पानी और वायु किस प्रकार है ?

उत्तर - पाताल-कलश के मध्यभाग में वायु और पानी दोनों परस्पर मिश्रित हैं। उस हवा और पानी की निरन्तर एक ही सीमा नहीं है, क्योंकि प्रत्येक अहोरात्रि में दो बार सामान्य रूप से और चतुर्दशी आदि तिथियों में विशेष रूप से हवा के उद् आदि से हवा और पानी का उत्सरण (चढ़ना) और अपस (उतरना) होने का स्वभाव है।

४०९ प्रश्न - दगसीम वेलन्धर-पर्वत के पास सीता अ सीतोदा नदियों का प्रभाव किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर - सीता और सीतोदा नाम की महानदी क्रमशः जम्बू के पूर्व और पश्चिम के द्वार के नीचे से निकल कर दोनों नदि उत्तर की ओर मुड़ते-मुड़ते दगसीम-पर्वत तक चली गई है। उ पर्वत से टकरा कर उनका प्रवाह निवर्त (वापस लौट) जाता है इस कारण भी इस का नाम 'दगसीम' है।

४१० प्रश्न - 'लवसप्तम' देव किसे कहते हैं ?

उत्तर - सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों को और विजयादि च विमान गत उत्कृष्ट स्थिति वाले देवों में से एक भव करने व देवों को 'लवसप्तम देव' कहते हैं। (व्यवहार सूत्र वृत्ति उ० ५)

४११ प्रश्न - बिजली को (जो यन्त्र से उत्पन्न होती और जिससे प्रकाश होता है, ध्वनि-प्रसारक यन्त्र में भी जिस

योग होता है तथा पंखे आदि भी चलते हैं) कई साधु 'अचित्त' तलाते है और आप 'सचित्त' मानते है, तो उसकी सचित्तता के ाधार क्या हैं ?

उत्तर - बिजली सचित्त तेउकाय है। इस विषय में जिनागमों निम्न उल्लेख मिलते हैं -

१. श्री पन्नवणासूत्र प्रथम पद में 'तेउकाय' के वर्णन में दर तेउकाय के अनेक भेद बतलाए गये हैं, जिसमें 'बिजली' ा 'संघर्ष से उत्पन्न होने वाली अग्नि' का भी उल्लेख है - **ंघरिस समुट्ठिए''** इसके बाद **''जे यावण्णे तहप्पगारा''** पाठ वैसी ही अनेक प्रकार की अग्नियों का होना बतलाया है।

बिजली संघर्ष से उत्पन्न होती है। उपरोक्त आगमपाठ से का समावेश **''संघरिस समुट्ठिए''** में होता है।

२. उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३६ में बादर अग्निकाय के भेद में **वज्जू''** शब्द से बिजली को तेउकाय में बतलाया गया है।

३. 'अभिधान राजेन्द्र' कोष में 'तेउकाय' शब्द की व्याख्या पिण्डनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति, आवश्यक मलयगिरि, कल्प-ोधिका, बृहत्कल्पवृत्ति के उद्धरण दिये है, जिसमें अग्निकाय । प्रकार की बतलाई है - १. सचित्त २. मिश्र और ३. अचित्त।

सचित्त दो प्रकार की - १. निश्चय और २. व्यवहार।

निश्चय से सचित्त - ईंट की भट्टी, कुंभार की भट्टी इत्यादि ियों के मध्य की अग्नि और बिजली की अग्नि-निश्चय ित्त है।

व्यवहार सचित्त - अंगारे (ज्वाला-रहित अग्नि) आदि।

मिश्र तेजस्काय में - अग्नि द्वारा पके हुए भोजन, तरकारियाँ,

ध्ययन में, तेजस्काय की यतना के अधिकार में पृ. १६१ पर
खा है कि -

"अग्नि के लक्षण-प्रकाशकत्व, उष्णत्व वर्णन किये हैं।
ावटी विद्युत् में प्रकाशकत्व गुण दृष्टिगोचर होता है। उष्णत्व
ा प्रतीत नहीं होता, इसीलिए विद्युत् की अग्नि अचित्त प्रतीत
ती है।"

पूज्यश्री ने उपरोक्त उल्लेख किस अनुभव के आधार से
या है-यह समझ में नहीं आया।

पूज्यश्री ने उसी जगह साधु की तेजोलेश्या को "अचित्त
ग्न-तेजस्काय" लिखा है, किन्तु यह बात भी भगवती सूत्र के
र बताये हुए पाँचवें प्रमाण से विपरीत है, क्योंकि भगवती सूत्र
उसे अचित्त अग्नि नहीं, किन्तु 'अचित्त प्रकाशक तापक पुद्गल'
खा है-अचित्त तेजस्काय नहीं।

८. पृथ्वी, अप, वायु और वनस्पति में अपनी-अपनी काय
अपने ही भिन्न-भिन्न भेदों में भिन्न-भिन्न गुण स्वभाव और
ण है, उसी प्रकार अग्नि में भी स्वभाव में भिन्नता हो सकती
किन्तु बिजली अचित्त नहीं हो सकती।

९. जब शास्त्रों में हाथ से, पत्ते के टुकड़े से, पंखे से और
ा-पात्रादि से हवा की उदीरणा करने का निषेध है, हवा और
न के आरम्भ को बहुत सावद्य, दुर्गति का कारण तथा इनका
म्भ करने से निर्ग्रंथता से भ्रष्ट होना बताया है, तब तेउ, वायु
प्रबल आरम्भ यन्त्र (जो प्रत्यक्ष में पशु, पक्षी आदि अनेक
ो के घातक हैं) का उपयोग कैसे हो सकता है ?

शास्त्रो में, तेजस्काय के वर्णन में स्थान-स्थान पर बिजली

का उल्लेख है। संघर्ष से उत्पन्न अग्नि बादर तेजस्काय मानी है। केवल सचित्त अग्निकाय के मृत कलेवर को अचित्त अग्नि मानने का स्पष्ट उल्लेख है तथा अग्निकाय और बिजली समान गुण, लक्षण व स्वभाव को देखते हुए बिजली सा तेजस्काय ही है।

४१२ प्रश्न - निशीथ सूत्र के ११ वें उद्देशे में आया हु मूलपाठ है कि -

'जे भिक्खू असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं अनागाढे परिवासेइ, परिवासेंतं वा साइज्जइ'।

उपरोक्त पाठ में जो आहार-पानी रात्रि में रखने का नि किया गया है, वह खाने-पीने के लिए रखने के अभिप्राय से क्योंकि इसके बाद के सूत्र में ही 'आहारेइ' शब्द है। इस पाठ कोई शौच के निमित्त पानी रखने का अर्थ निकालते हैं, तो र को पानी रखने के निषेध के लिए शास्त्रीय-प्रमाण क्या है ?

उत्तर - १. निशीथ सूत्र के ११ वें उद्देशे में "आगा शब्द का अर्थ-आँधी, मेह आदि 'प्राकृतिक विवशता' संगत हो है, शारीरिक विवशता नहीं। यदि शारीरिक विवशता हो, तो ि पाठ के अनुसार अशन, पान, खादिम और स्वादिम-ये चारों प्रकार के पदार्थ रखने व काम में लेने की छूट हो जायगी, जि पानी रखना सिद्ध करने वाले भी मानने को तैयार नहीं हो इसके सिवाय जिस कारण से रखना आवश्यक समझा जाता है वह 'गाढ़ कारण' नहीं, किन्तु नित्य नैमित्तिक कार्य है-रोज रखते हैं।

२. अ - निशीथसूत्र के १२ वें उद्देशे में चारों प्रकार

ाहार प्रथम प्रहर का चतुर्थ प्रहर में रखे और दो कोस के परान्त ले जावे, तो उसका प्रायश्चित्त लिखा है।

आ - बृहत्कल्प सूत्र के चौथे उद्देशे में लिखा है कि पहले हर का आहारादि चौथे प्रहर में रखे नहीं, यदि रह जावे, तो खुद गे नहीं और दूसरे को भी देवे नहीं, किंतु एकान्त मे परठ दे। के विपरीत आचरण करने पर प्रायश्चित्त लिखा है।

उपरोक्त प्रमाणों को देखते हुए रात्रि में पानी रखना, खुला से रह सकता है ?

इ - श्री बृहत्कल्प सूत्र के पाँचवें उद्देशे में बीमार साधु-ध्वी को अपवाद स्वरूप पहले प्रहर का लाया हुआ चौथे प्रहर लगाने का उल्लेख तो है, किन्तु रात्रि में पानी रखने की छूट वाद स्वरूप भी नहीं है।

३. निशीथ सूत्र के १२ वें उद्देशे में व्रणादि (घाव आदि) गोबर और अन्य आलेपन, रात में लेकर रात में और दिन मे कर रात में करने आदि मे प्रायश्चित्त लिखा है। यह प्रमाण भी ध करता है।

४. उत्तराध्ययन सूत्र अ. ६ गा. १६ मे लेप-मात्र भी (पात्र लेप हो-पात्र गीला हो उतनी) सन्निधि रखने (संचय करके ने) का निषेध है और लिखा है कि जिस प्रकार पक्षी अपनी ें लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार साधु भी किसी सन्निधि के ा केवल पात्रादि लेकर विचरे।

५. वृहत्कल्प सूत्र के दूसरे उद्देशे में लिखा है कि-गर्म पानी घड़े भी जिस मकान में पड़े हों, वहाँ नहीं ठहरना चाहिए।

६. आचारांग सूत्र के शय्या नाम के ११ वे अध्ययन के

११. श्वे मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के मुनियों का सम्मेलन अभी ोडे वर्ष पूर्व अहमदाबाद में हुआ था, उसकी रिपोर्ट "राजनगर ाधु सम्मेलन" के नाम से छपी है। उसके १६६ वें पृष्ठ मे २२ ं दिन की कार्यवाही के प्रश्नोत्तर में लिखा है कि'-

"माणेकमुनिजी-रातना पाणी राखवानी मनाई छे, तेने ादले बधा केम राखिए छिए ?"

-"देवविजयजी-पाणी राखवुं ए काँइ मोटी बाबत छे ? ते ावाय मोटी-मोटी बाबतों मां घणाज परिवर्तन थई गया छे माटे नी वात करोने ?"

इस प्रकार रात्रि को पानी नहीं रखने की श्रद्धा-पञ्चांगी को माण मानने वाले भी रखते हैं।

इन सारे प्रायश्चित्त वर्णनों, निषेध आज्ञाओं एवं साधु को **मोकसमायारे**" का विशेषण देने से तो पानी रखने की पूर्ण एवं ठोर निषेध आज्ञा है, ऐसा स्पष्ट है।

४१३ प्रश्न - पर्याप्त बादर वायुकाय, ग्रैवेयक, अनुत्तरविमान ौर सिद्धशिला तक है या नहीं ? प्रज्ञापना सूत्र के 'स्थान पद' मे कप्प' शब्द से बादर वायुकाय का अस्तित्व बारह देवलोक तक ं मानना या उससे आगे भी ?

उत्तर - पर्याप्त बादर वायुकाय सिद्धों तक है। स्थान पद मे ाये हुए '**कल्प**' शब्द से तो बारह देवलोक ही मानना चाहिए, ंतु उससे आगे के शब्द '**विमाणेसु**' शब्द से ग्रैवेयक के प्रकीर्णक ौर '**विमाणावलियासु**' शब्द से ग्रैवेयक व अनुत्तर के ावलिकाबद्ध विमान समझना चाहिए। इन शब्दों की टीका, इसी द के पृथ्वीकाय के वर्णन में की गई है, वह इसी प्रकार है।



विमान तो पृथ्वीकाय के ही हैं। इसी प्रकार वायुकाय के अधिका में भी समझना चाहिए। आगे चल कर 'लोगागासच्छिद्देसु' शव भी स्पष्ट रूप से बता रहा है कि लोक में जहाँ पोलार (खाल जगह) हो, वहां बादर-वायुकाय का अस्तित्व समझ लेना चाहिए इससे वाद के शब्द लोक के कोनों में भी वायु होना लिखा है। इ सव बातों पर विचार करते वादर-वायुकाय सिद्धों-लोकाग्र त है, ऐसा सिद्ध होता है।

४१४ प्रश्न - नमस्कार मन्त्र के पाँचवें पद में 'लोए' शब आया है, किन्तु शेष चार पदों के साथ नहीं है, इसका क्य कारण है ?

उत्तर - 'लोए' शब्द से मनुष्य-लोक, ऊँचा-लोक, नीच लोक और तिर्छालोक-ये तीनों लोक और सम्पूर्ण लोक समझन । इनका भिन्न-भिन्न अर्थ इस प्रकार है।

१. केवल किसी एक गच्छ के, या भरतादि किसी एक क्षे के अथवा सुषमादि अमुक काल के ही साधु नहीं लेकर सम्पू मनुष्य लोक के और सब काल के साधु समझना चाहिए।

२. मेरु पर्वत आदि के ऊपर रहे हुए, सलिलावती विजयादि में (नीचे रहे हुए) और जम्बूद्वीप आदि तिर्छे रहे हुए, इस प्रका तीनों लोक के साधु।

३. केवली-समुद्घात के चौथे समय सम्पूर्ण लोक मे उनके प्रदेश हो जाते हैं। इस अपेक्षा से सम्पूर्ण लोक मे भी साधु होते हैं।

इत्यादि रूप से ''लोए'' शब्द से साधु-पद का अर्थ समझन चाहिए। शेष पदों के लिए उपरोक्त सम्पूर्ण अर्थ लागू नहीं हो सकता। आंशिक रूप में आ सकता है।

"सव्व" शब्द से सामायिक आदि सभी चारित्र वाले, प्रमत्तादि, पुलाकादि, जिनकल्पिक, प्रतिमाकल्पिक, स्थिवरकल्पिक, स्थितकल्पिक, अस्थितकल्पिक, कल्पातीत, स्वयंबुद्धादि तीन, स्त्री आदि तीनों लिंग वाले तथा स्वलिंगादि तीनों लिंग वाले, भरतादि क्षेत्र के, सुषमादि काल वाले, इत्यादि अरिहंतों के सभी साधुओं का समावेश होता है। तथा सभी प्रकार के शुभयोग को साधने वाले, अरिहंतों की आज्ञा में वर्त्तने वाले, दुर्नय को छोड़ने वाले, अनुकूल कार्यों में निपुण, इत्यादि विशेषण साधुपद में लागू होते हैं। शेष चार पदों में पूर्णरूप से लागू नहीं होते। तथा पाँचवें पद में लगाया हुआ 'सव्व' शब्द साधारण रूप से सभी पदों में समझना चाहिए और विशेष रूप से पाँचवें पद के लिए समझना चाहिए।

४१५ प्रश्न - दीक्षा लेने के बाद तीर्थकरों की छद्मस्थ अवस्था उत्कृष्ट कितने काल की है ?

उत्तर - संसार-त्याग के बाद तीर्थकरों का उत्कृष्ट छद्मस्थकाल एक हजार वर्ष का है।

४१६ प्रश्न - साधु-वन्दना की ९ वीं ढाल में भगवान् महावीर स्वामी के समीप आठ राजाओं ने दीक्षा ली, उनका नाम आया है। उनमें 'दशारणभद्र' राजा का नाम राजाओं की श्रेणी में क्यों नहीं आया ?

उत्तर - भगवान् महावीर के पास दीक्षित हुए आठ राजाओं के नाम ठाणांग सूत्र के आठवें ठाणे में है। ये ही नाम १३ ढालो मे से ९ वी ढाल में है। सूत्रकार ने आठ राजाओं के नामों मे 'दशारणभद्र' का नाम नहीं दिया, कदाचित् दशारणभद्र का कोई

दूसरा नाम भी हो और उस दूसरे नाम से उल्लेख हुआ हो, या उन्होंने करकंडु आदि की तरह भगवान् के पास दीक्षा नहीं लेकर स्वतन्त्र ली हो, जिससे उनका नाम आठ राजाओं में नहीं आ सका। नाम नहीं आने के इन दो कारणों में से कोई कारण होना चाहिए। दशारणभद्र ने दीक्षा ली इसका वर्णन तो सूत्र के मूल पाठ मे हैं, किन्तु भगवान् के पास ही ली-ऐसा उल्लेख मूलसूत्र मे नहीं है। स्थानांग सूत्र के दसवें ठाणे में दूसरी अनुत्तरोववाई के १० अध्ययन बताये हैं, जिसमें 'दशारणभद्र' नाम भी है, किन्तु वे अनुत्तर-विमान में गये हैं। इसलिए वे दूसरे होना सम्भव हैं। उनका नाम तेरहवीं ढाल में हैं।

४१७ प्रश्न - ज्ञान के अतिचारों में **'वच्चामेलियं'** और **'अच्चक्खरं'** में क्या अंतर है ?

उत्तर - **'वच्चामेलियं'** = भिन्न-भिन्न स्थलों पर रहे हुए को एक साथ रख कर पढना अथवा पाठ या सूत्र का उच्चारण करते समय अन्यत्र रहे हुए पाठ या सूत्र को भी उसके साथ रख कर उच्चारण करना।

'अच्चक्खरं' = अधिक अक्षर युक्त उच्चारण करना।

४१८ प्रश्न - रात्रि-भोजन त्याग, श्रावक के १२ व्रतों मे से किस व्रत में है ?

उत्तर - श्रावक का रात्रि-भोजन त्याग, सातवें उपभोग-परिभोग व्रत की काल आश्रित मर्यादा में है।

४१९ प्रश्न - बावीस प्रकार के अभक्ष्य की मान्यता के विषय में आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - वैसे तो पुद्गल मात्र अभक्ष्य है। सचित्त की दृष्टि

से सभी प्रकार की सचित्त वस्तुएँ अभक्ष्य है। बावीस प्रकार के अभक्ष्य में मांस और मदिरा भी है और वह तो गीला और सूखा सभी पूर्णरूप से अभक्ष्य है। इनमें अनन्तकाय भी है। अनन्तकाय निर्जीव होने पर हरी व सूखी साधु के काम में भी आ सकती है। अनन्तकाय नहीं लेने की मान्यता वाले भी सूंठ, हल्दी आदि काम में लेते हैं। दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन में कहा है कि - मूला, अदरक, कन्द-मूल सजीव लेना अनाचीर्ण है, परन्तु राँधने आदि से निर्जीव होने पर अनाचीर्ण नहीं है।

बावीस अभक्ष्य मे मक्खन भी है। खान, पान, मालिश आदि की चीजे, तीन पहर तक तो मुनि को कल्पती ही है। कारणवश चौथे पहर में भी मक्खन आदि को काम में लेना बृहत्कल्प सूत्र के पॉचवें उद्देशे से प्रमाणित है। इसमें अन्तर्मुहूर्त्त बाद अनेक जीव उत्पन्न होना बता कर अभक्ष्य कहते हैं, किन्तु ऐसा होता, तो मालिश आदि की अनुमति भगवान् कैसे देते ?

बात्रीस अभक्ष्य में "अचार" (अथाना) भी है, किंतु व्यवहार सूत्र के ९ वें उद्देशे को देखने पर अथाना आदि अचित्त अंबफल आदि लेना सिद्ध होता है।

विदल (द्विदल) भी अभक्ष्य रूप मे माना गया है, किन्तु आनन्दजी आदि श्रावकों ने खाने के लिये 'घोलवडे' रखे हैं।

रात्रि-भोजन भी अभक्ष्य में माना है, किन्तु रात्रि-भोजन त्याग के बिना श्रावक हो ही नहीं सकता-ऐसो मान्यता नहीं है। हाँ, पॉचवी प्रतिमा का आराधन करते समय तो अवश्य त्यागना पड़ता है। अफीम भी अभक्ष्य माना है, किन्तु कारणवश साधु भी ले सकते हैं। इस प्रकार शास्त्र-प्रमाणों पर विचार करने से

से सभी प्रकार की सचित वस्तुएँ अभक्ष्य है। बावीस प्रकार के अभक्ष्य मे मांस और मदिरा भी है और वह तो गीला और सूखा सभी पूर्णरूप से अभक्ष्य है। इनमे अनन्तकाय भी है। अनन्तकाय निर्जीव होने पर हरी व सूखी साधु के काम में भी आ सकती है। अनन्तकाय नहीं लेने की मान्यता वाले भी सूंठ, हल्दी आदि काम में लेते हैं। दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन मे कहा है कि - मूला, अदरक, कन्द-मूल सजीव लेना अनाचीर्ण है, परन्तु राँधने आदि से निर्जीव होने पर अनाचीर्ण नहीं है।

बावीस अभक्ष्य में मक्खन भी है। खान, पान, मालिश आदि की चीजें, तीन पहर तक तो मुनि को कल्पती ही है। कारणवश चौथे पहर में भी मक्खन आदि को काम मे लेना बृहत्कल्प सूत्र के पॉचवें उद्देशे से प्रमाणित है। इसमे अन्तर्मुहूर्त्त बाद अनेक जीव उत्पन्न होना बता कर अभक्ष्य कहते हैं, किन्तु ऐसा होता, तो मालिश आदि की अनुमति भगवान् कैसे देते ?

बात्रीस अभक्ष्य में "अचार" (अथाना) भी है, किंतु व्यवहार सूत्र के ९ वे उद्देशे को देखने पर अथाना आदि अचित्त अंबफल आदि लेना सिद्ध होता है।

विदल (द्विदल) भी अभक्ष्य रूप में माना गया है, किन्तु आनन्दजी आदि श्रावकों ने खाने के लिये 'घोलबडे' रखे है।

रात्रि-भोजन भी अभक्ष्य में माना है, किन्तु रात्रि-भोजन त्याग के बिना श्रावक हो ही नही सकता-ऐसो मान्यता नहीं है। हॉ, पॉचवी प्रतिमा का आराधन करते समय तो अवश्य त्यागना पडता है। अफीम भी अभक्ष्य माना है, किन्तु कारणवश साधु भी ले सकते हैं। इस प्रकार शास्त्र-प्रमाणों पर विचार करने से

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज द्वारा माने गये सभी अभक्ष्यों की मान्यता आगम-सम्मत नहीं है।

४२० प्रश्न - तीर्थकरों का जन्मोत्सव, मेरुपर्वत के कि वन मे किया जाता है ?

उत्तर - मेरु पर्वत के ऊपर जो 'चौथा पंडकवन' है, उ वन में चूलिका से चारों दिशा में महोत्सव करने की चार शिला हैं। उसमें से दक्षिण की शिला पर भरत क्षेत्र के तीर्थकरों का औ उत्तर की शिला पर एरवर्त क्षेत्र के, पूर्व की शिला पर पू महाविदेह तथा पश्चिम की शिला पर पश्चिम महाविदेह के तीर्थकरों का जन्म-महोत्सव किया जाता है।

४२१ प्रश्न - पूर्व-काल में मुनिराज जहाज में बैठ कर नदी पार करते थे, तो अब सहज ही चलने वाली रेलगाड़ी, बस सर्विस (मोटर,कार) आदि में बैठे, तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर - शास्त्रोक्त कारण उपस्थित होने पर योग्य नाव मिले, तो रीति के अनुसार मुनि, नाव में बैठ सकते हैं, जहाज में नहीं बैठ सकते। यदि पृथ्वी पर हो कर जाने का मार्ग हो, तो मुनि को नाव में नहीं बैठना चाहिए। एक या आधा योजन पृथ्वी पर चलने जितना समय नाव से जाने में लगे, तो भी साधु को नाव में बैठना चाहिए। यदि इतनी देर से भी कम देर लगे और पानी को पार करना आवश्यक हो, तो पूर्व-कथित थोड़ी देर के लिए विधि के अनुसार वैसी नाव में बैठ सकते हैं।

जहां रेल चलती है, वहां तो स्थलमार्ग है ही और पु आदि भी होते हैं। इसलिए वहाँ तो पानी को नाव से पार करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए मुनि को रेल में बैठने

प्रश्न तो उत्पन्न ही नहीं होना चाहिए। नाव में भी अधिक समय तक नही बैठते, थोड़े समय के लिए भी विवशतावश बैठते हैं। फिर रेल में बैठने का तो कोई कारण ही नहीं है *। अतः साधु को रेल, मोटर, हवाई जहाज आदि में नहीं बैठना चाहिये क्योंकि इन वाहनो मे बैठना आगम विरुद्ध है।

४२२ प्रश्न - महाविदेह क्षेत्र के मनुष्यों की अवगाहना ५०० धनुष और आयुष्य करोड़ पूर्व का ही होगा। अन्य दस क्षेत्रों की तरह वहाँ न्यूनाधिकता नहीं होती होगी ?

उत्तर - महाविदेह क्षेत्र के मनुष्यों की अवगाहना सदाकाल जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर उत्कृष्ट ५०० धनुष तक की और स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त से लेकर उत्कृष्ट करोड़ पूर्व तक की होती है। वहाँ भी कई जीव तो गर्भ में ही मर जाते हैं, कई जन्म समय और कई एक-दो दिन के होकर और कई करोड पूर्व की आयु वाले भी होते हैं। अवगाहना और स्थिति वहां भी समान नहीं है। महाविदेह में ऐसी अवस्था सदा रहती है। वहाँ अन्य दस क्षेत्रों की तरह फेरफार नहीं होता है। क्योंकि वहां सदा नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी रूप अवस्थित काल रहता है।

४२३ प्रश्न - 'भाद्रपद शु० ५ को सम्वत्सरी करना' इस प्रकार का उल्लेख किस शास्त्र मे है ?

उत्तर - समवायांग सूत्र के सित्तरवे समवाय में तथा उसकी टीका, निशीथचूर्णि, कल्पसूत्र टीका आदि में स्पष्ट उल्लेख है,

---

* उपदेशदान और प्रचार आदि कारण वास्तविक कारण नहीं है। ये कारण उदयभाव से प्रेरित व्यक्ति-उपस्थित करते हैं। वे तर्क के आधार से संयमी-जीवन की मर्यादा को तोडने की मनोवृत्ति वाले हैं -डोशी।

कि संवत्सरी भादवा सुदी पंचमी को होती है और महाविदेह
भी सम्वत्सरी इसी प्रकार की जाती है।

४२४ प्रश्न - गीला आटा सुबह से शाम तक रहे, तो उ
जीव उत्पन्न होते हैं या नहीं ? यदि होते है तो किस जाति के

उत्तर - भिंजोया (ओसणा) हुआ आटा घी लगा
हिफाजत से रखा हो और ऋतु अनुकूल हो, तो सुबह से शाम त
में जीव उत्पन्न होने की संभावना नहीं है। यदि ऋतु अनुकूल न
हो और आटा खट्टा पड़ जाय, तो 'रसइया-रसज' (बेइन्द्रि
जीव उत्पन्न होना संभव है।

४२५ प्रश्न - अभी पाँचवें आवश्यक में लोगस्स का ध्
किया जाता है, तो आगे २४ तीर्थंकर हुए, वे पाँचवें आवश्यक
किसका ध्यान करते थे ? यदि वे अन्य पाठ का ध्यान मे उपय
करते थे, तो वही पाठ क्यों नहीं रक्खा ? उसमें परिवर्तन व
किया गया ?

उत्तर - चार ज्ञान युक्त छद्मस्थ तीर्थंकरों को इस प्रक
प्रतिक्रमण करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इसलि
कोई भी तीर्थंकर वर्त्तमान की तरह प्रतिक्रमण नहीं करते थे, पर
तीर्थंकरों के साधु-साध्वी प्रतिक्रमण करते है। भरत और ऐर
क्षेत्र के २४ में से जितने तीर्थंकर हुए हों, उनके गणधर उ
तीर्थंकरो का लोगस्स बना देते हैं। चौवीसवें तीर्थंकर के तीर्थ
२४ तीर्थंकर का उल्लेख हो जाता है। महाविदेह क्षेत्र में प्रत्ये
विजय मे जिन तीर्थंकर भगवान् का तीर्थ चालू हो, उन ए
तीर्थंकर का ही उल्लेख होता है। वहां के साधु उन्हीं का कायोत्
करते हें। लोगस्स के पाठ में तीर्थंकर के नामों का अन्तर रहता है

शेष आगे पीछे का पाठ यथावत् रहता है। पांचवें आवश्यक में लोगस्स का ही कायोत्सर्ग करना आगम-सम्मत है।

४२६ प्रश्न - फूलों और मोतियों की माला में से किस माला के सेवन से अधिक पाप लगता है ?

उत्तर - शास्त्रकार न तो फूलमाला पहनने की आज्ञा देते हैं, न मुक्तामाला की ही। न्यूनाधिक पाप का उत्तर इस प्रकार है।

पन्नवणा आदि सूत्रों में फूलों में संख्यात, असंख्यात और अनन्त जीव भी बताये हैं। मोतियों में अधिक जीव नहीं बताये हैं। इससे स्पष्ट है कि फूलमाला में अधिक पाप है।

निशीथ सूत्र के १० वें उद्देशे में लिखा है कि यदि साधु अनन्तकाय संयुक्त आहार करे,-करावे या अनुमोदे, तो गुरुचौमासी (१२० उपवास) प्रायश्चित्त आता है और निशीथ के बारहवें उद्देशे में लिखा है कि प्रत्येककाय संयुक्त भोजन करे, करावे अनुमोदे, तो लघुचौमासी (१०५ उपवास) का प्रायश्चित्त आता है। इससे सिद्ध है कि अनन्तकायिक का पाप अधिक है। इसीसे प्रायश्चित्त अधिक बताया गया है। फूल अनन्तकाय वाले भी होते हैं। अतः फूलमाला में पाप अधिक है।

एक दिन की पहनी हुई फूलमाला प्रायः दूसरे दिन काम में नहीं लेकर नित्य-नई काम में ली जाती है। इस प्रकार करने से जीवनपर्यन्त कितनी फूलमालाएँ और कितने फूलों की - अनन्तकायिकों की विराधना होती है ? दूसरी ओर मोतियों की एक ही माला पीढ़ियों तक काम में आती रहती है। इस प्रकार मोतियों की माला की अपेक्षा फूलों की माला में पाप अधिक लगता है।

लगता है। हजारों लाखों रुपये के मूल्य की मोतियों की माला पहनने वाला भी फूलमाला (फूल की गन्धादि से मोहित होकर) पहनता है। यदि पहनने वाला निर्मोही होगा, तो पुष्पमाला में भी उसका मोह नही रहेगा और काम में नहीं लेगा। अतएव उपरोक्त दृष्टि से पुष्पमाला में पाप अधिक है।

४२७ प्रश्न - साधु, स्थानक बनाने का उपदेश दें, यह आगमिक-मर्यादा के अनुकूल है क्या ?

उत्तर - साधु, हिंसादि पापों के तीन-करण, तीन-योग के पूर्णरूप से त्यागी होते है। जो हिंसादि पापों के सर्वथा त्यागी होते उन्ही को निर्ग्रथ-प्रवचन में साधु माना है। आचारांग, दशवैकालिक, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में वर्णित महाव्रत के स्वरूप में ऐसा ही लिखा है।

धर्मस्थान बनाने में भी पृथ्वीकाय आदि छहकाय के जीवों की विराधना होती ही है। इस विराधना का अनुमोदन करना भी साधु-धर्म के विरुद्ध है, तो फिर उपदेश दे कर और प्रेरणा कर के स्थानक बनवाने में साधुता का खण्डित होना तो अनिवार्य ही है अर्थात् साधुता नहीं रहती है।

दशवैकालिक सूत्र में लिखा है कि - पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना का अनुमोदन करने वाला, साधुता से भ्रष्ट हो जाता है - **"निग्गंथत्ताओ भस्सइ"** इस वाक्य से सिद्ध है। सतरह प्रकार के सयम का वर्णन समवायांगादि में हैं, जो स्थानक बनाने का उपदेश करते हैं, उनसे पृथ्वीकायादि संयम की पालना व रक्षा कैसे होगी ?

दशवैकालिक सूत्र अ. ७ गा. २६ से २९ मे वृक्ष आदि को

देख कर उनके खम्भे, कपाट, उपाश्रय की वस्तुएँ अथवा अ
अनेक वस्तुएँ 'बनाने योग्य है'-ऐसा कहना भी स्पष्टतः नि
किया है। "**भुओवघाइणिं भासं, नेवं भासिज्ज पण्णवं**" तथा
अध्ययन की ५४ वीं गाथा से भी सावद्य-भाषा की अनुमो
करना भी पूर्णतया मना है, तो फिर बनवाने के उपदेश की तो
ही कहाँ रही ?

गृहस्थ के खुद के रहने के लिए बने हुए मकान को
गृहस्थ, साधुओं के लिए दे दे और अपने लिए दूसरा बनवाए
ऐसा मकान भी साधुओं के लिए सेवन करने के योग्य नहीं
तब बनाने के लिए उपदेश देना तो रहा ही कहाँ ?

(आचारांग शय्या अ. उ.

स्थान के विषय में खास तौर पर उत्तराध्ययन सूत्र अ.
गा. ८ में स्पष्ट लिखा है कि --

"**न सयं गिहाइं कुव्विज्जा, नेव अण्णेहिं कारए।**
गिहकम्मसमारंभे, भूयाणं दिस्सए वहो॥ ८ ॥"

अर्थ - साधु स्वयं घर बनावे नहीं, दूसरों से बनवावे
और बनाने वालों का अनुमोदन भी न करे क्योंकि घर बना
छहकाय जीवों की हिंसा होती है।

भगवान् ने अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म फरमाय
और इसी की रक्षा के लिए ईर्यासमिति, कठोर सावद्य आ
बोल कर भाषासमिति को सुरक्षित रखना, अशुद्ध आहारादि न
हुए एषणा समिति का पालन करना, आदि समिति-गुप्ति
पालन बतलाया है। इसका विवेचन आचारांगादि सूत्रों में अ
स्थानों पर किया है। प्रभु आज्ञा के अनुयायी साधु, स्थान

ा सावद्य उपदेश कदापि नहीं दे सकते। यदि कोई वैसा उपदेश वे, तो वह निर्ग्रंथ-मार्ग से विरुद्ध है।

४२८ प्रश्न - साधु-साध्वी, विधवा-विवाह का उपदेश दें, ो यह शास्त्रानुकूल है क्या ?

उत्तर - मैथुन का तीन करण, तीन योग से त्याग करना ौथा महाव्रत है। मैथुन, अठारह पापों में से चौथा पाप है। किसी हाव्रत में, किसी भी प्रकार के पाप का, किसी भी प्रकार से ागार नहीं रहता। विधवा-विवाह से मैथुन-प्रवृत्ति होती है, योंकि इसी की अनुकूलता के लिए विवाह किया जाता है। तएव विधवा-विवाह का उपदेश देना, मैथुन प्रवृत्ति = पाप वृत्ति का प्रचार करना है। निर्ग्रंथ-धर्मी साधु तो प्रथम (कुमार-मारिका के) विवाह का भी उपदेश नहीं दे सकते, तो पुनर्विवाह ा उपदेश तो देवे ही कैसे ?

व्रतधारी श्रावक के लिए भी कन्दर्प-कथा तथा दूसरों के वाह-सम्बन्ध जुड़ाना भगवान् ने दोष रूप बतलाया है। एक ावक के देश-व्रत पालन में भी इतनी सावधानी बतलाई है, तो म्पूर्ण-धर्मी साधु के लिए तो ऐसे कार्य को, मन से भी अच्छा ानने का किञ्चित् भी अवकाश नहीं रहता। जैसे -

"कंदर्पःकामस्तद्धेतुर्विशिष्टो वाक्प्रयोगोऽपि कंदर्प च्यते" इह चेयं समाचारी श्रावकेण न तादृशं वक्तव्यं येन वस्य परस्य वा मोहोद्रेको भवति अट्टाट्टहासोऽपि न कल्पते र्तुं यदि नाम हसितव्यं तदैतदेवेति"।

उपरोक्त शब्दों में श्रावक के चौथे व्रत के पालन में कितनी ावधानी रखने की प्रेरणा की गई है। जब श्रावक भी शीलव्रत के

नियमों में इतना बंधा हुआ है, तो पूर्ण त्यागी मुनिराज तो ए
उपदेश दे ही कैसे सकते हैं ?

'पर-विवाह' की व्याख्या इस प्रकार है -

"परेषां स्वापत्यव्यतिरिक्तानां जनानां विवाहकरण कन्याफललिप्सया स्नेहसम्बन्धाऽऽदिना वा परिणयनविधा परविवाहकरणम्।"

इस व्याख्या में '**परिणयन विधानं व कन्याफल लिप्सय** ये शब्द श्रावक के शीलव्रत के लिए भी दोष ही प्रकट करते है तो फिर पूर्ण त्यागी, पुनर्विवाह आदि का विधान कैसे कर सक हैं ? पुनर्विवाह भी तो 'परिणयन विधान' और 'कन्याफल लिप्स की भूमिका ही तो है।

प्रश्नव्याकरण में भगवान् ने मैथुन का निषेध करते हु उसकी अधमता का कितना मार्मिक उपदेश दिया है। नीचे लि हुए भगवान् के वचन, पुनर्विवाह के प्रतिपादकों और समर्थको क अवश्य कुछ पाठ पढ़ावेंगे-ऐसी आशा है।

"तवसंजमबंभचेरविग्घं भेयाययणं बहुपमायमू कायरकापुरिससेवियं सुयणजणवज्जणिज्जं।"

दशवैकालिक सूत्र अ. ६ की निम्न गाथाएँ भी अवलोकन है।

"अबंभचरियं घोरं, पमायं दुरहिट्ठियं।
णायरंति मुणिलोए, भेयाययणवज्जिणो॥ १६॥
मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुणसंसग्गं, णिग्गंथा वज्जयंति णं॥ १७॥

इत्यादि शास्त्रीय स्थलों से ब्रह्मचर्य के तीन करण प्र

...न, वचन और काया से पूर्णरूप से पालन का ही भगवान् ने ...पदेश दिया है। ऐसी दशा में किस आगमिक आधार के बल पर ...नि, पुनर्विवाह का उपदेश देने में समर्थ हो सकते हैं ? क्या ...नर्विवाह का उपदेश अब्रह्मचर्य का पोषक नहीं है ? पुनिर्विवाह, ...अब्रह्मचर्य (मैथुन क्रिया) का प्रेरक ही है। कोई महाव्रती साधु ...सका प्रेरक बने-यह संगत ही नहीं।

कोई-कोई इन तीन स्थलों का आधार लेकर इस प्रवृत्ति को ...ास्त्रीय बतलाने की चेष्टा करते हैं -

१. भगवान् ऋषभदेव के चरित्र का २. सुकुमालिका का ...ौर ३ मंडितपुत्र मौर्यपुत्र के कथानक का। इनका उत्तर क्रमशः ...स प्रकार है -

१ भगवान् ऋषभदेव के पुनर्विवाह का कथन असंगत ही ...। क्योकि भगवान् ने पुनर्विवाह नहीं किया। इस विषय पर ...किञ्चित् विचार किया जाता है।

युगलिक वे हैं, जो साथ ही पैदा होते हैं और साथ ही मरते ...। उन दो में से किसी एक का वियोग नहीं होता। दोनो में से ...ोई एक, दूसरे की मृत्यु का वियोग नही देखते। उनकी उम्र ...रोड़ पूर्व से अधिक होती है। माता-पिता की आयु छह महीने ...ष रहने पर उनका जन्म होता है। इस प्रकार युगलिकों की ...स्थिति होती है।

भगवान् ऋषभदेव का समय भोगभूमि और कर्मभूमि का ...सन्धिकाल था। उस समय कोई युगल भोगभूमि की आयु का और ...कोई कर्मभूमि की आयु का, तथा किसी युगल में से एक तो ...भोगभूमि की आयु का और दूसरा कर्मभूमि की आयु का (जैसे

नाभिराजा और मरुदेवी) होता था। इससे यह स्पष्ट हो जा
कि वह समय पूर्णरूप से युगलिक-धर्म वाला नहीं था।

"त्रिशष्टिशलाका-पुरुषचरित्र" में भगवान् ऋषभदेव
भी वर्णन है। उसमें 'सहजात बालक' शब्द का प्रयोग है।
बालयुगल खंडित हो गया। बालक की मृत्यु पहले हो गई।
वह युगलिया होता, तो उसकी आयु करोड़पूर्व से अधिक हे
केवल साथ में जन्म लेने से ही युगलिया (भोगभूमिज) नह
सकता। एक साथ गर्भ में रहना और जन्म लेना, तो वर्त्तमान
होता है।

युगल बालक-बालिका के माता-पिता उसे छह मास
छोड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, किंतु इनके तो बालक के
जाने पर भी माता-पिता मौजूद थे, जिन्होंने उस बालिका
पालन पोषण किया। इससे सिद्ध होता है कि वह बालक, युग
स्वभाव का नहीं थी और ग्रंथकार ने "सहवासी बालक"
का अनेक बार प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि वे दा
अवस्था को प्राप्त नहीं हुए थे। वे भाई-बहिन थे।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में युगलिकों के अधिकार में माता-
बहन, भार्या आदि के विषय में भगवान् ने फरमाया है
"भगिनी-सहजाता, भार्या-भोग्या" इन शब्दों से स्पष्ट है
भोग के पूर्व की अवस्था 'बहिन' की है और भोग प्रारं
'भार्यावस्था' है। इस बालिका का सहजात भाई, बाल्य का
ही काल कर गया था। इसलिए वह उसकी पत्नी रूप में नहीं
थी। यह बात शास्त्र से ही स्पष्ट है।

जब वह कन्या बड़ी हो गई, तब प्रथम बार उसका पाणि

श्री ऋषभदेव के साथ हुआ। इस विवाह के पूर्व वह कुमारिका ही थी। किसी की पत्नी या विधवा नहीं थी। इसलिये श्री ऋषभदेव के साथ उसका विवाह – 'पुनर्विवाह' नहीं कहा जा सकता।

२. सुकुमालिका के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उसके पिता ने गुप्त रूप से एक अत्यन्त दरिद्र व घृणित भिखारी को बिना किसी प्रकार की विवाह विधि के-यों ही सोंप दी, यदि उस समय समाज में पुनर्विवाह प्रचलित होता, तो इतना बड़ा धनिक एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति, बिना विवाह के गुप्तरूप से एक भिखारी को केसे दे देता ? उसे तो दूसरा कोई भी कुलीन व्यक्ति मिल सकता था। इससे स्पष्ट होता है कि पुनर्विवाह हेय समझा जाता था। समाज का कोई भी आदर-पात्र व्यक्ति, इसके लिए तैयार नहीं हो सकता था, तभी भिखारी को देनी पड़ी और भिखारी को देने का कारण भी अपनी पुत्री के प्रति पिता का तीव्र मोह ही था। अन्यथा कोई योग्य कुलीन और शिष्ट पुरुष ऐसा लोक विरुद्ध कार्य नहीं करता है।

३. श्रीमंडितपुत्र ५३ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे और ३० वर्ष दीक्षा पाली। उनकी कुल आयु ८३ वर्ष की थी।

श्री मौर्यपुत्र ६५ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे और ३० वर्ष दीक्षा पाली। उनकी कुल आयु ९५ वर्ष की थी।

भगवान् महावीर के सभी गणधरों का दीक्षा-दिन तो एक ही था, इसमें तो दो मत है ही नहीं। मौर्यपुत्र, दीक्षा के समय ६५ वर्ष के थे और मंडितपुत्र ५३ वर्ष के। मौर्यपुत्र, मंडितपुत्र से वड़े थे। यह बात भी इससे स्पष्ट हो रही है। (आयु का यह अन्तर समवायांग ५३-६५-८३ और ९५ से स्पष्ट है)।

जो यह कहते हैं कि 'मण्डितपुत्र के जन्म के बाद, उनकी माता ने दूसरा विवाह किया और फिर मौर्यपुत्र जन्मे' उनका यह कथन समवायांग सूत्र के मूलपाठ से विरुद्ध है।

मंडितपुत्र और मौर्यपुत्र सहोदर नहीं थे और न उनकी माता ने पुनर्विवाह किया था। दोनों की माता के नाम की समानता होने मात्र से दोनों सहोदर नहीं हो सकते। नाम की समानता तो बहुतों के हो सकती है। आगमिक ठोस प्रमाण के आगे ऐसी बातें प्रचारित करना, जैनधर्म का महत्त्व घटाना है।

उववाई सूत्र के ८ वें बोल में - "**गयपइआओ, मयपइयाओ, बालविहवाओ, छड्डिल्लियाओ, माइरक्खियाओ पियरक्खियाओ, भायरक्खियाओ, कुलघररक्खियाओ, ससुरकुलरक्खियाओ .... अकामबंभचेरवासेणं तामेव पइसेज्जं णाइक्कमइ।**"

अर्थात् - वे महिलाएँ जिनका पति कहीं चला गया हो, परदेश गया हो, मर गया हो, जो बाल-विधवा हो गई हो, जिन्हें पति ने त्याग दिया हो, जो माता-पिता और भ्राता के द्वारा रक्षित हो, जो पीहर या श्वसुर कुल के द्वारा रक्षित हो और श्रृंगारादि से रहित, बिना इच्छा के ब्रह्मचर्य का पालन करती है, किंतु विधवा विवाह नही करती, वे काल करके स्वर्ग में जाती हैं।

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य पालन करने की इच्छा नहीं होते हुए भी पुनर्विवाह न तो कुलीन स्त्रियाँ करती है और न उनके रक्षक ही करते हैं। यदि रिवाज होता, तो "अकाम ब्रह्मचर्य" शब्द का प्रयोग ही नहीं होता ?

शास्त्रों में तो पुनर्विवाह का कहीं उल्लेख नहीं है और न

यह नीति-संगत ही हैं। पाँच महाव्रतधारी साधु तो प्रथम विवाह का भी उपदेश नहीं दे सकते, तो पुनर्विवाह का प्रचलन कैसे करा सकते है ? ऐसा करने वाले जैनधर्म की साधुता को कलंकित करते हैं।

जेन साधु, पुनर्विवाह आदि अब्रह्मचर्य विषयक उपदेश या अभिप्राय देने से बचे रहे, यही भगवान् की आज्ञा है ?

४२९ प्रश्न- पुत्र-पुत्री के जन्म का सूतक लगता है क्या ? कितने दिन तक और सूतक लगने का कारण क्या है ?

उत्तर - प्रसव के बाद प्रायः ७-८ दिन तक अशुचि पदार्थ का बहना जारी रहता हैं। जच्चागृह से संलग्न स्थान मे साधु-साध्वी उतरे हों, तो 'आवश्यक सूत्र' के सिवाय अन्य सूत्रों का वाचन बंद रहता है, किन्तु उस घर का आहार-पानी साधु जीवन के लिए बाधक नहीं होता है।

यदि आहार-पानी के लिए भी सूतक माना जाय, तो दूसरे घरो से लाया हुआ आहार-पानी भी उस स्थान पर आने से सूतक वाला हो जायगा, किंतु ऐसा नहीं माना गया। सूतक मानने वाला पक्ष भी आगम-वांचन ७-८ दिन तक रोकते हैं, परन्तु आहार-पानी करना बन्द नहीं करते। इससे स्पष्ट है कि सूत्र-वांचन और आहार-पानी की समानता नहीं है।

उपरोक्त अवस्था मे साधु-साध्वी, आवश्यकसूत्र का तो उसी मकान में उभयकाल पाठ करते ही हैं, अन्य सूत्रों का वांचन रुकता है। इससे यह भी स्पष्ट होता हैं कि सूत्रों के पटन मे भी समानता नही, तो आहार-पानी की सूत्र-वांचने के साथ समानता कैसे हो सकती हैं ?

जो यह कहते हैं कि 'मण्डितपुत्र के जन्म के वाद, उनकी माता ने दूसरा विवाह किया और फिर मौर्यपुत्र जन्मे' उनका यह कथन समवायांग सूत्र के मूलपाठ से विरुद्ध है।

मंडितपुत्र और मौर्यपुत्र सहोदर नही थे और न उनकी माता ने पुनर्विवाह किया था। दोनों की माता के नाम की समानता होने मात्र से दोनों सहोदर नहीं हो सकते। नाम की समानता तो बहुतो के हो सकती है। आगमिक ठोस प्रमाण के आगे ऐसी वातें प्रचारित करना, जैनधर्म का महत्त्व घटाना है।

उववाई सूत्र के ८ वें बोल में - "**गयपइआओ, मयपइयाओ, बालविहवाओ, छड्डिल्लियाओ, माइरक्खियाओ पियरक्खियाओ, भायरक्खियाओ, कुलघररक्खियाओ, ससुरकुलरक्खियाओ .... अकामबंभचेरवासेणं तामेव पइसेज्जं णाइक्कमइ।**"

अर्थात् - वे महिलाएँ जिनका पति कहीं चला गया हो, परदेश गया हो, मर गया हो, जो बाल-विधवा हो गई हो, जिन्हें पति ने त्याग दिया हो, जो माता-पिता और भ्राता के द्वारा रक्षित हो, जो पीहर या श्वसुर कुल के द्वारा रक्षित हो और श्रृंगारादि से रहित, बिना इच्छा के ब्रह्मचर्य का पालन करती है, किंतु विधवा विवाह नहीं करती, वे काल करके स्वर्ग में जाती हैं।

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य पालन करने की इच्छा नहीं होते हुए भी पुनर्विवाह न तो कुलीन स्त्रियाँ करती है और न उनके रक्षक ही करते हैं। यदि रिवाज होता, तो "अकाम ब्रह्मचर्य" शब्द का प्रयोग ही नहीं होता ?

शास्त्रों में तो पुनर्विवाह का कहीं उल्लेख नहीं है और न

यह नीति-संगत ही है। पाँच महाव्रतधारी साधु तो प्रथम विवाह का भी उपदेश नहीं दे सकते, तो पुनर्विवाह का प्रचलन कैसे करा सकते है ? ऐसा करने वाले जैनधर्म की साधुता को कलंकित करते हैं।

जैन साधु, पुनर्विवाह आदि अब्रह्मचर्य विषयक उपदेश या अभिप्राय देने से बचे रहें, यही भगवान् की आज्ञा है ?

४२१ प्रश्न- पुत्र-पुत्री के जन्म का सूतक लगता है क्या ? कितने दिन तक और सूतक लगने का कारण क्या है ?

उत्तर - प्रसव के वाद प्रायः ७-८ दिन तक अशुचि पदार्थ का वहना जारी रहता है। जच्चागृह से संलग्न स्थान में साधु-साध्वी उतरे हों, तो 'आवश्यक सूत्र' के सिवाय अन्य सूत्रों का वाचन बंद रहता है, किन्तु उस घर का आहार-पानी साधु जीवन के लिए बाधक नहीं होता है।

यदि आहार-पानी के लिए भी सूतक माना जाय, तो दूसरे घरो से लाया हुआ आहार-पानी भी उस स्थान पर आने से सूतक वाला हो जायगा, किंतु ऐसा नहीं माना गया। सूतक मानने वाला पक्ष भी आगम-वांचन ७-८ दिन तक रोकते है, परन्तु आहार-पानी करना बन्द नही करते। इससे स्पष्ट है कि सूत्र-वांचन और आहार-पानी की समानता नही है।

उपरोक्त अवस्था मे साधु-साध्वी, आवश्यकसूत्र का तो उसी मकान मे उभयकाल पाठ करते ही है, अन्य सूत्रों का वांचन रुकता है। इससे यह भी स्पष्ट होता हैं कि सूत्रो के पठन में भी समानता नही, तो आहार-पानी की सूत्र-वांचने के साथ समानता कैसे हो सकती है ?

साधु-साध्वीजी के भी फोड़े-फुन्सी आदि हो जाते हैं। उनमे से रक्त मवाद आदि निकलता है। उस अवस्था में भी वे साधु-साध्वी, आवश्यकसूत्र दोनों समय अवश्य करते हैं और आहार-पानी भी लाते हैं और करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि रक्त और पीप वाले फोड़े-फुन्सी उनके होने पर साधु-साध्वीजी की साधुता नहीं बिगड़ती, किन्तु सुरक्षित रहती है, तब सूतक वाले घर का आहार-पानी उनके लिए बाधक कैसे हो सकता है ? अतः सिद्ध है कि आहार-पानी विषयक सूतक मानना, जैनधर्म संगत नहीं, यह वैदिकधर्म की नकल ❖ है और यह भी एक प्रकार की जुगुप्सा है, जो साधु-धर्म के लिए निषिद्ध है।

❖ सूतक वाले घर का आहारादि लेने का निषेध करने वाली मान्यता वास्तव में जैन-धर्म की नहीं हैं। वैदिक संस्कारों के संसर्ग से मूर्तिपूजक जैन परम्परा में आई है। जैन-धर्म, आर्त्त और रौद्र ध्यान एवं अशुभ विचारणा को त्यागने योग्य मानता है। धर्म ध्यान=स्मरण, चिंतन स्तुति, वंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण, संवर, त्याग, प्रत्याख्यान आदि सदैव आचरणीय है। इनके लिए कभी व किसी भी समय रुकावट नहीं होती। इसकी रुकावट करने का अर्थ होगा-अशुभ विचारणा को अवकाश देना।

सूतक की मान्यता का जैन-परम्परा में प्रवेश, विशेष प्राचीन नहीं हैं। पहले यह सामान्यरूप में रही होगी, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रभाव बढ़ा होगा। निम्न प्रमाण इस विषय मे अवलोकनीय हैं।

१. 'हीरप्रश्न' के २४८ वें प्रश्न के उत्तर में बताया है कि - "जिसके घर मे पुत्र-पुत्री का जन्म हुआ हो, उसके घर के पानी से देव पूजा नहीं हो सकती-इस प्रकार के शब्द किसी शास्त्र में हो, ऐसा हमारे जानने में नहीं है। उसके घर की गोचरी-पानी के लिये जिस देश में जो लोकव्यवहार हो, उसके अनुसार साधुओं को करना चाहिए, किन्तु दस दिन का नियम शास्त्रों में जानने में नहीं आया।"

****

४३० प्रश्न – मासिक-धर्म सम्बन्धी मर्यादा क्या है ?

उत्तर – मासिक-धर्म जब तक हो, तब तक आवश्यक सूत्र के अतिरिक्त अन्य सूत्रों का पठन नहीं होना चाहिए। प्रतिक्रमण,

---

२ 'सेनप्रश्न' के प्रश्न ५४९ के उत्तर में भी यही भाव बतलाये हैं।

३. 'सेनप्रश्न' के प्रश्न ९२४ के उत्तर में लिखा है कि – 'जन्ममरण के सूतक मे स्नान करने के बाद प्रतिमा की पूजा करने का निषेध हमारे जानने में नहीं आया।'

४. उपरोक्त ग्रंथ के ५१३ वें प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि – 'प्रतिमा-पडिमा वहन करने वाली श्राविका रजस्वला हुई हो तो पर्व के दिन मोनपूर्वक पौषध और काउसग्ग कर सकती है-ऐसा वृद्धवाद है।'

५ 'श्री हीर प्रश्नोत्तरानुवाद' के अनुवादक आचार्य श्री विजयजम्बूसूरिजी म. के शिष्य मु. श्री चिदानन्दविजयजी, प्रश्न २४८ के उत्तर में टिप्पण मे लिखते हैं कि –

"श्री तपागच्छमा आजे ऐक वर्ग सूतकने विशे जे विचित्र प्रवृत्ति सेवी रह्यो छे, जेवी के-कोई ने त्यां सुवावड होय तो ऐकतालीस दिवस सुधी साधुने वहोरावी सकाय नहि, तेना घर साथे जेनो ऐक मोख होय तेनाथी पण गोचरी वहोरावी सकाय नहि, ऐक भडकी होय तेनाथी पण गोचरी वहोरावी सकाय नहि, सुववाड गमे त्यां थयेली होय छतां तेना घरना माणसोथी सेवा पूजा कराय नहि, सुवावडी बाईथी सवा सवा महीना सुधी दर्शन करी सकाय नहि, मरण प्रसंगे पण कांध दीधी होय श्मशानमां गयेला होय, शवे अडया होय तो अमुक अमुक दिवसो सुधी पूजा-सामायिक-प्रतिक्रमण वगेरे थई शके नहि, इत्यादि धर्मकरणीमांय अटकायत करनारी कहेवाती हालनी अनेक विचित्र प्रवृत्तिने शास्त्र तेमज सुविशुद्ध परंपरानो मुद्दल टेको नथी, ते ऊपरनो मूल प्रश्नोत्तर स्पष्ट साबित करी आपे छे आम छतां आजे केटलाको खोटी प्रवृत्तिओने परम्पराने नामे उत्तेजन आपी शास्त्रीय मार्गने जनतामांथी भूंसी नाखवाना नादे चढेला सूतक विषेना भ्रमने पण सुधारवाने बदले 'जैन कोम अभडाई जय छे' अेवी घा नाखीने पोतानी अधम मनोवृत्तिनुं तांडव करे छे,

धर्मोपदेश, भिक्षाचरी, सेवा-सुश्रूषा, सूत्र उठा कर विहार करना, ये सब काम मासिक-धर्म के समय किये जा सकते हैं। मासिक-धर्म होते हुए भी साधुत्व कायम रहता है, तो श्रावकों के लिए सामायिक, संवर, स्मरण, प्रतिक्रमण, जिनगुणगान-ये कैसे बाधक हो सकते हैं ? अर्थात् श्राविकाएँ उस अवस्था में सामायिक आदि उपरोक्त कार्य कर सकती हैं ✦।

व्यवहार सूत्र के ७ वें उद्देशे में तो यहाँ तक उल्लेख है कि रजस्वला साध्वी, किसी खास प्रसंग पर पट्ट आदि संरक्षा के साथ, शास्त्रादि वांचन कर सकती है। ऐसी दशा में अन्य कार्यो के लिए बाधा कैसे हो सकती है ?

तेमनाथी खपीजीवोअे कदी ऊंधे मार्गे दोरावुं नहि, आ साथे आ विषेना श्री सेन प्रश्नना प्रश्नोत्तर पाण मेलवी जोवानी अमो वांचकोने भलामण करीअे छीअे अने ईच्छीअे छीअे के तेओ सूतकना नामे कयांय सेवा पूजादि शुभ करणी, के जे शास्त्राधारे स्नान करीने शुद्ध थवाथी सुखेथी करी शकाय छे, तेनाथी पोते अटकीने के अन्य कोईने अटाकावीने महाअंतराय कर्मनु पाप न बांधो।"

वास्तव मे जैनधर्म मे आगम स्वाध्याय के अतिरिक्त सूतक आदि का कोई विचार नही हैं। किसी साधु-साध्वी के काल कर जाने के वाद साथ वाले साधु-साध्वी, बिना स्नान किये यथासमय प्रतिक्रमणादि करते हैं और स्वाध्याय भी करते हैं। शव उस स्थान में रहे तब तक आगम स्वाध्याय नहीं करते। व्यर्थ की रोक धर्मान्तराय जनक होती है।

✦ मासिक-धर्म के समय साध्वियो का संयम रह सकता है, उसमे कोई क्षति नहीं होती। लघुनीत-वडीनीत करते समय भी सयम रह सकता है, तव श्राविका की सामायिक में कौनसी वाधा खडी हो जाती है ? वास्तव में इस प्रकार की धारणा ही भ्रम-मूलक है।

४३१ प्रश्न - महाराजश्री, श्रावक के रात्रि-भोजन त्याग को सातवे व्रत के अन्तर्गत बतलाते हैं, तो सातवे व्रत में तो २६ बोलों का त्याग जीवनभर के लिए है, तब रात्रि-भोजन के त्याग को पाँचवीं प्रतिमा में ही माना जाय, तो क्या हानि है ?

उत्तर - जैसे श्रावक की तीसरी प्रतिमा से सामायिक और देशावकासिक व्रतो का आराधन करते रहते है। तीसरी प्रतिमा के पालन करते हुए भी व्रतों की अपेक्षा सामायिक ९ वां और देशावकासिक १० वॉ व्रत है तथा चौथी प्रतिमा में महीने में ६ पौषध करते है, उनका व्रत की अपेक्षा ११ वें में स्थान है। इस प्रकार पाँचवीं प्रतिमा में वे स्नान और रात्रि-भोजन को पूर्ण रूप से त्याग देते हैं। वह ७ वें व्रत में है और दिन का ब्रह्मचर्य पालते हैं, वह चौथे व्रत मे हैं। इसी प्रकार छठी प्रतिमा से वे पूर्ण ब्रह्मचारी हो जाते हैं, यह भी चौथे व्रत में और सचित्त आहार के त्यागी होते है, वह सातवें व्रत मे गिने जाते हैं। इस प्रकार रात्रि-भोजन त्याग पाँचवी प्रतिमा में होते हुए भी व्रत की अपेक्षा सातवें में है। श्रावक का रात्रि-भोजन त्याग, सातवें व्रत में होने का उल्लेख 'आवश्यक टीका' तथा अर्थ और 'राजेन्द्र कोष' में है।

४३२ प्रश्न - जिस व्यक्ति के रात्रि-भोजन का त्याग नहीं है, उसका सातवाँ व्रत भंग अथवा सातवाँ व्रत नहीं होना माना जायगा ?

उत्तर - रात्रि-भोजन के प्रत्याख्यान के अतिरिक्त भी अन्य अनेक वस्तुओ के प्रत्याख्यान होने से सातवां व्रत हो सकता है और इस व्रत के लिए हुए अन्य प्रत्याख्यानों के पालन करने वालों का (रात्रि-भोजन के त्याग के अभाव में) सातवें व्रत का भंग हुआ नही मानना चाहिए।

४३३ प्रश्न - श्रावक के १२ व्रत मूलगुण में और शे प्रत्याख्यान उत्तरगुण में है क्या ?

उत्तर - श्रावक के पाँच अणुव्रत मूलगुण में है और शे व्रत-प्रत्याख्यान उत्तरगुण में हैं।

४३४ प्रश्न - सिद्धशिला उलटे छत्र के आकार वाली मानी जाती है, तो क्या वह कटोरी की तरह बीच में पोली है, या ठोस है-जिसमें कोई चीज़ समा नहीं सके और ऊपर समतल भूमि के समान हो ? तथा सिद्धशिला का कोई भी हिस्सा लोकान्त तक तो नहीं गया ? क्या सिद्ध भगवान् सिद्धशिला की समतल भूमि पर है ?

उत्तर - सिद्धशिला कटोरी की तरह पोली नहीं, किंतु ठोस है। उसकी ऊपर की भूमि समतल है। उसके चारों ओर असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक लोक है। ऊपर की ओर (उत्सेधांगुल से) किञ्चन्यून एक योजन तक लोक है। उस योजन के २४ हिस्से में से नीचे के २३ हिस्से छोड़ कर ऊपर के एक हिस्से में ही सिद्ध भगवान् हैं। वे अलोक से लगे हुए हैं। **"तस्स कोसस्स छब्भाए सिद्धाणोगाहणा भवे"** (उत्तरा. ३६-६२) तथा - **"इसी पब्भाराएणं पुढवीए सीयाए जोयणंमि लोगंते। तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए तस्सणं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे तत्थणं सिद्धा"** (उववाई)।

उपरोक्त प्रमाण से सिद्ध भगवान्, सिद्धशिला से तीन गाउ और चौथे गाउ के छह भागों में से पाँच भाग छोड़ कर ऊपर के एक भाग में रहे हुए हैं और सिद्धशिला ऊपर के लोकांत से एक योजन दूर है।

योजन का २४ वाँ भाग और गाउ का छठा भाग तो समान ही है। गाउ दो हजार धनुष का और धनुष ९६ अंगुल का होता है। गाउ के छठे भाग के ३३३ धनुष और ३२ अंगुल होते है। इतनी ही सिद्धो की उत्कृष्ट अवगाहना होती है और खास सिद्ध-क्षेत्र की मोटाई भी इतनी ही है। सिद्ध भगवंतों से सिद्धशिला के ऊपर के तल की दूरी एक योजन के २४ भाग में से २३ भाग की है। तात्पर्य यह है कि सिद्ध भगवंत तो अलोक से लगे हुए हैं, परन्तु सिद्धशिला लोकान्त से एक योजन और सिद्ध भगवंतों से पौने चार कोस से कुछ अधिक दूर है।

४३५ प्रश्न - किन्ही की ऐसी मान्यता है कि भाद्रपद कृ. १३ को श्री भरत चक्रवर्ती, आरिसा भवन मे केवलज्ञान पाये। उसके दूसरे दिन उनका पुत्र भी उसी तरह केवलज्ञान पाया, यो लगातार आठ दिन तक, एक के बाद दूसरा यो आठ सिद्ध हुए। यह बात ठीक है क्या ?

उत्तर - श्री भरत महाराज को आदर्श भवन में केवलज्ञान हुआ। वे दस हजार राजाओं के साथ साधु वेश लेकर विचरने लगे। फिर उनके पुत्र 'आदित्ययश' राज्याधिपति हुए। उन्होंने भी बहुत लम्बे समय तक राज्य किया और बाद मे केवली हुए। उनके पुत्र 'महायश' को राज्य मिला। उन्होने भी बहुत काल तक राज्य किया और बाद में केवली हुए। इस प्रकार भरत महाराज और भरत महाराज के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि पाटानुपाट आठ राजाओं को बहुत दिनों के अन्तर से आदर्श भवन में केवलज्ञान हुआ। ये आठों भाई नहीं थे, किन्तु क्रमशः एक दूसरे के पिता-पुत्र थे। इस प्रकार सिद्ध होने वाले भरत सहित ९ व्यक्ति थे।

भरत को नहीं गिने, तब शेष ८ रहते हैं। इन आठ राजाओं के नाम स्थानांग के ८ वें स्थान में है। वे इस प्रकार हैं - १. आदित्ययश २. महायश (चन्द्रयश) ३. अतिबल ४. महाबल ५. तेजवीर्य ६. कार्त्तवीर्य ७. दंडवीर्य ८. जलवीर्य। ये भरत चक्रवर्ती के पुत्र, पौत्र रूप से आठ पीढ़ियां हैं।

भरतेश्वर का आदर्श-भवन, उनके वार्द्धिकी रत्न ने बनाया था, जो इन कार्यों में पूर्ण कुशल था। जिसकी एक हजार देव सेवा करते थे। भरतेश्वर ने उस भवन का पहले अनेक बार उपभोग किया था। अतएव यह कहना निराधार है कि -

भरत चक्रवर्ती और उनके आठ पुत्र, लगातार एक के बाद एक राजा हो कर सिद्ध होते गये और वे भाद्रपद कृ १३ से भाद्रपद शु. ५ तक प्रतिदिन एक-एक सिद्ध हुए और इसलिए पर्युषण के आठ दिन हुए।

आदर्श-भवन बनाने के लिए देश-विदेश के शिल्पकारों की महासभा बुलवाई गई। महल की परीक्षा करने के लिये प्रथम बार प्रवेश करना आदि बातें जो करते हैं वे भी निराधार हैं, शास्त्र प्रमाण रहित हैं।

४३६ प्रश्न - महामारी का रोग भ. शान्तिनाथजी के गर्भ में आने के पूर्व से ही चालू था और गर्भ में आने के बाद शान्त हुआ या भगवान् के गर्भ में आने के बाद चालू हुआ और उसको माता पिता की चिंता का कारण जान कर भगवान् ने रोग उपशान्त किया?

उत्तर - रोग तो भगवान् के गर्भ में आने के पूर्व ही उत्पन्न हुआ था और भगवान् के गर्भ में आने के बाद शान्त हो गया।

४३७ प्रश्न - शास्त्र में जो पुण्य बतलाये वे किसको देने से होते हैं ? और अन्न, पानी, कपड़ा, पैसा आदि देने से पुण्य होता है, या नहीं ?

उत्तर - साधु और साधु के सिवाय दूसरों को देने से भी पुण्य होता है। राजा प्रदेशी ने श्रावक होने के बाद दानशाला चालू करके अनेकों को दान दिलाया था। यदि वे दान में पुण्य नहीं समझकर एकान्त पाप समझते, तो श्रावक होने के बाद दानशाला का नया कार्य--रमणिकता कायम रखने के लिए क्यों करते ?

'दान देने के लिए श्रावकों के द्वार खुले रहते थे' - ऐसा उल्लेख आगमों में है। यदि वे श्रावक, दान देने में एकान्त पाप मानते, तो क्या पाप कमाने के लिए दान देते ?

अनुकम्पा, सम्यक्त्व का लक्षण है। दीनहीन जीवों की अनुकम्पा कर के दान देने में एकान्त पाप कहीं नहीं बताया, किंतु पुण्य होना ही बताया है। ऐसी व अन्य बातों पर विचार करने, पर साधु के सिवाय दूसरे जीवों को अन्नादि दान देने से भी पुण्य होना प्रकट होता है।

४३८ प्रश्न - संसारी जीव (मनुष्य) को पुण्य की आवश्यकता है या नहीं ?

उत्तर - मनुष्य-भव, दीर्घ आयु, पाँचों इन्द्रियाँ सम्पूर्ण, निरोग शरीर, धर्म-श्रवण का सुयोग आदि अनेक वस्तुएँ पुण्य से प्राप्त होती है। इसलिए मनुष्यादि जीवों को पुण्य की आवश्यकता होती है।

४३९ प्रश्न - स्थानकवासी जैन समाज की आर्याजी म. रात के समय व्याख्यान क्यों नहीं देती ?

उत्तर - रात के समय साध्वीजी, बहिनों की परिषद् को तो धर्मोपदेश दे सकती है, किन्तु पुरुषों को नहीं। बृहत्कल्प के प्रथम उद्देशक में स्पष्ट विधान है कि जिस मकान में रात को पुरुष का आवागमन हो, तो उसमें साध्वीजी नहीं रहे और उत्तराध्ययन, समवायांग सूत्र आदि में उल्लिखित ब्रह्मचर्य की वाड़ों से भी पुरुष एवं नपुंसक रहित स्थान में रहने का विधान है। साधु और साध्वी दोनों ब्रह्मचारी होते हुए भी दोनों एक मकान मे-वह भी बहिनों और पुरुषों की उपस्थिति में भी रात को नही ठहरते, तो फिर साध्वी, धर्म-कथा कहती हो, उस मकान में रात को पुरुषों का आना कैसे योग्य हो सकता हैं ?

४४० प्रश्न - जिस मकान में साधु अथवा साध्वी ठहरे हुए हों उसके किंवाड़ क्या साधु और साध्वी स्वयं खोल सकते हैं और बंद कर सकते हैं ?

उत्तर - दशवैकालिक, आचारांग, बृहत्कल्प आदि सूत्रों को देखते हुए यह मालूम होता है कि साधु-साध्वी, विधिपूर्वक किंवाड़ खोल भी सकते हैं और बन्द भी कर सकते हैं।

साधु-साध्वी, तीन करण तीन योग से त्यागी होते हैं। यदि उनके लिए किंवाड़ खोलना और बन्द करना वर्जनीय होता, तो क्या वे दूसरों (गृहस्थों) से किंवाड़ खुलवा और बंद करवा सकते ? उनका तो कर्त्तव्य है कि यदि कोई गृहस्थ उस मकान का किंवाड़ खोले या बन्द करे, तो उसे रोके, क्योंकि आज्ञा ले कर ठहरने के बाद वह मकान उनकी नेश्राय में हैं। गृहस्थ तो विवेक-रहित हो कर अयतना भी कर सकता है।

साधु-साध्वी की नेश्राय के स्थान के किंवाड, साधु-मर्या

लिए गृहस्थ खोले और बन्द करे, उससे अधिक यतना तो धु कर सकते हैं। अतएव गृहस्थ से बन्द करवाने की अपेक्षा तो द करना उचित है।

४४१ प्रश्न - जिस आकाश-प्रदेशों में सिद्ध भगवान् रहे ए हैं, उन्हीं आकाश-प्रदेशों में कर्म से बद्ध दूसरे जीव भी है या ? और कर्म-वर्गणाएँ भी हैं क्या ? यदि जीव हैं, तो सूक्ष्म हैं । बादर ? बादर हैं, तो कौनसे ? सिद्धशिला स्वयं बादर थ्वीकाय है, किन्तु उसके ऊपर दूसरे बादर जीव हैं क्या ? जिन आकाश-प्रदेश का अवगाहन सिद्ध परमात्मा ने किया, उन्हीं आकाश-प्रदेशों में अन्य बादर जीव भी हैं क्या ? वहाँ बादर युकाय भी है क्या ?

उत्तर - सिद्ध भगवंतों ने जिन आकाश-प्रदेशों का अवगाहन किया, उन्हीं आकाश-प्रदेशों में कर्म-बन्धन से बंधे हुए पांचो थावरकाय के सूक्ष्म और बादर वायुकाय के, यो ६ प्रकार के जीव हैं। सिद्ध अवगाहित आकाश-प्रदेशों में बादर वायुकाय के जीव तो हैं, परन्तु अन्य वाटे वहता (भवान्तर जाते) जीवों के तिरिक्त बादर जीव नहीं होते।

पांच स्थावर के सूक्ष्म जीव तो लोक में सर्वत्र है। बादर युकाय लोक में उन सभी स्थानों में है - जहाँ पोलार है। यह ति प्रज्ञापनासूत्र के 'स्थान पद' से सिद्ध है। भगवती सूत्र श. ३४ १ मे उल्लेख है कि लोक के पूर्वादि चरमान्तों तक बादर युकाय है।

४४२ प्रश्न - सूक्ष्म जीवों के शरीर कितने स्पर्श वाले हैं ? ाठ से कम स्पर्श वाला औदारिक शरीर होता है क्या ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. १२ उ. ५ में एक कार्मण-शरीर को ही चार स्पर्श का बताया है, शेष चारों शरीर, आठ स्पर्श वाले हैं। अतएव सूक्ष्म जीवों के औदारिक शरीर भी आठ स्पर्श वाले ही हैं।

४४३ प्रश्न - मूलगुण के दोषी साधु को क्या प्रायश्चित्त आता है ?

उत्तर - मूलगुण विराधक को प्रायश्चित्त, मूल से दीक्षा है। यदि दोष छोटा हो, तो प्रायश्चित्त भी दीक्षा छेद अथवा तप का होता है।

४४४ प्रश्न-उत्तरगुण विराधक को क्या प्रायश्चित्त आता है?

उत्तर - उत्तर गुण की विराधना का प्रायश्चित्त यथायोग्य पहले से सातवें तक अर्थात् आलोचना से ले कर दीक्षा छेद तक दिया जा सकता है।

४४५ प्रश्न-मूलगुण की विराधना करने वाले साधु को प्रायश्चित्त (नई दीक्षा) दिये बिना ही शुद्ध माना जा सकता है क्या?

उत्तर - मूलगुण के प्रकट दोषों की प्रकट मे और गुप्त दोषों की गुप्त रूप से शुद्धि करना आवश्यक है। इसके बिना शुद्ध मानने की बात असत्य है।

४४६ प्रश्न - अतिक्रम-व्यतिक्रम रूप दोष सेवन करने वाले को क्या प्रायश्चित आता है ?

उत्तर - अतिक्रमादि भी अनेक प्रकार से होते हैं, अत उनके लिए प्रायश्चित्त भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

४४७ प्रश्न - साधु, श्रावक के द्वारा दूसरे साधु के पास पोस्ट से पुस्तकें दूसरे गांव भेज सकते हैं ?

उत्तर - गृहस्थ श्रीमंत द्वारा दूसरे गांव से पोस्ट पार्सल आदि द्वारा पुस्तके मंगवाना और भिजवाना साधु-साध्वी का कल्प (मर्यादा) नहीं है। आगम विरुद्ध है।

४४८ प्रश्न - क्या साधु ऐसा कह सकते हैं कि 'हमें म्हारा काले झंडों से स्वागत करना पड़ेगा ?'

उत्तर - ऐसा बोलना साधुता के सर्वथा विरुद्ध है।

४४९ प्रश्न - क्या साधु, अपने सांसारिक बेटे, पोते को लाड़-प्यार कर सकते हैं ?

उत्तर - नहीं। साधु यदि गृहस्थ को लाड़-प्यार करे तो प्रायश्चित्त का भागी बनता है।

४५० प्रश्न - क्या साधु अपने फोटू खींचवा सकते हैं ?

उत्तर - नहीं, साधुओं को फोटू खींचवाना नहीं कल्पता है।

४५१ प्रश्न - सम्यग्-दृष्टि जीव के कर्मों की सकाम-निर्जरा के पश्चात् जो पुद्गल कर्म-वर्गणा से निर्जर कर पृथक् हो गये, वे ही पुद्गल उस जीव के किसी भी वर्गणा के रूप में बन्ध उदय में आ सकते हैं या नहीं ?

उत्तर - सकाम-निर्जरा द्वारा निर्जरित पुद्गलों का पुनः बन्धन, उस जीव के साथ नहीं होता, ऐसी धारणा है।

४५२ प्रश्न - तीर्थंकर भगवंतों में अनन्त बल माना है, सो अनन्त बल जन्म से ही होता है, या अन्तरायकर्म के क्षय होने के बाद ? और भगवान् महावीर ने जन्म लेते ही मेरु-पर्वत को कम्पायमान किया-ऐसा कहा जाता है, सो यह बात वास्तविक है, या अलंकारिक ? क्योंकि मेरु पर्वत तो शाश्वत है ?

उत्तर - जिस प्रकार साधारण मनुष्यों की अपेक्षा बलदेवों

में और बलदेवों की अपेक्षा वासुदेवों में, वासुदेवों से चक्रवर्ती में, चक्रवर्ती से देवों में और देवों की अपेक्षा इन्द्र में शारीरिक बल अधिक होता है, उसी प्रकार तीर्थकरों में स्वभाव से ही शारीरिक बल अधिक होता है। अनन्त बल का प्रकटीकरण तो अन्तराय कर्म के क्षय होने से ही होता है।

भगवान् ने जन्म-महोत्सव के समय मेरु-पर्वत को कम्पाया, यह बात मूलसूत्र की तो नहीं है, परन्तु ग्रन्थों की है। इसलिए निश्चय तो ज्ञानी जाने, किन्तु शाश्वत होने के कारण मेरु के कम्पन में बाधा नहीं आ सकती। क्योंकि स्थानांग सूत्र स्था. ३ उ. ४ में देशरूप से और सर्वरूप से पृथ्वी के चलित होने के तीन-तीन कारण बताये है। जब संपूर्ण पृथ्वी ही चलायमान हो सकती है, तो मेरु प्रकम्पन में आश्चर्य की बात ही क्या है ? स्थानांग में देव के बल आदि से पृथ्वी का पूर्ण रूप से कम्पन सिद्ध होता है, तब तीर्थकर शाश्वत मेरु को कम्पित कर सकें, इसमें कौनसी बाधा है ?

४५३ प्रश्न - बादर वायुकाय, बारह देवलोक तक ही है या इनसे भी ऊपर ? पुरानी धारणा में ऊर्ध्व लोकान्त मे जीव के १२ भेद होते हैं। यथा-सूक्ष्म ५ थावर और छठा बादर वायुकाय इन छह के पर्याप्त और अपर्याप्त। क्या यह धारणा ठीक है ?

उत्तर - बादर वायुकाय लोक के अन्त तक है। यह बात 'प्रज्ञापनासूत्र' के 'ठाण पद' के बादर वायुकाय के अधिकार में ही स्पष्ट होती है। जैसे - **'कप्प'** शब्द से बारह देवलोक और **'विमाणेसु'** शब्द से ग्रैवेयक के प्रकीर्णक और **"विमाणावलियासु"** शब्द से ग्रैवेयक और अनुत्तर के आवलिकाबद्ध

विमान लेना चाहिए। इसके बाद "**लोगागासछिद्देसु**" शब्द से लोक मे जहाँ कहीं पोलार हो वहीं बादर वायुकाय समझ लेना चाहिए। इसके वाद "**लोकनिक्खुडेसु**" शब्द से लोक के कोनों में भी वादर वायुकाय का होना लोकान्त तक साबित होता है।

लोकान्त में बादर वायुकाय के अतिरिक्त अन्य बादर जीव वाटेवहते (भवान्तर में गमन करते) होते हैं। इनके सिवाय कोई वादर जीव नहीं होते।

पांच स्थावर के सूक्ष्म और वायुकाय के बादर, यों छह प्रकार के जीवों के पर्याप्त और अर्पाप्त - ऐसे १२ भेद, लोक के पूर्वादि चरमान्तों में होना, भगवती सूत्र श. ३४ उ. १ में बताया है। इससे भी लोकान्त तक बादर वायुकाय का होना सिद्ध होता है। इसके सिवाय भगवती सूत्र श. १७ उ. १०, ११ और श. २० उ. ६ में वायुकाय के जीव 'ईषत्प्राग्भारा' पृथ्वी (सिद्धशिला) तक ऊपर उत्पन्न होने का उल्लेख कर के उनमें चार समुद्घात होने का लिखा है। यह भी बादर वायुकाय का होना ही सिद्ध करता है, क्योंकि चार समुद्घात वाली वायुकाय बादर ही है। इस प्रमाण से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक बादर वायुकाय होना सिद्ध होता है।

४५४ प्रश्न - जीव असंख्य काल तक आहारक रहता है - ऐसा सिद्धांत है, सो जिस समय जीव एक गति को छोड़े, उसी समय दूसरी गति में उत्पन्न हो जाता है, या एक समय में मर कर दूसरे समय में उत्पन्न होता है ? मृत्यु और उत्पत्ति के बीच में समय का अन्तर नहीं पड़े, तो भी जीव आहारक रह सकता है ? और एक ही समय में मरण और उत्पन्न होना सिद्धांत से विरुद्ध तो नहीं होगा ?

अन्तर्मुहूर्त्त के आयुष्य वाले तिर्यंच मर कर सातवीं नरक तक जा सकते हैं। तिर्यंच के पर्याप्त की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की भी हो सकती है। तिर्यंच में तो ऐसे जीव भी होते हैं, जिनकी आयु तो करोड़ पूर्व की होती है, किन्तु अवगाहना अंत तक अंगुल के असंख्यातवें भाग की ही रहती है। यह बात भगवती सूत्र श. २४ उ. १ से सिद्ध है।

४५६ प्रश्न - सम्यगृदृष्टि मनुष्य और तिर्यंच, सम्यगृदृष्टि अवस्था में मनुष्य की आयु का बन्ध करे, या नहीं ?

उत्तर - सम्यगृदृष्टि मनुष्य और तिर्यंच सम्यगृदृष्टि अवस्था में एक वैमानिक देव का ही आयुष्य बाँधते हैं, इसके सिवाय दूसरा कोई आयुष्य नहीं बाँधते। यह बात अनेक शास्त्रीय प्रमाणो से सिद्ध है।

४५७ प्रश्न - धन, संपत्ति आदि अनुकूल सामग्री का मिलना पुण्य का फल और इनका वियोग होना, दरिद्रता, विपन्नता आदि दुःख पाप का फल है - ऐमी मान्यता ठीक है क्या ? और इनके लिए शास्त्रीय आधार है क्या ?

उत्तर - उत्तराध्ययन सूत्र अ. २ तथा भगवती श. ८ उ. ८ में लिखा है कि - जीव को जितने कष्ट-परीषह (दु·ख) होते हैं, वे ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म के उदय से होते हैं। संसार मे जितने भी सुख या दुःख होते हैं, संयोग और वियोग होते हैं, वे सब कर्मो के उदय से संबंधित हैं। इसके प्रमाणों के लिए आगमों में अनेक उल्लेख हैं। प्रज्ञापना सूत्र के २३ वे पद में कर्म की प्रकृतियाँ, उनके उदय, फल-विपाक, स्थिति आदि का वर्णन है। जिसे समझना हो, उसके लिए तो

नहीं करने वाले और आज्ञा के विराधक भी षट्स्थान-पतित संयत मे स्थान पा सकते है ? कृपया षट्-स्थान हीनाधिक का स्वरूप समझावे ?

उत्तर - साधुता की रुचि एवं संयम पालन करने के भाव होने पर संयती माना जाता है। एक जीव के एक भव में सैकड़ो बार (बीच मे भावों की संतित टूट जाय तो) संयत भाव आ सकते हैं। साधुपना पालते हुए बीच में जब कभी संयत भाव छूट जाता है और प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की तरह असंयत भाव आ जाता है अर्थात् महाव्रतों की विराधना हो जाती है और वह श्रमण पुनः सावधान हो कर विकृतभावों को हटा कर शुद्धिकरण कर लेता है, तभी वह संयती रहता है और भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है, अन्यथा नहीं। शुद्धि कारण होने की अपेक्षा से ही महाव्रत भंग भी षट्-स्थान-पतित मे सम्मिलित माने जाते हैं। यह बात तो भगवान् ने निश्चित रूप से फरमाई है। व्यवहार रूप से भगवान् की आज्ञा इस प्रकार है।

निशीथ सूत्र में लिखा है कि महाव्रतों का अंश मात्र भी भंग करे, तो लघु मासिक, गुरु मासिक प्रायश्चित्त आता है।

निशीथ सूत्र के १० वे उद्देशे में लिखा है कि किसी साधु को लघु प्रायश्चित्त, गुरु प्रायश्चित्त, लघु प्रायश्चित्त का हेतु गुरु प्रायश्चित्त का हेतु और प्रायश्चित्त का संकल्प, गुरु प्रायश्चित्त का संकल्प सुना हो, जाना हो, तो जानते हुए भी उसके साथ आहार-पानी करे, तो गुरु चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

व्यवहार सूत्र के सातवे उद्देशे में पासत्थादि को आहार देने से सम्बन्ध विच्छेद करने का विधान है।

निशीथ सूत्र के तेरहवें उद्देशे में पासत्थादि ९ को वन्दना करने और प्रशंसा करने से चौमासी प्रायश्चित्त बताया है।

निशीथसूत्र के १५ वें उद्देशक में पासत्थादि ५ को अशनादि चार प्रकार का आहार और वस्त्र पात्र आदि देवे या उनसे लेवे, तो चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

इत्यादि अनेक स्थलों पर संयम को दूषित करने वाले के साथ व्यवहार करना निषिद्ध है। अतएव व्यवहार में तो उपरोक्त विधानों का पालन ही उपयोगी है। निश्चय की बात ज्ञानी गम्य है।

षट्स्थान का विवरण इस प्रकार है -

छह हानि (हीनता-कमी, न्यूनता) - १. अनन्त भाग हीन, २. असंख्यात भाग हीन ३. संख्येय भाग हीन, ४. संख्येय गुण हीन ५. असंख्येय गुण हीन और ६. अनन्त गुण हीन।

छह वृद्धि (बढोतरी-अधिकता) - १. अनन्त भाग वृद्धि, २. असंख्य भाग वृद्धि ३. संख्येय भाग वृद्धि ४. संख्येय गुण वृद्धि ५. असंख्येय गुण वृद्धि और ६. अनन्त गुण वृद्धि।

प्रत्येक चारित्र के अनन्त पर्यव होते हैं। एक चारित्र के पालने वाले अनेक जीव होते हैं। यथाख्यात चारित्र के अतिरिक्त अन्य चारित्र के पालकों के परिणामों में असमानता और समानता दोनों ही हो सकती है। असमानता को समझने के लिए षट्गुण हानि और षट्गुण वृद्धि का स्वरूप बताया जाता है।

१. अनन्तवां भाग हीन- चारित्र पालने वाले तो साधुओं में के जो चारित्र-पर्यव हैं, उसके अनन्त हिस्से किये जायँ। दूसरे के चारित्र-पर्यव, एक हिस्सा कम है, तो वह अनन्तवें हीन कहा जाता है।

२. असंख्यातवां भाग हीन-इसी प्रकार एक साधु के चारित्र के असंख्य भाग किये जाएँ, उससे दूसरे साधु का चारित्र एक भाग कम हो तो वह असंख्येय भाग-हीन माना जाता है।

३. संख्यातवां भाग हीन-संख्यात भाग हीन भी उपरोक्त रीति से एक के चारित्र के संख्येय भाग करने से दूसरे के एक अश कम होने पर होते हैं।

४. संख्येय गुण हीन-दूसरे के जितने चारित्र-पर्यव हैं, उनके संख्यात गुणा करने पर वह पहले के बराबर हो सके, तो उसका चारित्र संख्यात गुण हीन है।

५. असंख्यात गुण हीन-दूसरे के जितने चारित्र-पर्यव हैं, उनको असंख्यात गुणा करे, तब वह पहले के बराबर हो, अतः उसका चारित्र असंख्य गुण हीन है।

६. अनन्त गुण हीन-दूसरे के जितने चारित्र पर्यव हैं, उनको अनन्त गुणा करने पर वह पहले के बराबर हो, तो वह अनन्त गुण हीन है। इसी प्रकार वृद्धि का भी समझना चाहिए।

सामायिक-चारित्र के अनन्त पर्यव हैं। किसी के सामायिक-चारित्र के अनन्त पर्यव अधिक हैं और किसी के कम हैं। परन्तु सभी सामायिक-चारित्र के पालने वालों के अनन्त पर्यव हैं ही। इसको समझाने के लिए सामायिक-चारित्र के सबसे अधिक पर्यव हैं, वे भी है तो अनन्त ही, परन्तु सभी आकाश प्रदेशों से अनन्तगुण अधिक हैं। असत्-कल्पना से उदाहरण के रूप में समझाने के लिए हम सब से अधिक संयम-पर्यव वाले संयमी के अनन्त पर्यव को, दस हजार के रूप में मान लें। लोक में जीव भी अनन्त हैं। सभी जीवों को असत्-कल्पना से एक सौ मान लिया

००० पर्यव है। संख्यात को असत्कल्पना से १० माना है। प्रथम ारित्र-पालक के अनन्त पर्यव हैं। दूसरे के १००० पर्यव को ख्यात गुणा अर्थात् १० से गुणा करने पर वह पहले वाले के जिसके अनन्त पर्यव हैं-जिन्हें कल्पना से १०००० माना है) ावर होगा।

५. असंख्यात गुण हीन-जो असंख्यात गुण हीन है, उसके ०० पर्यव हैं। पहले के तो अनन्त पर्यव हैं (जिन्हें असत् ल्पना से १०००० माना है) अतः २०० पर्यव को असत् कल्पना ५० माना हैं, तब यह पहले वाले के बरावर होगा।

६ अनन्त गुण हीन-जिसके अनन्त गुण हीन पर्यव हैं। के १०० पर्यव माने हैं। पहले के तो अनन्तपर्यव अर्थात् ००० पर्यव हैं, अतः इसके १०० पर्यव को १०० से गुणा गे, तब वह पहले के बराबर होगा। अतः इसके पर्यव अनन्त हीन है। संक्षेप में –

पूर्ण पर्यव पालने वाले	अपूर्ण पर्यव पालने वाले
१०००० प्रतियोगी	९९०० अनन्तवाँ भाग हीन
१०००० प्रतियोगी	९८०० असंख्यातवां भाग हीन
१०००० प्रतियोगी	९००० संख्यातवां भाग हीन
१०००० प्रतियोगी	१००० संख्यात गुण हीन
१०००० प्रतियोगी	२०० असंख्यात गुण हीन
१०००० प्रतियोगी	१०० अनन्त गुण हीन

इस प्रकार षट्गुण वृद्धि का भी समझना चाहिये।

यह षट्गुण हानि-वृद्धि का स्वरूप है। इसे विशेष स्पष्टता मझने वाले के लिए भगवती सूत्र श २५ उ ६ के १५ वे द्वार

की टीका तथा प्रज्ञापना सूत्र के पांचवे पद की टीका अधिक सहायक होती है।

४६१ प्रश्न - अपरिगृहीता देवियाँ पहले और दूसरे देवलोक मे हैं। वे ऊपर के देवलोक में कहाँ तक जाती है और उनकी परिचारणा किस प्रकार की है ?

उत्तर - पहले देवलोक की देवियाँ सातवे स्वर्ग तक और दूसरे की आठवें स्वर्ग तक जाती है। भवनपति से लगा कर दूसरे देवलोक तक काय-परिचारणा है। तीसरे और चौथे में स्पर्श-परिचारणा, पांचवे-छठे देवलोक में रूप-परिचारणा, सातवे-आठवें स्वर्ग में शब्द-परिचारणा और ९ वें से लगा कर १२ वें देवलोक तक मन-परिचारणा है।

४६२ प्रश्न - 'चोरासीलाख जीव-योनि' और 'कुल कोडी' में भेद क्या है ? जिस प्रकार लाख के पीछे ५० गिन कर वर्णादि के ८४ लाख जीव-योनि की गिनती होती है, उसी प्रकार इसकी भी कोई गणना है क्या ?

उत्तर - जीवों की उत्पत्ति के स्थानों को 'योनि' कहते हैं जैसे-बिच्छु आदि गोबर आदि योनियों मे उत्पन्न होते हैं और योनियो में से 'कुल' पैदा होते है। एक योनि में अनेक कुल होते है। जैसे - गोबर की एक योनि मे-कृमिकुल, कीटकुल, बिच्छु कुल आदि अनेक कुल उत्पन्न होते हैं, अथवा वे ही बिच्छु आदि जो गोवर आदि की अनेक योनियों से उत्पन्न होते है, उसमे भी पीले, लाल आदि रंग के भेद से अनेक प्रकार के कुल होते है।

लाख के पीछे ५० की वर्णादि की गिनती जानने मे नहीं है ज्ञानियों ने ज्ञान मे देखे उतनी कुल-कोडी वताई है।

४६३ प्रश्न - प्रज्ञापना सूत्र लेश्या पद १७ उ. ४ में कापोतलेश्या से नील, कृष्ण और उससे तेजो, पद्म, शुक्ल के थान जघन्य और उत्कृष्ट क्रमशः असंख्यात बतलाये, यह किस कार है ? सबसे कम स्थान कापोत-लेश्या के और सबसे धिक स्थान शुक्ल-लेश्या के किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर - प्रज्ञापना के टब्बार्थ में इस प्रकार लिखा है कि- वि, कापोत-लेश्या के परिणामों में अल्प काल ही ठहरते हैं। ससे नील, कृष्ण, तेजो, पद्म और शुक्ल के परिणामों में ठहरने । काल क्रमश· असंख्य गुणा है। उन परिणामों मे जीव थोड़ी ठहरते है। इस कारण वे स्थान थोड़े और अधिक देर ठहरने कारण वे स्थान अधिक समझना चाहिए।

४६४ प्रश्न - भक्त-प्रत्याख्यानी मुनि, रसलोलुप-गृद्ध होकर हार करे और स्वाभाविक मृत्यु से मर कर अगृद्ध अमूर्च्छित े, ऐसा भगवती सूत्र श. १४ उ. ७ में लिखा है, सो इसको स प्रकार समझा जाय ?

उत्तर - इसकी धारणा यह है कि भक्त-प्रत्याख्यानी मुनि, त कर के पहले मूर्च्छित वगैरह होकर आहार करता है और मे अमूर्च्छितादि रूप से। मूर्च्छित और अमूर्च्छित ये दोनो मृत्यु के बाद की है। ऐसी धारणा है।

४६५ प्रश्न - आगरा से प्रकाशित 'छठे कर्म ग्रन्थ' की ाका ※ मे कर्म-प्रकृति की जीवविपाकी, भवविपाकी.

※ यद्यपि यह भूमिका पं फूलचन्द्र जी शास्त्री की हे और इसका सम्यग्दर्शन दिसम्बर ५२ से जून ५३ तक ७ अंको मे छपा है, किन्तु मान्यता उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द जी म सा की भी ह। उन्होंने

पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकी भेद करके, पुद्गलविपाकी शरीर, मन, इन्द्रियादि रूप ही माना है। दूसरे पुद्गलों या पु के संयोग-वियोग रूप नहीं माना, क्या यह ठीक है ?

उत्तर - सभी कर्म-प्रकृतियाँ जीव को ही वेदनी पड़ती पुद्गलविपाकी ३६ प्रकृतियाँ हैं, उनका प्रत्येक का शास्त्रीय दृ से सूक्ष्म विचार किया जाय, तो इनका भोक्ता जीव है। जीव ही इनका उदय और वेदन होता है। सुपुत्रादि अनुकूल सामग्री प्राप्ति, सातावेदनीय का उदय, लाभान्तराय का क्षयोपशम, यश कीर्ति-नामोदय आदि ही समझना चाहिये। यह सब कर्म-फल अन्तर्गत ही है- बाहर नहीं है।

४६६ प्रश्न - पुण्य दान की भावना करुणाबुद्धि, आर्त्तध्यान में या धर्म-ध्यान में हैं ? धर्म-ध्यान के चार भगवती, स्थानांग और उववाई में हैं, उनमें से किस भेद में इस समावेश होता है ?

उत्तर - इस प्रकार की भावना मिथ्यादृष्टि की आर्त्तध्यान और सम्यग्दृष्टि की शुभ ध्यान में होने की सम्भावना लगती है।

चित्त की अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिरता को 'ध्यान' कहते हैं। य यह स्थिरता हो, तो सम्यग्दृष्टि की ऐसी भावना आर्त ◆ धर्मध्यान में और मिथ्यादृष्टि की आर्त्तध्यान में होना संभव है।

मुझे जोधपुर में कहा था कि - "प फूलचन्द जी शास्त्री से भी पहल ऐसी मान्यता बन चुकी थी। मैंने इस विषय में लिखा भी है, किन्तु समज नई हलचल खडी हो जाएगी- इस विचार से इस मान्यता का प्रचार किया और फूलचन्दजी ने प्रचार कर दिया"-डोशी।

◆ आर्त्त का अर्थ भी व्यापक है, यह शुभ और अशुभ भी होता है-डो।

४६७ प्रश्न - सिद्धशिला बीच में आठ योजन मोटी और फिर कम होते-होते मक्खी के पंख के समान पतली है, तो आठ योजन की मोटाई मध्य में है और किनारे पतले हैं या पतलापन मध्य मे है ? और सिद्धशिला का आकार कैसा है ? समभाग किस ओर है ? और उसके किनारों से अलोकाकाश के प्रदेश स्पर्शे हुए हैं, या दूर हैं ? यदि दूर है तो कितने दूर हैं ?

उत्तर - सिद्धशिला मध्य में मोटी हैं और किनारे पर पतली है। उसका समभाग ऊपर की ओर है। मस्तक पर धारण किये जाने वाले छत्र को उलटने से उसका जैसा आकार बनता है, वैसा ही आकार सिद्धशिला का है। अलोक सिद्धशिला से चारों ओर असंख्य कोडाकोडी योजन अर्थात् किञ्चित् न्यून अर्ध रज्जु दूर है।

४६८ प्रश्न - १३ ढालों की ८ वी ढाल में थावच्चा मुनि सहित १५०० साधु, पुण्डरिकगिरि से मोक्ष गये बतलाया है, परन्तु शुकदेव मुनि सहित १००० साधु भी वहीं से मोक्ष पधारे, फिर उनका नाम क्यों नहीं आया ?

उत्तर - १३ ढालो की ८ वीं ढाल में "थावच्चा सुत 'सुक' राग आदि" ऐसा कहा है। इसमे जो 'सुक' शब्द है, वह शुकदेव जी आदि हजार मुनियों के लिये है। इस प्रकार वहाँ २५०० मुनि ही बतलाये हैं।

४६९ प्रश्न - सलिलावती विजय जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह मे है। ऐसी गहरी विजय महाविदेह धातकीखण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप में भी है या नही ?

उत्तर - पांचों सलिलावती विजय में से सिर्फ जम्बूद्वीप की सलिलावती विजय ही एक हजार योजन की गहरी है, शेष नहीं। १६ वें समवायांग से स्पष्ट है।

४७० प्रश्न - क्षीर-समुद्र, घृतसमुद्र और वारुणीसमुद्र एक-एक ही है या अधिक है ? ये समुद्र अढ़ाई द्वीप के बाहर नजदीक हैं या दूर ? १४ वें नन्दीश्वर द्वीप के इस तरफ है या उस तरफ ?

उत्तर - वारुणी (मदिरा) क्षीर व घृत जैसे रसवाले समुद्र एक-एक ही हैं। ये समुद्र नन्दीश्वर द्वीप के पहले हैं। केवल समुद्रों की ही गिनती में लवण समुद्र पहला, कालोदधि समुद्र दूसरा, पुष्करवर समुद्र तीसरा, वारुणी समुद्र चौथा, क्षीर समुद्र पांचवाँ और घृत समुद्र छठा है।

४७१ प्रश्न - भवनपति देवता पहली नारकी के १ लाख ८० हजार योजन के पिण्ड की पोलार में रहते हैं, परन्तु भवनपति देवता, नारकी के ऊपर के भाग में हैं, या नीचे के ?

उत्तर - पहली नरक में १३ पाथड़े और १२ अंतरे (एक पाथडे से दूसरे पाथड़े की दूरी को 'अन्तर' कहते है) १३ ही पाथड़ों में नारकी जीव हैं, परन्तु अन्तरों मे नहीं। ऊपर के दो अन्तरों को छोड़ कर नीचे के १० अन्तरों में असुरकुमार आदि दस जाति के भवनपति देव अनुक्रम से रहते है।

४७२ प्रश्न - जृंभक देवों में आठ का काम तो नाम से मालूम पड़ता है, पर नौवें जृंभक देव का नाम व काम क्या है ?

उत्तर - नौवे जृंभक देव का नाम विद्या (विज्जा) और दसवे का नाम अव्यक्त (अवियत्त) जृभक है।

९ विद्याजृम्भक-विद्याओं की रक्षा करने वाले देव।

१० अव्यक्तजृम्भक-सामान्य रूप से सब पदार्थो की रक्षा करने वाले देव। कहीं-कही इसके स्थान नमें 'अधिपित जृंभक' पाठ भी आता हैं।

४७३ प्रश्न - लोक में चार स्थान ४५ लाख योजन के हैं। जिनमें सिद्धशिला और अढ़ाई द्वीप-ये दो हुए, शेष दो कौन से हैं ?

उत्तर - १. सीमंतक नाम का (पहली नरक के पहले पाथडे के बीच में) नरकावास २. मनुष्य-क्षेत्र ३. उडु नाम का विमान (पहले देवलोक के पहले प्रतर में) और ४ सिद्धशिला। ये चारों ही ४५ लाख योजन के हैं।

४७४ प्रश्न - ध्यान के भेद, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा बतलाते हुए उनका अर्थ बतलाइये ?

उत्तर - ध्यान के प्रकार को 'भेद' कहते हैं। परोक्ष चित्त की वृत्ति को जिस लक्षण (चिह्न) के द्वारा जाना जा सके, उसे 'लक्षण' कहते हैं। जिसके सहारे चढ़ा जाता है उसे ''आलम्बन' और ध्यान के बाद अर्थ के विचारने को 'अनुप्रेक्षा' कहते हैं।

४७५ प्रश्न - शुक्लध्यान के चार भेद, केवलज्ञान उपजते समय ध्याते हैं ? या तीसरा व चौथा भेद मोक्ष जाते ध्याते है ? साथ मे चारो भेदों का अर्थ भी बतलाइये।

उत्तर - शुक्लध्यान का पहला भेद आठवे गुणस्थान से १२ गुणस्थान तक दूसरा केवलज्ञान उत्पन्न होने के प्रसंग पर, तीसरा तेरहवे गुणस्थान से १४ वे गुणस्थान में जाते समय और चौथा भेद १४ वे गुणस्थान मे होता है। शुक्लध्यान के चार भेद -

१. पृथक्त्व-वितर्क-सविचारी - पूर्वगत एक द्रव्य विषयक अनेक पर्यायो का विस्तार से, नय तथा भेदो के साथ विचार करना। शब्द से अर्थ में और अर्थ से शब्द में तथा एक योग से दूसरे योग मे संक्रमण होना।

२. एकत्व-वितर्क-अविचारी - किसी एक द्रव्य या प
का स्थिरतापूर्वक चिन्तन करना।

३. सूक्ष्म क्रिया अनिवर्त्ती - १३ वें गुणस्थान के शेष अ
समय में योग निरुंधन के समय जब कायिकी आदि सूक्ष्म क्रि
रहती है और यहाँ से चौथे भेद की ओर बढ़ा जाता है।

४. समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती - शैलेशीकरण अव
प्राप्त केवलज्ञानी भगवान् की सभी क्रियाएँ समाप्त हो जाती है।

४७६ प्रश्न - पांच भरत और पांच एरवर्त - इन दस क्षे
में सदैव समान रीति ही रहती है। आरों का भाव, तीर्थकरादि
सद्भाव तथा अभाव आदि सब एक समय में साथ-साथ ही ह
हैं क्या ?

यदि तीर्थकर मोक्ष भी एक साथ जाते हो, तो यह कैसे
सकता है, क्योंकि एक समय में तीर्थकर तो ४ से अधिक सि
नहीं हो सकते, किन्तु उपरोक्त मान्यता से एक समय में १० सि
हो सकते हैं, इसका क्या समाधान है ?

उत्तर - इन दस क्षेत्रों में आरों का पलटना एक साथ
होता है। अन्य सभी बातों में भी पूर्णरूप से समानता रहती है
ऐसी बात एकान्त नहीं है। हाँ नीति-रीति प्रायः मिलती जुलती

जम्बूद्वीप के भरत-एरवर्त क्षेत्र में तीर्थकर एक साथ एक
समय मे जन्म लेते हैं। इसी प्रकार पूर्वार्द्ध धातकीखण्ड के भर
एरवर्त के दो तीर्थकर भी एक समय में जन्म लेते हैं। इसी प्र
पश्चिमार्द्ध धातकीखण्ज के दो और अर्द्ध पुष्कर के पूर्वार्द्ध के
तथा पश्चिमार्द्ध के दो-दो साथ समझने चाहिए। दस ही ए
समय में उत्पन्न होते हों-ऐसी बात नहीं है। क्योंकि आँख फ

जितनी देर में असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं। यदि १, २, ३ या कुछ समयों के अन्तर से उत्पन्न हों, तो व्यवहार मे तो वे सभी एक साथ ही उत्पन्न हुए, ऐसा मालूम होता है और ऐसा कहा भी जाता है। इसी प्रकार पाँच महाविदेह में से एक महाविदेह में एक समय में चार तीर्थंकरों का जन्म होता है, बीस का नहीं। उनमें भी कुछ समयों का अन्तर रहता है।

४७७ प्रश्न - तीर्थकर जब माता के गर्भ में आते हैं तब पूर्वभव से ही अवधिज्ञान साथ लेकर आते हैं। इसी प्रकार क्या अन्य जीव भी पूर्वभव से अवधिज्ञान साथ ले कर आते है ?

उत्तर - अवधिज्ञान की काय-स्थिति उत्कृष्ट छासठ सागरोपम जाजेरी है। इससे स्पष्ट होता है कि तीर्थकरों के अतिरिक्त कोई अन्य मनुष्य भी पूर्वभव से अवधिज्ञान साथ ले कर आ सकते हैं। किसी मनुष्य में वैक्रियलब्धि गर्भ में भी हो सकती है, किन्तु अपर्यप्त अवस्था में नहीं होती।

४७८ प्रश्न - मोक्ष में सभी जगह अनन्त सिद्ध कहे है, तो समुद्र के ऊपर तो कम ही सिद्ध हुए होंगे और सभी मुक्त, समश्रेणी से सिद्ध होते हैं, तो समुद्र में तो संहरण के कारण कभी ही कोई सिद्ध होते होंगे। हां, यदि विग्रह-गति से सिद्ध होना माना जाय, तो समझ में आ सकता है। आपका इसमें क्या समधान है ?

उत्तर - सभी सिद्ध समश्रेणी से ही मोक्षस्थान को प्राप्त होते हैं। अर्थात् जिस स्थान पर रह कर देह त्यागते है, उसी के ऊपर समश्रेणी से-बिलकुल सीध में-सिद्ध स्थान में जाते है। जो मेरु आदि पर्वतो से, युगलिक क्षेत्रो से तथा समुद्र से सिद्ध होते हैं, वे संहरण किये हुए ही होते हैं। यद्यपि संहरण की घटनाएँ कम

ही होती हैं, फिर भी अनादि काल से ऐसी घटनाएँ होने के कारण समुद्र की सीध पर भी अनन्त सिद्ध हो गये हैं, इसमें शंका जैसी कोई बात नहीं है। यदि अनन्तकाल में एक-एक का संहरण हो कर सिद्ध होवें तो भी अनन्त हो सकते हैं।

४७९ प्रश्न - तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध, मनुष्य-गति में ही होता है, या अन्य गतियों में भी होता है ?

उत्तर - तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध, खास तो मनुष्य गति में ही प्रारम्भ होता है, किन्तु बन्धने के बाद नरक तथा देव-गति में भी इसका बन्ध चालू रहता है अर्थात् पुष्ट होता रहता है।

४८० प्रश्न - श्री गौतमस्वामी जी से चर्चा करने वाले और प्रदेशीराजा को सन्मार्ग में लगाने वाले श्री केशीकुमार श्रमण एक ही हैं या भिन्न व्यक्ति हैं ?

उत्तर - ये दोनों भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के संत थे और भिन्न-भिन्न थे। प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने वाले श्री केशीकुमार श्रमण चार ज्ञान वाले थे और गौतमस्वामी जी के साथ धर्मचर्चा करने वाले केशीकुमार श्रमण तीन ज्ञान वाले थे। इस प्रकार ये दोनों भिन्न-भिन्न थे।

४८१ प्रश्न - जैन-धर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो - १. श्रुतधर्म (सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन रूप) और २. चारित्रधर्म (सम्यक् संयम और सम्यक् तप)।

४८२ प्रश्न - जैन-धर्म की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - जिन-वीतराग सर्वज्ञ का जो धर्म है, वह जैनधर्म है अथवा जिनोपदिष्ट धर्म अर्थात् वीतराग भगवान् का फरमाया हुआ धर्म।

४८३ प्रश्न - क्या जैनधर्म तीनों लोक में विद्यमान है ?

उत्तर - हाँ, जैनधर्म श्रुतधर्म (सम्यग्दृष्टि) की अपेक्षा स्वर्ग, नरक और तिर्यक् लोक में भी विद्यमान है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी राग-द्वेष के दूर होने पर ही सम्यग्दृष्टि आती है और सम्यग्दृष्टि के सद्भाव से जैनधर्मी माना जाता है।

४८४ प्रश्न - क्या जैनधर्म सर्व-व्यापी है ?

उत्तर-हां, ज्ञान दर्शनादि की अपेक्षा जैनधर्म सर्व व्यापी है।

४८५ प्रश्न - जैनधर्म की आराधना से इस लोक में सुख मिलता है या परलोक में ?

उत्तर - जैनधर्म की आराधना से इस लोक में भी सुख मिलता है और परलोक में भी।

४८६ प्रश्न - भगवान् ऋषभदेव जी को केवलज्ञान होने के पूर्व, पहले, दूसरे अथवा छठे आरे में, भरतक्षेत्र में जैनधर्म था या नहीं ?

उत्तर - युगलिकों के समय सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा और कभी-कभी महाविदेह क्षेत्र से संहरण किये हुए साधु श्रावक की अपेक्षा भरत-क्षेत्र में जैनधर्म था।

४८७ प्रश्न - मिथ्यात्वी जिन आज्ञानुसार कार्य करते है, तो उनको धर्म होता है, या पुण्य अथवा पाप ?

उत्तर - मिथ्यात्वियों को जिनाज्ञानुसार शुभभावों से किये हुए आचरण से पुण्य बंध होता है और ऐसा पुण्य जीव को समकित प्राप्ति के सन्मुख बनाता है। अशुभभावों से किये हुए आचरण से पाप होता है। जैसे कि उदायी राजा को मारने वाले भाट (साधुवेशधारी) को पाप का बध हुआ था।

४८८ प्रश्न - 'जिन' किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो जीतने वाला है, वह जिन है। यों तो संसार मे विजयी होने वाले को भी जिन कहते हैं और संसार को विषयवासना में झुकाने वाले कामदेव को भी जिन कहते हैं। किन्तु वास्तविक जिन तो राग-द्वेष को जीतने वाले ज्ञानी ही हैं।

४८९ प्रश्न - अनुत्तर-विमानवासी देवों को 'उपशान्त मोही' कहा है, तो क्या वे ग्यारहवें गुणस्थानी हैं ?

उत्तर - नहीं, अनुत्तर विमान के देव चौथे गुणस्थान में ही हैं। भगवती सूत्र श. ५ उ. ४ में अनुत्तर-विमानवासी देवों को उपशान्त-मोह वाले बताये हैं, उसका तात्पर्य उनका वेद उपशान्त है-विकार दबा हुआ है। इसका अर्थ ग्यारहवें गुणस्थान से नहीं है। अनुत्तर-विमानवासी सभी देवों में एकमात्र चौथा गुणस्थान ही है।

४९० प्रश्न - आगमों को पुस्तकबद्ध किया तो पहले किस सूत्र को लिखा ?

उत्तर - भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के ९८० वर्ष बाद आगम लिखे गये, किन्तु पहले किस शास्त्र को और पीछे किस को-यह जानने में नहीं आया।

४९१ प्रश्न - गणधर देव ने पहले किस आगम की पृच्छा की और बाद में किसकी ?

उत्तर - गणधर देव, पहले चौदह पूर्व की रचना करते हैं, बाद में आचारांगादि की। पृच्छा एवं पढ़ाई का क्रम तो आचारांग, सूयगडांग आदि क्रम से होना बताया है।

४९२ प्रश्न - सम्प्रदायों को समाप्त करना शास्त्र सम्मत है ... ?

उत्तर - शास्त्रों में तो भिन्न-भिन्न गण (सम्प्रदाय) और भिन्न-भिन्न आचार्य बताये हैं। नवीन तीर्थंकर के शासन में शरीक होकर, पूर्व की सम्प्रदाय मिटाना शास्त्र-सम्मत है और किसी सम्प्रदाय में कम साधु रह गये हों इत्यादि कारणों से अपने चारित्र में सहायक होने के लिए अच्छे आचार वाले सम्प्रदाय में मिलना भी उचित है, किन्तु ऐसे किसी कारण के बिना सम्प्रदाय नष्ट करना ठीक नहीं लगता।

४९३ प्रश्न - एक गच्छ से दूसरे गच्छ में जाना दोष का कारण है क्या ?

उत्तर - अकारण तथा अप्रधान समाचारी वाले गच्छ मे जाना दोष-सेवन है।

४९४ प्रश्न - नशीली वस्तु के सेवन करने से सभी मनुष्यो को नशा चढ़ता है क्या ?

उत्तर - जिस प्रकार बिच्छु के डंक से कोई मनुष्य मर जाता है, किसी को अधिक वेदना होती है, किसी को कम और कोई मनुष्य ऐसे भी होते हैं कि जिन्हें कि काटने वाला बिच्छू खुद मर जाता है, उसी प्रकार नशे में भी न्यूनाधिकता है और कोई ऐसा भी व्यक्ति होता है-जिसे नशा नहीं चढ़ता। इस प्रकार नशीली वस्तु के सेवन से नशा चढ़े ही-ऐसा एकांत नियम नहीं है।

४९५ प्रश्न - जिनके घातीकर्म नष्ट हो गये हों, ऐसे वीतरागी को भी नशा चढ़ता है क्या ?

उत्तर - नहीं। वीतरागी को नशा नहीं चढ़ता है।

४९६ प्रश्न - द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की परिभाषा क्या है ? आज-कल लोग द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की ओट लेकर

****
मनमानी करते हैं और कहते हैं कि जमाना परिवर्तन चाहता है इसलिये जमाने के अनुसार चलना चाहिये, क्या यह ठीक है ?

उत्तर - जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य अथवा धर्मास्तिकायादि द्रव्य, उनकी लम्बाई, चौड़ाई कब से हैं और कब तक रहेगी, वे रूपी हैं या अरूपी इत्यादि प्रकार से वस्तु के स्वरूप का कथन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से किया जाता है तथा मति आदि ज्ञान से कितने द्रव्य क्षेत्रादि जानते हैं। समकित व्रत आदि किस जीव को किस क्षेत्र और काल में व कैसे भावों में प्राप्त होता है आदि विषयों का स्वरूप द्रव्य-क्षेत्रादि से बताया जाता है। केवली भगवान् समस्त द्रव्यादि एवं उत्सर्ग-अपवाद को पूर्णरूप से जानते हैं। अतएव मुमुक्षुओं को केवली प्ररूपित धर्म ही अपनाना उचित है। किन्तु द्रव्य-क्षेत्रादि की ओट में सत्य वस्तु को छोड़ कर जमाने के अनुकूल मनमाना परिवर्तन करना-नितान्त अयोग्य है।

४९७ प्रश्न - पाप की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - जो जीव के आनन्द रस का शोषण करे और जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे, वह 'पाप' कहलाता है।

४९८ प्रश्न - धर्म की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - वस्तु के स्वभाव को 'धर्म' कहते हैं। जीव के शुद्ध स्वभाव को प्रकट करने वाला कार्य और दुर्गति में पड़ते हुए जीव को रोक कर सुगति में स्थापित करे, उसे धर्म कहते है, इत्यादि अनेक प्रकार से धर्म की परिभाषा बताई है।

४९९ प्रश्न - ध्वनिवर्धक यंत्र में तो आरम्भ-समारम्भ होता ही है, परन्तु कदलीफल (केला) तो वृक्ष से पृथक् हो कर अग्नि संस्कार होने के बाद दूसरे-तीसरे दिन बिकने को आते हैं। य

पृथ्वी पानी के संयोग से अंकुरित नही होते, क्योंकि निर्बीज है। कई मुनि कदली-फल खाते हैं। उन खाने वालों को रोकने से अन्तराय कर्म नहीं बँधता क्या ? अर्थात् गृहस्थ को दानान्तराय और साधु को भोगान्तराय नहीं लगती क्या ?

उत्तर - कदली-फल (केला) कहीं तो पेड़ पर ही पकते है और कहीं घास धान्य आदि में पकाये जाते हैं तथा कही अग्नि संस्कार से भी पकाये जाते होंगे किन्तु सभी जगह अग्नि से ही पकाये जाते है-ऐसी बात नहीं है।

केला फल है, तो इसमें बीज क्यों नहीं होगा ? यदि फल की अवस्था अधिक कच्ची है, तो उसमें बीज नही भी हो सकता है, परन्तु परिपक्व अवस्था मे तो फल में बीज अवश्य ही होते है। वैसे कदलीफल मे बीज ☼ दिखाई भी देते है। कई वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो सजीव होते हुए भी अंकुरित नहीं होती और कई निर्जीव होते हुए भी अंकुरित होती हैं। इसलिए अंकुरित होने न होने पर ही सचित्त-अचित्तता एकान्त निर्भर नहीं है। शास्त्रों मे वनस्पति की तीनो-सचित्त, अचित्त और मिश्र योनियाँ बताई है। इससे सिद्ध है कि वनस्पति की उत्पत्ति अचित्त-योनि से भी होती है।

मुनि-कल्प के अनुसार कल्पनीय और अकल्पनीय बतलाना अन्तराय बन्ध का कारण नही, किन्तु महालाभ का कारण हैं। जैसे चौविहार प्रत्याख्यान वाले को आहार ग्रहण करते समय किसी ने दिन होने की शंका बता कर खाते हुए रोका, तो यह अन्तराय का

☼ भगवती सूत्र श २२ के मूलपाठ मे कदली के भी मूल से लगाकर बीज पर्यन्त दस भेद कहे है। इससे कदली-फल मे बीज होना आगम सम्मत है - डोशी।

के देव, उत्कृष्ट तीन भव कर के मोक्ष जाते है - ऐसा लिखा है, किन्तु प्रज्ञापनासूत्र पद १५ में लिखा है कि - 'विजयादि चार देवलोक के देव, भविष्य में मनुष्य के रूप मे - आठ, सोलह, चौवीस या संख्यात इन्द्रियाँ करेंगे।' इस हिसाब से देव के इस भव के वाद भी दो देव और तीन मनुष्य भव के - यों पांच मे से मनुष्य के तीन हो, तो २४ इन्द्रियाँ (दो नाक, दो आंखे, दो कान, रसना और स्पर्श - ये ८ एक भव के, यो तीन भव की २४ इन्द्रियाँ होती है) इससे अधिक भव हो, तभी मनुष्य की सख्यात इन्द्रियों का उल्लेख उपयुक्त हो सकता है। इस विपय मे क्या समझना चाहिए ?

उत्तर - चारित्र के आराधक पन्द्रह भव कर के तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह बात भगवती सूत्र श ८ उ १० से स्पष्ट है। अनुत्तर-विमान में आराधक ही जाते हैं। उन देवो के एक भव तो चारित्र आराधना सम्बन्धी मनुष्य का और एक अनुत्तर-विमानवासी देवों का, इस प्रकार दो भव तो हो चुके और आगे विजयादि चार अनुत्तर विमान के देव, अधिक से अधिक १३ भव कर सकते हैं - ऐसा सम्भव है। अत· ८, १६, २४ तथा संख्यात इन्द्रियो से भविष्य मे १३ भव तक समझना चाहिये, इसमे फिर कोई बाधा नहीं आती है।

५०२ प्रश्न - प्रज्ञापना सूत्र में पं भगवानदास हर्ग्खचन्द वाली प्रति में परिहार-विशुद्ध चारित्र पाँच भरत और पांच एरवर्त मे होना बतलाया, किन्तु इसके बाद लिखा है कि सभी कर्नभूमि में होता है, व सभी अकर्मभूमि में होता है। किन्तु महाविदेह मे नहीं होने का तो प्रज्ञापना में ही लिखा है और परिहार-विशुद्ध

चारित्र वाले श्रमण का संहरण नहीं होता, ऐसी स्थिति मे वे अकर्मभूमि में कैसे मिल सकते हैं ? कर्मभूमि में महाविदेह क्षेत्र भी है, किन्तु वहाँ परिहार-विशुद्ध चारित्र नहीं है, फिर सभी कर्मभूमियों में कैसे माना जा सकता है ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. २५ के मूलपाठ में ही लिखा है कि - परिहार-विशुद्ध चारित्र वाले ५ भरत और ५ एरवर्त में ही मिल सकते हैं और इस चारित्र वाले का संहरण भी नहीं होता। अतएव इस चारित्र वाले अकर्मभूमि और महाविदेह मे मिल ही नहीं सकते। पं. भगवानदासजी सम्पादित पन्नवणा सूत्र मे भी ऐसा उल्लेख नहीं है। प्रश्नकार को देखने में भूल हुई हो ऐसा सभव लगता है।

५०३ प्रश्न - व्यन्तर देवो के आवास तिर्च्छा लोक में हैं, किन्तु प्रज्ञापना सूत्र में तीनों लोक में होना लिखा है, तो यह किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर - यों व्यन्तर देवों के महल तथा प्रासाद कही-कहीं ऊँचे लोक में तथा नीचे लोक में भी हैं, किन्तु नगरावास ता केवल तिर्च्छा लोक (रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक का रत्न काड जो एक हजार योजन का जाडा है उनमें से सौ योजन ऊपर व सौ योजन नीचे छोड़ कर मध्य के आठ सौ योजन) में ही हैं।

५०४ प्रश्न - उत्तराध्ययन सूत्र का छठा अध्ययन **'खुड्डागनियंठीय'** है, तो खुड्डाग का क्या अर्थ है ?

उत्तर - खुड्डाग का अर्थ है - छोटा। इसमें साधु के आचार का संक्षेप मे वर्णन हैं।

५०५ प्रश्न - वन्ध विषयक अल्पबहुत्व द्वार में वन्धक

ादि मे साकार उपयोग वाले से नोइन्द्रिय (मन) उपयोग वाले
धिक बतलाये, तो यह कैसे हो सकता है ? अपर्याप्त जीव
धिक हैं, तो उन अपर्याप्त से नोइन्द्रिय (मन वाले) अधिक
से हो सकते हैं ? अपर्याप्त में तो एकेन्द्रिय से लगा कर
चेन्द्रिय तक के जीवों का समावेश हो जाता है, तब नोइन्द्रिय मे
ो गर्भज पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव ही होते हैं। इसमे क्या रहस्य है ?

उत्तर - नोइन्द्रिय उपयोग केवल मन वाले मे ही नहीं, न्तु एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवो मे होता है। क्योंकि न्द्रियों का उपयोग तो केवल वर्त्तमान काल विषयक ही है। सलिए इस उपयोग का काल थोड़ा होता है और प्रश्न के समय ोड़े ही मिलते हैं। उसी अर्थ को इन्द्रियों से देख कर वे ही जीव चार करते हैं, उसे नोइन्द्रिय उपयोग कहते हैं। इन्द्रियों के पयोग-काल से उनके अर्थ विचार का काल लम्वा होता है। सलिए नोइन्द्रिय उपयोग वाले अधिक हैं। साकार और अनाकार नो उपयोग वालों में इन्द्रिय और नोइन्द्रिय उपयोग वाले होते हैं, मे - कल्पना से अनाकार उपयोग वाले ६४ हैं, तो उनमे इन्द्रियो उपयोग वाले १२ और नोइन्द्रिय के उपयोग वाले ५२ समझना हिए और साकार उपयोग वाले १९२ हैं, जिनमें इन्द्रिय उपयोग ले २० और नोइन्द्रिय उपयोग वाले १७२ समझना चाहिए। इस कार इन्द्रिय उपयोग वाले १२ और २० यों दोनो मिलाकर ३२ ए। तथा नोइन्द्रिय उपयोग वाले ५२ और १७२ कुल २२४ हुए। स कल्पना मे साकार उपयोग वाले १९२ और नोइन्द्रिय उपयोग ले २२४ होते हैं। इस प्रकार नोइन्द्रिय उपयोग वाले अधिक मझना चाहिए।

५०६ प्रश्न - भगवती सूत्र मुद्रित प्रति भाग १ श. १ उ
पृ. ६० प्रश्न १५ नारकी के आहार-पद के अधिकार में, दुर्गन्धयु
कडुए, कर्कश, तीक्ष्ण, भारी, ठंडे और लूखे द्रव्यों का मिथ्याद
नारक आहार करते हैं, किन्तु जो भावी तीर्थंकर हैं, वे
पुद्‌गलों का आहार नहीं करते और नरक में तो अशुभ पुद्‌गल
होते हैं, फिर भावी तीर्थंकरों के लिए अच्छे पुद्‌गल कहाँ से
हैं? वे बिना आहार के भी नहीं रहते होंगे?

उत्तर - नारकों के आहार के अधिकार में जो 'ओसण
शब्द आया है उसका अर्थ बहुलता से है। ऐसे अशुभ पुद्‌गलों
आहार समझना चाहिए, किन्तु एकान्त अशुभ नहीं। तथा
आहार के पुद्‌गलों का प्राचीन (शुभ) वर्ण, गन्ध, रस और स
के गुणों का नाश कर के नवीन (अशुभ) वर्णादि गुण उत्पन्न
के आहार करने के उल्लेख से स्पष्ट है कि वहाँ अच्छे वर्णादि
हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि नारक उन अच्छे पुद्‌गलों को भी बिगाड़
आहार करते हैं। जैसे - मनुष्यों में किसी के पित्त आदि का अ
प्रकोप हो, तो दूध आदि शुभ पदार्थ भी अशुभ रूप में परिणित
कर वमन आदि हो जाता है और किसी के आरोग्यता की प्रबल
हो, तो विष आदि अशुभ पुद्‌गल भी 'भीम' (दूसरे पाण्ड
आदि की तरह शुभरूप में परिणित हो जाते हैं।

इसके सिवाय भवनपति आदि देव, जब कारणवश नरक
जाते हैं, तब वे भी आहार के शुभ पुद्‌गल वहीं से लेते हैं। इस
स्पष्ट है कि नरक में शुभ पुद्‌गल भी होते हैं। इस प्रकार तीर्थंकर
जीव वहाँ रहे हुए शुभ पुद्‌गलों को लेता है और अपनी शुभ प्र
के कारण लिए हुए पुद्‌गलों को शुभ रूप में ही परिणमाता है।

५०७ प्रश्न - 'समाचार' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर - समाचार का अर्थ है - ठीक आचार-अपने मत के अनुरूप-अनुसार ठीक व्यवहार।

५०८ प्रश्न - पन्नवणा सूत्र पृ. ४५७ पुद्गल द्वार के अल्प-बहुत्व मे दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में सब से थोड़े पुद्गल बताये, तो इसका क्या कारण है ? क्योंकि अधोलोक क्षेत्र मे और दोनों में ऊर्ध्व से भी अधिक बतलाया है ?

उत्तर - मेरु के रुचक प्रदेश से चार प्रदेश की जो चार श्रेणी ऊँची, ठेठ लोकान्त तक सीधी गई है, वे ऊर्ध्व-दिशा हैं। इसमे पुद्गल थोड़े बताये हैं, क्योंकि ऊर्ध्व-दिशा कुछ न्यून (कम) सात रज्जु और अधोदिशा कुछ अधिक ७ रज्जु है। इस प्रकार ऊर्ध्व-दिशा से अधोदिशा विशेषाधिक है। इसलिए अधोदिशा में पुद्गल अधिक हैं और ऊर्ध्वदिशा में कम है तथा विदिशा, मुक्तावली के आकार तिरछी अधो और ऊर्ध्व लोकान्त तक समझनी चाहिए। इस प्रकार होने से तिरछी दिशा ऊर्ध्व और अधोदिशा से असंख्य गुणी बड़ी है। अर्थात् ऊर्ध्व और अधोदिशा तो एक ओर ही सात सात रज्जु के लगभग और विदिशा के प्रारम्भ के पदेशो से ऊपर और नीचे की अपेक्षा से एक-एक प्रदेश की श्रेणी को देखे तो १४ रज्जु की होती है। अतः विदिशा सिर्फ पहले और दूसरे दो प्रदेशों की चौदह-चौदह रज्जु की श्रेणी का क्षेत्र ही ऊर्ध्व या अधोदिशा के क्षेत्र के करीब-करीब तुल्य हो जाता है। इस पकार गिनने से ऊर्ध्व और अधोदिशा से विदिशा असंख्य गुणी है। इसमे पुद्गल भी असंख्यगुण अधिक वतलाये है, अर्थात् रुचक के प्रथम प्रदेश से प्रारम्भ हुई विदिशा, उसके प्रथम प्रदेश

से ऊपर और नीचे लोकांत तक विदिशा ही मानी जाती है। इ
प्रकार विदिशा के हरएक तिरछे प्रदेशों के ऊपर और नीचे ज
कहीं (लोक के) प्रदेश हों, वे सभी प्रदेश उसी विदिशा में गि
जाते है। अतः ऊर्ध्व दिशा और अधोदिशा से विदिशा असख
गुणी बड़ी है।

५०९ प्रश्न - तीस अकर्मभूमि के मनुष्यों में दृष्टि कित
होती है ?

उत्तर - तीस अकर्मभूमि के मनुष्यों में दो दृष्टि होती है
सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि।

५१० प्रश्न - संज्ञी तिर्यञ्च. पञ्चेन्द्रिय युगलिक में जलच
थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प में कितने भेद मिल
हैं ?

उत्तर - स्थलचर और खेचर संज्ञी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय युगलि
होते हैं, शेष तीन युगलिक नहीं होते हैं।

५११ प्रश्न - तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय अकर्मभूमि मां छे, छ
तिर्यच पंचेन्द्रिय ना भेद मां युगल तिर्यचों नु वर्णन केम नथी
'थोक संग्रह' मां थलचर नु उत्कृष्ट आयुष्य त्रण पल्योपम नुं अ
खेचर नुं पलना असंख्यातमां भागनुं, तो ते अकर्मभूमि आश्री हो
वली श्री पन्नवणाजी नुं पानुं १६७ मां सर्प, वाघ, सिंहादि उत्प
थाय छे-तेम टीका मां लखे छे, परन्तु उरपरिसर्प नुं आयु
'थोकसंग्रह' मां करोड़पूर्वनुं ज लखे छे, ज्यारे कर्मभूमि
उत्कृष्ट आयुष्यज करोड़पूर्वनुं होय छे तो सर्प (उरपरिसर्प)
जात छप्पन अन्तरद्वीपों मां केम होइ शके, जो होय तो आयु
वधारे होय, कारण के छप्पन अन्तरद्वीपों मां जघन्य आयु

पल्यना असंख्याता भागमां देशे उणुं लखे छे, तो थलचर ने खेचर सिवाय तिर्यच पंचेनिद्र्य बीजा युगल-क्षेत्र मां होइ शके नही, वली तिर्यच पंचेन्द्रिय ना अधिकार मां युगलिया सम्बन्धी कोई खुलासो नथी, परन्तु आयुष्यनी मर्यादा ऊपर थी जणाय के ते पण युगलिया मां उत्पन्न थता होय ?

उत्तर - अकर्मभूमि और अन्तरद्वीपों मे युगलिक (असंख्यात वर्ष की आयु वाले) और कर्मभूमि (अन्तर्मुहूर्त से करोड़ पूर्व तक की आयु वाले) इस प्रकार दोनों तरह के सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय होते हैं तथा इसी प्रकार भरत और ऐरवर्त क्षेत्र में भी युगलिक मनुष्यों के समय में ऊपर कथित दोनों तरह के तिर्यच होते हैं। अतः क्षेत्र की अपेक्षा से युगलिक तिर्यच के भेद नही किये है। परन्तु स्थिति की अपेक्षा से तो उत्तराध्ययन ३६ वें जीवाभिगम अध्ययन में तथा पन्नवणा पद ४-६ और भगवती शतक २४ आदि मे बताये है। कर्मभूमि सन्नी तिर्यच न हो कर सिर्फ युगलिक तिर्यच ही हो, ऐसा कोई क्षेत्र तिर्यच युगलियो का नही है। अतः तिर्यच पंचेन्द्रिय के अधिकार में अकर्मभूमि (युगलिक) तिर्यच का कोई खास अधिकार न बता कर पन्नवणा के छठे पद और भगवती के २४ वे शतक मे स्थितिरूप में तिर्यच युगलियों का अच्छा खुलासा दिया है। जीवाभिगम और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र के मूलपाठ से भी सिद्ध है कि युगलियो के क्षेत्र में-सर्प, बाघ, सिंह आदि होते है तथा वहाँ जो पल्योपम के असंख्यातवें भाग आदि की स्थिति बताई है, वह स्थिति तो वहाँ के मनुष्यों की अपेक्षा से बताई हुई है और वह इस जीवाभिगम के पाठ से-"**एगरूवे दीवेणं भंते ! मणुयाणं केवइयं कालं ठिइ पण्णत्ता**"-स्पष्ट होती है।

वहीं पर दूसरे सर्पादि जीवों की स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त से करोड़ पूर्व तक भिन्न-भिन्न प्रकार की बतलाई है।

५१२ प्रश्न - मार्गणा ना ५६ भेदों मांथी घणां मां भूलें जणाय छे, बोल २८ मां तिर्यंच एक संघेणवाला मां २८ भेद कह्या ज्यारे संमूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय ने एक छेवटुंज संघेण छे तो तेना दस भेद भेलवतां ३८ भेद जोइये। बोल २०४ एकान्त मिथ्यादृष्टि त्रण शरीर मां देवना भेद १८ लख्या छे ते ३६ होवा जोइये ?

उत्तर - एक संहनन वाले तिर्यंच में ३८ और एकान्त मिथ्यादृष्टि तीन शरीर में नरक का १ तिर्यंच के २९ मनुष्य के २१३ और देवो के ३६ भेद होने चाहिए।

५१३ प्रश्न - क्रियावादी समोसरण अमर नो अर्थ शुं ?

उत्तर - क्रियावादी समोसरण अमर का अर्थ - 'उस अवस्था में नहीं मरने वाले' जैसे - नरक, देव और युगलियों के अपर्याप्त एवं सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच के अपर्याप्त नहीं मरते। इसमें जीवों के भेद नरक के ६, संज्ञीतिर्यंच के ५, मनुष्य के ४५ और देवो के ८१ अपर्याप्त समझने चाहिए।

५१४ प्रश्न - उदारिक शाश्वत नो अर्थ शुं ?

उत्तर - जो औदारिक शरीर वाले जीव निरन्तर मिलते हों, उनको औदारिक शाश्वत कहते हैं। अतएव तीन शरीरी औदारिक शाश्वत मे जीव के १२३ भेद होते हैं-तिर्यंच के ३७ और मनुष्य के ८६।

५१५ प्रश्न - शाश्वत मिश्रयोगी नो अर्थ शुं ?

उत्तर - मिश्रयोग वाले जो निरन्तर मिलते हों उनको

'मिश्रयोगी शाश्वत' कहते हैं। जैसे – नरक, कर्मभूमि के मनुष्य और वैक्रिय करने वाले देवों के पर्याप्त में तो मिश्रयोग वाले तथा संज्ञी-तिर्यंच को छोड़ कर शेष तिर्यचों के अपर्याप्त में औदारिक-मिश्र और बादर वायुकाय तथा संज्ञीतिर्यच के पर्याप्त में औदारिक और वैक्रिय के मिश्रवाले निरंतर मिलते हैं। अतः शाश्वत मिश्रयोगी में जीवों के भेद १३२ होते हैं। जैसे – नरक के ७, तिर्यच के २५, मनुष्य के १५ और देवों के ८५। इनमें जहाँ 'शाश्वत' शब्द हो, वहाँ वे जीव निरन्तर मिलते हैं।

५१६ प्रश्न – एक गुणवाला, संख्यात गुणवाला, असंख्यात गुण अने अनन्त गुणवाला ते ए प्रकारना ज पुद्गलो छे के एक गुणवालो परमाणु अनन्त गुणवालो थाय के अनन्त गुणवालो होय ते एक गुणवालो थाय ?

उत्तर - भगवती सूत्र के ५ वें शतक के ७ वे उद्देशे में-एक गुण से लगा कर यावत् अनन्त गुण वाले वर्णादि २० ही वोलों की स्थिति, अन्तर तथा द्रव्य क्षेत्र अवगाहना और भाव स्थान आयुष्य की अल्प बहुत्व बतलाई है, उससे स्पष्ट होता है कि एक गुणवाले परमाणु आदि दो से लेकर अनन्त गुण पर्यन्त वाले और अनन्त गुणवाले यावत् एक गुण पर्यन्त वाले भी हो सकते है। किसी भी पुद्गल में एक गुण कालापन आदि निरन्तर स्थिर नहीं रहता।

५१७ प्रश्न - प्रदेशी राजा के ७ वें प्रश्न के उत्तर मे श्रीकेशी महाराज ने कहा कि – मशक खाली और हवा भरी हुई तोले, तो वजन में परिवर्तन नहीं होता। किन्तु प्रयोग करने पर परिवर्तन दिखाई देता है। कृपया शास्त्रीय ढंग से प्रकाश डालने की कृपा करें।

उत्तर - श्रीकेशीश्रमण महाराज का उत्तर ही ध्यान में ठीक जंचता है। यदि वायु के साथ बारीक धूल, शीत, गैस और धूम आदि मिले हुए हों, या ऐसे ही अन्य कारणों से अन्तर पड़े तो यह बात समझ में आ सकती है। अन्यथा संभव नहीं लगता। साधु अवस्था में इसका प्रयोग नहीं कर सकते, परन्तु एक इंजिनियर से बात हुई थी। उसका कहना भी यह था कि खाली और भरी अवस्था के तोल में अन्तर नहीं होना चाहिए, क्योंकि तराजु मे तोलने के बाद फूली हुई मशक की हवा निकलने से फूली हुई मशक का फुलाव बैठ जायगा और उस फुलाव की जगह तराजु में दूसरी हवा हो जायगी। इसलिए अन्तर नहीं होना चाहिए।

यह भी संभव है कि यह कथन (व्यवहार दृष्टि) स्थूल दृष्टि से किया हो।

५१८ प्रश्न - प्रश्नव्याकरण सूत्र के दूसरे संवर द्वार में यह पाठ है -

"अप्पणो थवणा परेसु निंदा, ण तंसि मेहावी, ण तंसि धण्णो, ण तंसि पियधम्मो, ण तंसि कुलीणो, ण तंसि दाणवई, ण तंसि सूरो, ण तंसि पडिरूवो, ण तंसि लट्ठो, ण पंडिओ, ण बहुस्सुओ ण वि य तं तवस्सी ण यावि परलोयणिच्छियमई।"

इस मूलपाठ का क्या अर्थ है ? क्या ये तेरह दोष अपनी स्तुति और पर की निन्दा करने वाले व्यक्ति में पाये जाते हैं ? जैसे कि -

"आप थाप कर निन्दका, तिण में तेरह दोष।
दूजे संवर देख लो, किणविध जासी मोक्ष॥"

इसका प्रथम अर्थ-अपनी स्तुति और पर की निन्दा करने

वाले पुरुष को बुद्धिमान् नहीं कहना चाहिए। वह कितना ही अच्छा कार्य करे, किन्तु उसे 'धन्य' नही कहना चाहिए, उसे प्रियधर्मी, कुलीन, दानी, शूरवीर, रूपवान, सौभाग्यवान्, पडित, बहुश्रुत, तपस्वी और परलोक-निश्चित-मति नहीं कहना चाहिए।

दूसरा अर्थ - अपनी स्तुति और पर की निन्दारूप वचन नहीं कहना चाहिए। जैसे कि - तू बुद्धिमान् नहीं है, तू धन्य ही नही है, तू प्रियधर्मी नहीं है, आदि।

उपरोक्त दोनों अर्थ में कौनसा अर्थ ठीक है और क्यों ठीक है - यह सकारण समझाइये ?

उत्तर - "अप्पणो थवणा..........परलोयणिच्छियमई" इस पाठ का आपका लिखा हुआ दूसरा अर्थ ही संगत प्रतीत होता है। क्योंकि शास्त्रकार ने मूलपाठ में मध्यम-पुरुष-वाचक शब्द (युष्मद् शब्द) का ही प्रयोग किया है। जैसे **'ण तंसि मेहावी-ण त्वं असि मेधावी'** अर्थात् तू बुद्धिमान् नही है। अन्य अर्थ भी इस प्रकार है।

जो उपरोक्त भिन्न अर्थ करते हैं, वह उपरोक्त पाठ से मेल नही खाता। उसमें अन्य-पुरुष-वाचक शब्दों का प्रयोग अपेक्षित है, जब कि शास्त्र में मध्यम-पुरुष-वाचक शब्द का प्रयोग स्पष्ट है।

पर-निन्दा रूप वचनों का स्वरूप भी आप द्वारा किये गये दूसरे अर्थ से ही स्पष्ट होता है और इस सम्बन्ध में उसी का प्रयोजन मालूम होता है। पहले अर्थ से तो निन्दक का स्वरूप मालूम होता है, वहाँ उसका प्रयोजन भी नहीं है। इसलिए दूसरा अर्थ ही संगत है।

५१९ प्रश्न - आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध की प्रथम चूलिका,

द्वितीय अध्ययन द्वितीय उद्देशक में ९ प्रकार की क्रिया वाली वसतियाँ बतलाई गई है, उनमें छठी वसति का नाम "महा-वज्जकिरिया" ('महा-वज्र क्रिया' अथवा महावर्ज्य क्रिया) है। वह वसति श्रमण-माहण यावत् वनीपक के लिए बनाई जाती है, जैन साधु के लिए नहीं, फिर उसमें ठहरने का निषेध क्यों किया है ? और इसे 'महावज्ज' क्रिया क्यों कहा है? इसमें इतना क्या दोष है ? इसमें 'श्रमण' शब्द से जैन-साधु ही संगृहीत नहीं है, क्योंकि जैन-साधु का ग्रहण तो 'सावज्ज' क्रिया नाम की सातवी वसति में किया गया है।

उत्तर - छठी 'महावर्ज्य क्रिया' नामक वसति में 'श्रमण' शब्द है। श्रमण पांच प्रकार के बताये हैं, उनमें जैन निर्ग्रन्थ भी सम्मिलित है। यहाँ 'श्रमण' शब्द से जैन-श्रमण भी सम्मिलित होता है। इसलिए जैन-श्रमण के लिए वह वसति सर्वथा त्याज्य है। **'पगणिय'** शब्द भी भिन्न-भिन्न श्रमणादि का ही निर्धारण करता है। तीसरी क्रिया के पाठ में और इस छठी के पाठ में खास **'पगणिय पगणिय'** शब्द का ही अन्तर है। इसे वह वसति, सराय रूप समझनी चाहिए।

छठी वसति में तो श्रमण अन्य अनेक माहण आदि के साथ है और सातवीं में केवल श्रमण शब्द का ही प्रयोग है। छठी और सातवीं क्रिया में यही खास अन्तर है।

आचारांग सूत्र के १० वें अध्ययन के प्रथम उद्देशे में १३ वें सूत्राङ्क के (पिंडेषणा में) भी इसी तरह का आहार सर्वथा त्याज्य बताया है। वस्त्र-पात्र एषणा अध्ययन में भी इसी तरह का उल्लेख करके निषेध किया है।

५२० प्रश्न - भगवती सूत्र श. ९ उ. ३१ में नीचे लिखा पाठ है -

"असोच्चाणं भंते ! केवलिस्स वा केवलीसावगस्स वा केवलि सावियाए वा केवलि उवासगस्स वा केवलि उवासियाए वा तप्पक्खियस्स वा तपक्खिय सावगस्स वा तप्पक्खिय सावियाए वा तप्पक्खिय उवासगस्स वा तप्पक्खिय उवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?"

उपरोक्त पाठ का अर्थ दो प्रकार से उपलब्ध होता है। जैसे कि - केवली भगवान्, केवली का श्रावक, केवली की श्राविका, केवली का उपासक, केवली की उपासिका, स्वयंबुद्ध, उनके श्रावक, श्राविका, उपासक और उपासिका। इन दस व्यक्तियों के पास सुने बिना ही केवली प्ररूपित धर्म का श्रवण (बोध) हो सकता है ?

दूसरा अर्थ - असोच्चा केवली, असोच्चा केवली के श्रावक, असोच्चा केवली की श्राविका, असोच्चा केवली के उपासक और असोच्चा केवली की उपासिका, स्वयंबुद्ध यावत् उपासिका के पास केवली प्ररूपित धर्म का सुनना मिल सकता है ?

इन दोनों अर्थो में कौनसा अर्थ ठीक है और वह किस कारण से है ? इस पाठ में '**असोच्चा**' शब्द क्या केवली भगवान् का विशेषण है, अथवा केवली प्ररूपित धर्म प्राप्त करने वाला व्यक्ति जो आगे जाकर केवली बनेगा. उसका विशेषण है ?

उत्तर - **"असोच्चाणं..........लभेज्जा सवणयाए"** इस पाठ का पहला अर्थ ही संगत प्रतीत होता है। '**असोच्चा**' विशेषण केवली भगवान् का नहीं, किन्तु केवली-प्ररूपित धर्म प्राप्त करने वाले व्यक्ति का है।

५२१ प्रश्न - भगवती सूत्र श. ९ उ ३१ में इसी प्रकरण में आगे कहा गया है कि -

"सेणं पुव्वामेव सम्मत्तं पडिवज्जइ, सम्मत्तं पडिवज्जित्ता समणधम्मं रोयइ, समणधम्मं रोयइत्ता चरित्तं पडिवज्जइ, चरित्तं पडिवज्जित्ता लिंगं पडिवज्जइ।"

यहाँ 'लिंग' शब्द का क्या अर्थ है ? क्या द्रव्य-लिंग है या भाव-लिंग है ? अर्थात् वह व्यक्ति पहले बाबा, जोगी आदि किसी वेश में था ? क्या वह जैन साधु का वेश (रजोहरण मुखवस्त्रिका आदि) पहन लेता है, अथवा भावलिंग का परिवर्तन होता है ? यदि वह द्रव्य-लिंग का परिवर्तन करता है, तो क्या केवलज्ञान होने से पहले वेश-परिवर्तन कर सकता है ? यदि वेश-परिवर्तन कर लेता है, तो फिर दूसरों को दीक्षा क्यों नहीं देता ? उपदेश क्यों नहीं देता ? यदि भावलिंग अर्थ किया जाय, तो भावलिंग क्या परिवर्तन करता है ?

उत्तर - **"सेणं पुव्वामेव.....लिंगं पडिवज्जइ"**। इसमे लिग शब्द का अभिप्राय 'भाव' से है। जिस प्रकार वह भाव से चारित्र स्वीकार करता है, उसी प्रकार मुनिवेश (रजोहरण मुखवस्त्रिकादि) भी भाव से स्वीकार करता है, अर्थात् वह अपने वर्त्तमान लिंग को हेय और जैन मुनि-लिंग को (यतना आदि में सहायक होने से) उपादेय समझता है। इसी दृष्टि से शास्त्र में लिंग परिवर्तन बताया है। हेय-उपादेय की भावना उसमे उत्पन्न होने से ही यह लिंग-परिवर्तन बताने का संभव है तथा भावलिंग ज्ञानादि - "ज्ञानाऽऽदि भावस्यार्हतामेव भावात्" अर्थात् कुज्ञानादि को छोड़ कर सुज्ञानादि को स्वीकार करना-भाव लिंग परिवर्तन है तथा समिति-गुप्ति

आदि के पालन को भावलिंग (चिह्न) स्वीकार किया समझना चाहिए।

नोट - केवलज्ञान होने के पूर्व भी लिंग (वेश) परिवर्तन कर सकते हैं, परन्तु उपरोक्त कथन से यह सम्बन्धित नही है - यही प्रतीत होता है। तत्त्व केवलीगम्य।

५२२ प्रश्न - मरुदेवी माता के कितने युगल उत्पन्न हुए ?

उत्तर - मरुदेवी के एक ही युगल जन्मा-ऐसा संभव है।

५२३ प्रश्न - मल्लिनाथ भगवान् के, रात्रि को वे सभी कल्प होते थे जो अन्य साध्वियों के होते हैं ?

उत्तर - मल्लिनाथ प्रभु कल्पातीत होते हुए भी छद्मस्थों के विकार, विचार और व्यवहार की रक्षा के लिए रात्रि को पुरुषों की परिषद् में नहीं रह कर साध्वियों की परिषद् मे ही रहते थे। सूत्र में उनकी आभ्यन्तर परिषद् साध्वियों की ही बतलाई है। इसलिए रात्रि को उनका इस विषय में साध्वी की मर्यादा के अनुसार ही रहना होता था और उनकी वैयावृत्य भी साध्वियां ही करती थी।

५२४ प्रश्न - भगवान् महावीर ने छद्मस्थ अवस्था में १० स्वप्न देखे, उनमें से ९ वे स्वप्न को किस प्रकार समझे ?

उत्तर - अपनी वेडूर्य रंग की आँतों से मानुपोत्तर पर्वत को सभी ओर से आवेष्टित परिवेष्टित हुआ देखा। इसका फल तीनों लोक मे भगवान् की यश-कीर्ति अत्यन्त व्याप्त हुई।

५२५ प्रश्न - भगवान् मल्लिनाथ को गणधर और साधु वन्दना करते थे या नही ? यदि करते, तो 'पुरुषज्येष्ठ कल्प' कैसे रहा ?

उत्तर - शासनाधिपति, तीर्थनाथ तीर्थकर भगवान् होने के कारण उन्हें गणधरादि सभी वन्दना करते थे-साध्वी के नाते नहीं। कल्प जो है वह सामान्य साधु-साध्वी की अपेक्षा से है, तीर्थंकर की अपेक्षा से नहीं। मल्लिनाथ भगवान् का स्त्री-पर्याय में होना आश्चर्य रूप है और अनन्त काल के बाद कभी ऐसा प्रसंग आता है।

५२६ प्रश्न - तीर्थंकर भगवान् के सिवाय कोई दूसरा मनुष्य अवधिज्ञान साथ ले कर गर्भ में आता है क्या ?

उत्तर - भगवती, प्रज्ञापना, जीवाभिगम आदि सूत्रों में अवधिज्ञान की कायस्थिति उत्कृष्ट ६६ सागरोपम जाजेरी बताई है। वह कायस्थिति तीर्थंकर के अतिरिक्त दूसरे मनुष्य, परभव से अवधिज्ञान साथ ले कर आवे, तभी लागू हो सकती है, तीर्थंकर की अपेक्षा नहीं। क्योंकि विजयादि अनुत्तर-विमान के दो भव अथवा बारहवें देवलोक या प्रथम ग्रैवेयक के तीन भव करे, तभी पूर्ण हो सकती है। ऐसे दो या तीन भव सामान्य मनुष्य ही करते हैं, तीर्थंकर भगवान् तो मोक्ष पधार जाते हैं। इसलिए उनकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती।

भगवती सूत्र श. १३ उ. १ व २ में नरक और देवों से संख्यात अवधिज्ञानी जीवों का आना बताया है। इससे भी उपरोक्त बात सिद्ध होती है कि तीर्थंकर के सिवाय दूसरे मनुष्य भी परभव से अवधिज्ञान लेकर आ सकते हैं।

५२७ प्रश्न - मनुष्य के मस्तक में मणि पैदा होती है - ऐसा प्रज्ञापनासूत्र के ९ वें पद के अर्थ में लिखा है, सो यह किस पकार है ?

उत्तर - सूत्रकृतांग सूत्र अ. १९ (श्रु. २ अ. ३) और ज्ञापना पद ९ के मूलपाठ को देखते, त्रस और स्थावर के सचित्त ौर अचित्त शरीर रूप अनेक स्थानों में पृथ्वीकाय का उत्पन्न ोना सिद्ध होता है। उस पाठ से मनुष्य के मस्तक में मणि त्पन्न होने का जो पन्नवणा के अर्थ में लिखा है, वह ठीक प्रतीत ोता है ✤।

५२८ प्रश्न - संवृत्त और विवृत्त योनि किसे कहते हैं ? ारकी और देवता की एकसी योनि किस अपेक्षा से है ?

उत्तर - जीव के उत्पत्ति स्थान को 'योनि' कहते हैं। जिन ीवों का उत्पत्ति-स्थान स्पष्ट मालूम नहीं होता हो, उसे 'संवृत्त ोनि' कहते हैं, जैसे - देव, नारक और एकेन्द्रिय जीवों की। क और देव का उत्पत्ति स्थान अप्रकट होने की समानता से नों की योनि समान बताई गई, सुख-सौन्दर्यादि की अपेक्षा ीं। गर्भज जीवों का अन्तरंग उत्पत्ति स्थान दिखाई नहीं देता। न्तु वाह्य उदरवृद्धि आदि दिखाई देती है। अतः इनकी योनि का म 'संवृत्त-विवृत्त योनि' है।

५२९ प्रश्न - 'कूर्मयोनि' में उत्तम पुरुष उत्पन्न होते हैं, सा कहा जाता है, तो क्या उत्तम पुरुष के सिवाय और भी उत्पन्न ते हैं या नहीं ?

उत्तर - कूर्मोन्नता योनि मे अरिहन्त (तीर्थकर) चक्रवर्ती, लदेव और वासुदेवों के अतिरिक्त उनके छोटे और बड़े बहिन ार भाई आदि सामान्य मनुष्य भी उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे

✤ प्राचीन प्रभावक पुरुषों के चरित्रों मे किसी-किसी के मणि होने ा ग्रन्थो मे उल्लेख पढने मे आया है-डोशी।

भगवान् ऋषभदेव की सहोदरा सुमंगला उत्पन्न हुई थी। भर
चक्रवर्ती के ब्राह्मी बहिन और ९८ भाई सहोदर थे। मल्लिप्रभु के
मल्लिदिन्न कुमार लघुभाई था। अरिट्ठनेमि, रहनेमि, सत्यनेमि औ
दृढ़नेमि, ये चारों सहोदर भाई थे। श्रीकृष्ण वासुदेव के ६ भाई ब
और एक छोटे, यों आठ सहोदर थे। प्रभु महावीर के बड़े भा
नन्दिवर्धन और बड़ी बहिन सुदर्शना थी। इस प्रकार और भ
समझ लेना चाहिए।

५३० प्रश्न - पन्नवणा में २५६ 'ढगले' बताये, उनक
लम्बाई चौड़ाई कितनी ?

उत्तर - सभी जीवों की राशि अनन्तानन्त होते हुए भ
समझाने के लिए, असत्कल्पना से जीवों का परिमाण २५६ क
कल्पित कर के टीकाकार ने आयुकर्म के बन्धक आदि १४ बो
समझाये। उन २५६ कल्पित जीवों की राशि को ढगले (ढेर) रू
में कल्पना करें, तो भी हर्ज नहीं। एक-एक ढगले में अनन्त
अनन्त (समान) जीव समझना चाहिए। यहाँ ढगलों की लम्बा
चौड़ाई और ऊँचाई का प्रश्न नहीं है। क्योंकि ये किसी वस्तु के
ढगले (ढेर) नहीं हैं किन्तु असत्कल्पना से जीवों के वर्ग करके
समझाया गया है।

५३१ प्रश्न-इन्द्रियों के विषय और उपयोग में क्या अन्तर है

उत्तर - द्रव्य-इन्द्रिय की अपेक्षा विषय ग्रहण और भावेन्द्रि
की अपेक्षा उपयोग समझना चाहिए।

५३२ प्रश्न - चक्षु इन्द्रिय का विषय एक लाख योजन
है, यह तो संज्ञी पंचेन्द्रिय के उत्तर वैक्रिय का है, किन्तु चौरेन्द्रि
का और असंज्ञी पंचेन्द्रिय का कितना है ?

उत्तर - चौरेन्द्रिय के चक्षु इन्द्रिय का विषय उत्कृष्ट २९५४ धनुप और असंज्ञी पंचेन्द्रिय का ५९०८ धनुप का है। इनके वैक्रिय-शक्ति का अभाव होने पर भी ये इतनी दूर तक देख सकते हैं।

५३३ प्रश्न - कार्मण-योग के साथ तैजस् का क्या सबंध है ?

उत्तर - तैजस् योग तो होता ही नहीं। तैजस् और कार्मण शरीर तो प्रत्येक संसारी जीव के निरन्तर रहते ही हैं। मुक्ति प्राप्त करते समय ही ये शरीर छूटते हैं। अतः कार्मणयोग के समय भी तैजस् शरीर तो रहता ही है।

५३४ प्रश्न - प्रज्ञापना सूत्र पद २० में लिखा है कि - 'भवनपति के भवनों में सिद्ध होवे' सो यह किस अपेक्षा से है ?

उत्तर - प्रज्ञापना सूत्र पद २० के तो अर्थ मे लिखा है, किन्तु भगवती सूत्र श. ९ उ. ३१ के तो मूलपाठ में भी सहरण की अपेक्षा भवन में सिद्ध होना लिखा है। मनुष्य-क्षेत्र की सीध वाले भवनपति देव के निवास स्थान में कोई देव, मनुष्य का संहरण करके ले गया हो, तो वहां से भी सिद्ध हो सकते है।

५३५ प्रश्न - जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड से मोक्ष पाने वाले सिद्धों का क्षेत्र से अन्तर प्रत्येक वर्ष का वताया सो, यह किस अपेक्षा से है ?

उत्तर - नवीन सिद्ध होने वाले का जो अन्तर उत्कृष्ट छह महीने का है, वह सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र की अपेक्षा से हे। समुच्चय जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, जम्बूद्वीप के महाविदेह और धातकीखण्ड के दोनों महाविदेह से सिद्ध होने वालों का उत्कृष्ट अन्तर पृथक्

वर्ष का है। पुष्कर द्वीप का समुच्चय और उसके दोनों महाविदेह का उत्कृष्ट अन्तर एक वर्ष से कुछ अधिक है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न क्षेत्र की अपेक्षा अन्तर होने से कोई बाधा नहीं आती है।

५३६ प्रश्न - तीर्थंकर सिद्ध होने का अन्तर अनन्तकाल का किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर - तीर्थंकर सिद्ध होने का उत्कृष्ट अन्तर पृथक् सहस्त्र पूर्व (दो हजार से ले कर नव हजार पूर्व तक) का है, अनन्तकाल का नहीं।

५३७ प्रश्न - प्रज्ञापना पद २१ में तैजस्-शरीर का संठाण पृथक् कहा है, सो यह किस प्रकार है ?

उत्तर - जीव-प्रदेशों में व्याप्त तैजस् शरीर का संस्थान (आकार) उस योनि के औदारिक और वैक्रिय-शरीर के आकार के अनुसार ही होता है। अर्थात् जिस जीव के जैसा औदारिक या वैक्रिय-शरीर का संस्थान होता है, उसके वैसा ही संस्थान तैजस् और कार्मण-शरीर का भी होता है।

५३८ प्रश्न - बेइन्द्रिय के तैजस् और कार्मण की अवगाहना मोटाई और चौड़ाई में शरीर प्रमाण और लम्बाई में तिच्छीं लोक से लोकान्त तक बताई, तो क्या ऊँचे-नीचे लोक में बेइंद्रियादि नहीं है ।

उत्तर - बेइन्द्रिय जीवों का स्वस्थान प्रायः तिर्यग्लोक में है। ऊर्ध्व और अधोलोक के कोई एक हिस्से में अल्प है। जो है वे भी तिर्यक्-लोक स्थित पर्वतादि का कुछ हिस्सा ऊर्ध्व और अधोलोक में चला गया उसी में है। परन्तु देवलोक की बावड़ियों, ऊर्ध्व-लोक की तमस्काय, घनोदधि आदि में नहीं है तथा अल्प

परिमाण के कारण ऊर्ध्व-अधोलोक की अपेक्षा छोड़ कर वहाँ अवगाहना बतलाई है।

५३९ प्रश्न - चारों जाति के देवता तीसरी नरक के नीचे की पृथ्वीकायपने उत्पन्न होते हैं, तो उसके नीचे उत्पन्न नहीं होने का क्या कारण है ?

उत्तर - नरक की पृथ्वीकाय में (तथा कोई तीसरी नरक के नीचे की पृथ्वीकाय में) देव उत्पन्न नहीं होते, ऐसा २१ वें पद की टीका से संभव होता है। किसी प्रयोजन से देव, तीसरी नरक मे गये हो और वहीं आयु क्षय होने पर मर कर कोई अन्यत्र उत्पन्न होने की अपेक्षा से तैजस् की अवगाहना, तीसरी नरक से ऊँचे में सिद्धशिला तक की बताई-ऐसा संभव है।

५४० प्रश्न - नागकुमारादि भवनपति की राजधानी, अरुणोदधि से कितनी नीची है ?

उत्तर - चमरेन्द्र की राजधानी तीसरे अन्तरे में है। वह अरुणोदधि समुद्र से चालीस हजार योजन नीचे बताई है। शेष नीचे के ९ अन्तरों में अनुक्रम से नागकुमार आदि के इन्द्रों की राजधानियाँ हैं।

५४१ प्रश्न - तैजस् और कार्मण शरीर का बन्धन और संघातन किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर - तैजस् शरीर योग पुद्गलों को एकत्रित करने में जो कर्मप्रकृति हेतु बने, वह तैजस्-संघात और पहले के तैजस् पुद्गलों के साथ नवीन तैजस् पुद्गलों को जोड़ने के हेतु भूत कर्म प्रकृति को तैजस् बन्धन कहते हैं। इसी प्रकार कार्मण के भी बन्धन और संघात समझना चाहिए।

५४२ प्रश्न - तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों में से स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, अमुक नरक से आगे नहीं जा सकते, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - स्थलचरादि तिर्यंच और स्त्री, अमुक नरक से आगे नहीं जा सकती, इसका कारण उनका स्वभाव है। उस अवस्था में रहते हुए अर्थात् पर भव के आयुष्य का बंध करते समय उनमें विशेष बन्ध करने के अध्यवसाय ही उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

५४३ प्रश्न - भवनपति, व्यन्तर और पहली नरक में जीव के तीन भेद लिये हैं, इसका क्या कारण है ? यदि असन्नी की अपेक्षा से कहें, तो देव और नारक-भव पा कर भी वह असन्नी माना गया ? जबकि उसी समय सन्नी से आकर साथ ही उत्पन्न होने वाले को तो उत्पत्ति के समय और अपर्याप्त अवस्था मे भी सन्नी माना गया है ?

उत्तर - भवनपति, व्यन्तर और पहली नरक के अपर्याप्त अवस्था में ही सन्नी असन्नी का भेद रहता है, बाद में नहीं। पर्याप्त होने पर तो सभी सन्नी हो जाते हैं। जो असन्नी जीव, नरक और देव में उत्पन्न होते हैं, वे जब तक अपर्याप्त रहते हैं तब तक उनमें दो अज्ञान ही रहते हैं, उनमें न तो 'विभंग' नामक अज्ञान होता है और न तीन ज्ञान ही होते हैं, किन्तु जो सन्नी से आकर उत्पन्न होते हैं, उनमें या तो तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं। दोनों में यह खास अन्तर हैं।

५४४ प्रश्न - देव और नारक के आहार करने के विषय में जो लिखा है कि वे असंख्यातवें भाग लेते हैं और अनन्तवे भाग का आस्वादन करते हैं, तो उनके कवल आहार तो है ही नहीं, फिर आस्वादन कैसे करते होंगे ? आस्वादन तो रसनेन्द्रिय से होता है?

उत्तर - कवल आहार नहीं होते हुए भी आहार के रस का रसनादि द्वारा आस्वादन करते हैं।

५४५ प्रश्न - नरक में वर्णादि २० बोल के आहार का उल्लेख आहार पद में हुआ है, नरक में तो अशुभ पुद्‌गल ही हैं तो शुभ वर्ण, शुभ गन्ध और शुभ रस का आहार वहाँ कैसे होता होगा ?

उत्तर - नरक में शुभ और अशुभ दोनों तरह के पुद्‌गल हैं। शुभ थोडे और अशुभ अधिक। नैरयिक की प्रकृति के अनुसार उन्हें अशुभ पुद्‌गल ही अधिक प्राप्त होते हैं। यह बात नारक के आहाराधिकार के **'ओसण्णं'** शब्द से स्पष्ट है तथा जो शुभ वर्णादि के पुद्‌गल आहार में प्राप्त होते हैं। उनका भी पहले का शुभ वर्णादि गुणों का नाश कर के नवीन अशुभ वर्णादि कर लेते हैं। इससे भी सिद्ध है कि शुभ वर्णादि के पुद्‌गल वहां होते हैं और नैरयिक उन्हें लेते भी हैं तथा जब भवनपति आदि देव, नरक में जाते हैं, तब वे भी तो वहीं के पुद्‌गलों का आहार करते हैं और उनके आहार में वहाँ रहे हुए शुभ पुद्‌गल ही आते हैं। इससे भी सिद्ध है कि नरक में शुभ पुद्‌गल हैं।

नैरयिक कुछ शुभ पुद्‌गलों का आहार भी लेते है तभी आहार लेने के २८८ बोल पूरे होते हैं, अन्यथा नही।

५४६ प्रश्न - मनःपर्यवज्ञान का दर्शन क्यों नहीं होता ?

उत्तर - मनःपर्यवज्ञान विशेषग्राही है। वह मनोगत भावो को ही जानने वाला है। इसलिए इसके अचक्षुदर्शन के सिवाय अन्य दर्शन की सहायता की आवश्यकता नही रहती।

५४७ प्रश्न - निगोद के जीव तो वहुत ही सूक्ष्म होते है, फिर उनके समुद्‌घात कैसे होती होगी ?

उत्तर - निगोद के जीवों में तीन समुद्घात होती है - वेदनीय-कर्म के प्रबल उदय से वेदना-समुद्घात २. कषाय प्रबलता में कषाय-समुद्घात और ३. मरण काल में मारणान्ति समुद्घात होती है। मृत्यु के प्रसंग पर जो मारणान्तिक समुद्घ होती है, वह चौड़ाई और मोटाई में तो जघन्य और उत्कृष्ट अंगु के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होती है, परन्तु लम्बाई में जघ अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लोकान्त से दू लोकान्त तक-असंख्यात योजन प्रमाण होती है। कोई निगोद एक शरीर के सभी जीव, एक साथ समुद्घात करके एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं और कोई-कोई जीव भिन्न समुद्घात कर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भी उत्पन्न होते हैं।

वेदना, कषाय और मृत्यु तो सभी संसारी जीवों के होती चाहे छोटे हों या बड़े। वेदना में प्रबलता होने पर समुद्घात जाती है।

५४८ प्रश्न - अनुत्तर-विमान के देवों की कषायें तो बहु ही शांत होती हैं, फिर उनके कषाय-समुद्घात कैसे होती होगी

उत्तर - अनुत्तर विमान के देवों के कषाय उपशांत होते हु भी मन्द रूप से कषाय-समुद्घात होने की संभावना है। भगव सूत्र श. २४ में लब्धि की अपेक्षा उनमें ५ समुद्घात बताई गई हैं उनमें से तैजस् और वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग वे करते नहीं है अतएव उनमें शेष तीन समुद्घात होती हैं।

५४९ प्रश्न - पहली नरक में काण्ड है, तो शेष में क नहीं है ?

उत्तर - रत्न, पंक आदि की भिन्नता के कारण प्रथम नरक

में काण्ड (विभाग) होते हैं, शेष नरकों में इस प्रकार की भिन्नता नहीं है।

५५० प्रश्न – **"आउज्जीकरण"** किसे कहते हैं ?

उत्तर – केवली-समुद्घात के पूर्व किये जाने वाले मन, वचन और काया के शुभ व्यापार को **आउज्जीकरण** (आवर्जीकरण) कहते हैं। इसे 'आयोजिका करण' भी कहते हैं। आत्मा को मोक्ष के सम्मुख करने वाले करण को 'आयोजिका करण' कहते हैं।

५५१ प्रश्न – अंगसूत्रों में उपांगसूत्रों की भलावण क्यों दी गई है ?

उत्तर – किसी विषय को एक स्थान पर विस्तारपूर्वक लिख कर, अन्य स्थान पर उसकी भलावण देने से ग्रन्थ का विस्तार नहीं होता। किसी विषय की भलावण जहाँ उपयुक्त हो वहाँ दी जाती है, फिर भले ही वह अंगसूत्र हो या उपांग। यदि पन्नवणा सूत्र की भगवती सूत्र में भलावण नही दी जाती, तो सारा पन्नवणा सूत्र ही प्रायः भगवती सूत्र में समा जाता और भगवती सूत्र बहुत बड़ा हो जाता। फिर पन्नवणा सूत्र का स्थान ही रिक्त हो जाता, इत्यादि कई कारण हैं।

५५२ प्रश्न – भवनपति देव के अवधिज्ञान का ऊँचा क्षेत्र पहले और दूसरे देवलोक तक का है और वैमानिक देव के अवधिज्ञान का ऊपर देखने का विषय अपने विमान की ध्वजा पताका देखने तक का ही है। क्या कारण है कि वैमानिक देव विशेष ऋद्धि एवं शक्ति सम्पन्न होते हुए भी उन के ऊर्ध्व अवलोकन का क्षेत्र भवनपति देवों से कम है ?

उत्तर – यह अन्तर स्वाभाविक है। वैसे अवधिज्ञान

स्वभाव वाला है। उस जाति के देवों के ऊर्ध्व अवलोकन का ऐसा ही स्वभाव है। इसका एक लाभ उन्हें यह होता है कि वे वैमानिक देव, अपने विमानों से ऊपर के देवलोक के देवों को और उनकी अपने से विशेष ऋद्धि आदि नहीं देख सकने के कारण उनके मन में खिन्नता उत्पन्न नहीं होती।

५५३ प्रश्न - चन्द्र-सूर्य असंख्यात हैं, तो इन्द्र कितने हैं ? और जिन-जन्माभिषेक आदि उत्सवों पर कौन से इन्द्र आते हैं ?

उत्तर - ज्योतिषियों के जो असंख्य चन्द्र और सूर्य होते हैं, वे सभी इन्द्र होते हैं, किन्तु जाति मात्र की दृष्टि से दो ही बतलाये हैं। उत्सव के समय जिस क्षेत्र के तीर्थंकर होते हैं, उस क्षेत्र के चन्द्र-सूर्य तो आते ही हैं और अन्य क्षेत्र के चन्द्र-सूर्य भी आना चाहें, तो आ सकते हैं।

५५४ प्रश्न - प्रज्ञापनासूत्र के लेश्या-पद में और भगवती सूत्र श. १ उ. २ में १२४२ अलावा में क्या अन्तर है ? यदि अन्तर नहीं है, तो दोनों स्थानों पर एक सरीखा पाठ देने का क्या कारण है ?

उत्तर - दोनों स्थानों के पाठ में कुछ-कुछ अन्तर है, सर्वथा समान नहीं है, किन्तु भाव तो समान ही है। एक ही बात को दूसरी बार कहने में ये कारण होते हैं-प्रतिषेध (निषेध) अनुज्ञा (आज्ञा) और एक प्रकार के हेतु का कथन, विभिन्न प्रकार के श्रोताओं के कारण तथा प्रश्नकार अन्य होने के कारण, एवं सम्बन्ध पूर्ति आदि कारण से भी एक बात पुनः कही जाती है तथा प्रज्ञापना का विषय श्री श्यामाचार्य ने पूर्वो में से लिया है। इत्यादि [illegible] से आगमों में कोई विषय दूसरी बार भी आता है।

५५५ प्रश्न - देवोत्पत्ति के १४ बोल भिन्न-भिन्न तीन सूत्रो में क्यों आये ?

उत्तर - देवों में उत्पन्न होने वालों के १४ बोल भगवती सूत्र में तो हैं ही, प्रज्ञापना सूत्र में आये वे पूर्वो से उद्धृत होने के कारण आये हैं और उववाई सूत्र में इन १४ में से कई बोल नही आये तथा कई इनके सिवाय भी आये हैं। वहाँ जघन्य कहाँ कहाँ उत्पन्न होते हैं - यह नहीं बता कर उत्कृष्ट ही बताये हैं और कई बोलों का वर्णन वहाँ विस्तार से भी है। इस प्रकार दोनों अधिकारों में भिन्नता है।

५५६ प्रश्न - छद्मस्थ में अवधिज्ञानी को क्यों नहीं गिना? भगवती सूत्र श. १ उ. ४ में तो पृथक् गिने ?

उत्तर - सामान्य छद्मस्थ के कथन में अवधि और परम अवधिज्ञानी भी सम्मिलित होते हैं, किन्तु विशेष कथन में पृथक्-पृथक् भी बतलाये जाते हैं। वहाँ विशेष बोध के लिए छद्मस्थ अवधिज्ञानी और परम अवधिज्ञानी भिन्न-भिन्न बतलाये हैं।

५५७ प्रश्न - भूचर मनुष्य एक समय में दो सूर्य को देख सकता है क्या ?

उत्तर - विशेष शक्तिशाली यंत्र की सहायता से और अपनी-अपनी मर्यादा में रहे हुए दो सूर्य के आताप के संधिक्षेत्र मे रहे हुए मनुष्यों के सिवाय शेष भूचर मनुष्य, चर्म-चक्षु से दो सूर्यो को देखले, यह शक्य नहीं है। प्रतिसूर्य का कभी दिखाई देना अपवाद रूप है।

५५८ प्रश्न - द्वीप, एक हजार योजन ऊँडा किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर - द्वीप और समुद्र की सीमा प्रमाण अंगुल से एक हजार योजन नीचे की ओर है।

५५९ प्रश्न - वाटला वैताढ्य पर्वत पर सूक्ष्म वर्षा होती है, तो क्या बादर अप्काय की वर्षा भी होती है या नहीं ?

उत्तर - वाटला (वर्तुल वृत्त-गोल) वैताढ्यों पर सूक्ष्म पानी पड़ता है, बादर पानी नहीं पड़ता। कभी देवादि वर्षा कर दें, तो वहां बादर पानी भी मिल सकता है।

५६० प्रश्न - गर्भ में निहार नहीं होता, किन्तु प्रसव के बाद निहार होता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - जन्म के बाद बाहर की हवा, कवल-आहार (घूंटी आदि) से निहार (दस्त-टट्टी लगना) होता है।

५६१ प्रश्न - नरक में ७ घनवाय ७ तनवाय और ७ घनोदधि बताई और देवलोक में घनवात, तनवात और घनोदधि होते हुए भी प्रश्न नहीं किया, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. २ उ. ७, श. ६ उ. ५ तथा श. ६ उ. ८ और जीवाभिगम आदि में घनोदधि आदि के आधार से अमुक देवलोक है, आदि बताया है। विशेष अधिकार स्थानांतर होने की संभावना है।

५६२ प्रश्न - क्या नमि विनमि राजा को इतना ज्ञान था कि जिससे वे भरत के मन की बात जान गये ?

उत्तर - नमि और विनमि विद्याधरों के राजाओं ने अपने दिव्य अनुभवोत्पन्न मतिज्ञान से भरत के मनोगत भावों को जाना-ऐसा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के मूल पाठ और टीका से स्पष्ट है। उनके ... जानने के अन्य साधन थे, फिर भी भरत नरेश के मन के

भाव उन्होंने अपनी दिव्य-मति से जाने। सौधर्म और ईशान देवलोक की देवियाँ भी मन परिचारणावाले देवों के भाव, अपनी दिव्य-मति से जान लेती है, उसी प्रकार उन्होंने भी जाना।

५६३ प्रश्न - चक्रवर्ती के चर्मरत्न के पुद्गल सचित्त हैं या अचित्त हैं ?

उत्तर - प्रज्ञापना सूत्र के २० वें पद में उल्लेख है कि असुरकुमार से लगा कर ईशान देवलोक तक के जीवों में से मरकर कोई जीव, चक्रादि सातों रत्नों में से किसी भी रत्न के रूप में उत्पन्न होता है। श्री स्थानांग सूत्र के सातवें स्थान में सात 'एकेन्द्रिय' रत्न कहे हैं। टीका में लिखा है कि - 'पृथ्वीरूपे रत्ने' इसके सिवाय समवायांग, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और प्रवचनसारोद्धार आदि देखने से यह स्पष्ट होता है कि चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न सचित्त (सजीव) होते हैं।

५६४ प्रश्न - ज्योतिषी के चिह्न में ग्रह, नक्षत्र, तारा के चिह्न की क्या आकृति है ?

उत्तर - **"पत्तेयंणामंक-पागडियंचिंध-मउडा"** - इस स्थानपद के पाठ व अर्थ से चन्द्र आदि पांचों ज्योतिषियों के मुकुट में अपने-अपने विमान (मंडल) का चिह्न होता है।

५६५ प्रश्न - अनुत्तर-विमान और ग्रैवेयक में वेदक सम्यक्त्व क्यों नहीं पाती ?

उत्तर - क्षायिक-वेदक तो केवल मनुष्य में-क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होने के पूर्व पाई जाती है, मनुष्य के सिवाय दूसरों में नहीं और क्षयोपशम-वेदक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होते समय होती है। ग्रैवेयक विमान में सम्यग्दृष्टि के मिथ्यादृष्टि

और मिथ्यादृष्टि के सम्यग्दृष्टि होने की सम्भावना नहीं है, इसलिए वहाँ वेदक समकित नहीं होती है।

५६६ प्रश्न - ग्रैवेयक में दूसरा गुणस्थान पाता है, तो सास्वादन समकित क्यों नहीं पाती ?

उत्तर - अधिक मान्यता तो ग्रैवेयक में दूसरा गुणस्थान नहीं मानने की है, इस अपेक्षा से वहाँ सास्वादन समकित नहीं मानी जाती है।

५६७ प्रश्न - क्षायिक-सम्यक्त्व में संज्ञी तिर्यञ्च के केवल दो भेद ही लिये, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - स्थलचर युगलिक तिर्यञ्च के दो भेद के अतिरिक्त अन्य तिर्यञ्च आयु का बन्ध जिस मनुष्य के हुआ हो, वह क्षायिक-सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए क्षायिक समकित में केवल स्थलचर तिर्यञ्च युगलिक के दो भेद ही लिये हैं। खेचर युगलिक तिर्यञ्च तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

५६८ प्रश्न - भगवती सूत्र श. २ उ. १ में एकेन्द्रिय के प्रश्न में वायुकाय का समावेश हो ही गया, फिर वायुकाय का प्रश्न पृथक् क्यों पूछा गया ?

उत्तर - वायुकाय के श्वास लेने के विषय में कोई भिन्न प्रश्न नहीं पूछा गया है। पृथिव्यादि जीव तो वायु रूप श्वास लेते हैं, परन्तु वायु स्वयं वायु रूप है, तो वायुकाय के जीव, वायु का ही श्वास लेते हैं या अन्य ? बस यही विचार इस प्रश्न के पीछे है।

५६९ प्रश्न - भगवती सूत्र में खन्दकजी के अधिकार से उनके देहावसान के विषय में "**कालगए**" शब्द आया है। यहाँ '**कालमासे कालं किच्चा**' - ऐसा क्यों नहीं आया ?

उत्तर - दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। **'कालगए'** का अर्थ- 'मृत्यु को प्राप्त हुए' हैं और दूसरे का अर्थ - 'काल के अवसर आने पर काल कर के' होता है। यह अर्थ अपनी पूर्णता में आगे के शब्दों की अपेक्षा रखता है। जहाँ जिस अर्थ की अपेक्षा हो, वहाँ वैसे शब्द का प्रयोग होता है।

५७० प्रश्न - पंचास्तिकाय में अनन्त प्रदेशात्मक कौन-कौन हैं ?

उत्तर - आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय अनन्त प्रदेशात्मक है।

५७१ प्रश्न-कषाय पद में पांच स्थावर के विषय में आभोग, अनाभोग, उपशान्त, अनुपशान्त आदि किस प्रकार समझे जावें ?

उत्तर - भवान्तर में अनुभव किये हुए और विरति के अभाव में स्थावर और विकलेन्द्रिय मे-मृषावाद, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, मायामृषावाद आदि सभी पाप हैं और इसी तरह ये चारों कषाये भी हैं।

५७२ प्रश्न - वैमानिक के चारों लोकपालों की राजधानी कहां हैं ?

उत्तर - भगवती सूत्र श. ३ उ. ७ में शक्रेन्द्र के लोकपालो की राजधानी, अपने-अपने विमानों की सीध मे नीचे (तिर्यग् लोक में) बताई है। इसी प्रकार चौथे शतक के ५, ६, ७ और ८ वें उद्देशे में ईशानेन्द्र के लोकपालों की भी बताई है। तथा २१ वें कुंडलवरद्वीप में शक्र और ईशानेन्द्र के लोकपालों की सोलह-सोलह राजधानियाँ 'द्वीपसागरप्रज्ञप्ति' में बताई है, ये और वे भिन्न-भिन्न समझनी चाहिये।

५७३ प्रश्न - स्थानांग सूत्र के तीसरे ठाणे में तीन प्रकार का परिग्रह बताया है। सचित्त, अचित्त और मिश्र। यह चौवीस ही दण्डक के लिए है, तो स्थावरकाय जीवों के ऐसा परिग्रह कौनसा है ?

उत्तर - सचित्त परिग्रह शरीर और अचित्त परिग्रह उत्पत्ति स्थानादि तथा मिश्र परिग्रह श्वासोच्छ्वास युक्त शरीर है।

५७४ प्रश्न - दशवैकालिक सूत्र अ. १ में लिखा है कि **"न य पुप्फं किलामेइ"** तो क्या भौंरा फूल से रस लेता है, तो फूल के जीवों को कष्ट नहीं होता ?

उत्तर - भंवरा, स्थूल रूप से फूल के जीवों को कष्ट नहीं देता (खंडित नहीं करता) किन्तु सूक्ष्म रूप से तो फूल को कष्ट होता है। इसलिए भंवरे का रस ग्रहण अनैषणीय है और इसी लिए शास्त्रकार ने आगे तीसरी गाथा में साधु को **'एषणा में रत'** बतलाया है। इससे यह बात स्पष्ट होती है।

५७५ प्रश्न - देव, भूत और भविष्य के कितने काल की बातें जाने-देखे ?

उत्तर - देव, संख्यात और असंख्यात भूत और भविष्य काल की बात जान सकते हैं।

५७६ प्रश्न - पांचों स्थावर, पांचों स्थावरों का श्वासोच्छ्वास कैसे लेते हैं ?

उत्तर - पृथिव्यादि पांचों स्थावर, पांचों स्थावरों के शरी को श्वासोच्छ्वास के रूप में लेते हैं।

५७७ प्रश्न - मिथ्यादृष्टि में अनुत्तर-विमान के जीव भं लिये हैं और १५ वें पद की साक्षी दी सो यह किस प्रकार है ?

उत्तर - प्रज्ञापनासूत्र के १५ वें पद में चार अनुत्तर विमान के देव, भविष्य में ८, १६, २४ और संख्याती द्रव्येन्द्रियाँ करने का उल्लेख है। इसमें १६ इन्द्रियें तो तभी हो सकती है, जब कि मनुष्य मर कर पुनः मनुष्य रूप ही जन्मे और जो मनुष्य, मनुष्य गति की आयु बांधे, तो वह भगवती सूत्र श. ३० के आधार से मिथ्यात्वी होता है। इस आधार से सिद्ध है कि अनुत्तर विमान से आये हुए जीवों में किसी को अल्पकाल के लिए मिथ्यात्व भी आ सकता है ।

५७८ प्रश्न - चर चन्द्र, सूर्य के प्रकाश को स्पर्श करता है, परन्तु अचर चन्द्र भी क्या सूर्य के प्रकाश को स्पर्श करते हैं ?

उत्तर - अचर चन्द्र का प्रकाश, अचर सूर्य के प्रकाश को स्पर्श करता है, इसी प्रकार सूर्य का प्रकाश, चंद्र के प्रकाश को भी स्पर्श करता है। परन्तु अचर चन्द्र, अचर चन्द्र के प्रकाश को और अचर सूर्य, अचर सूर्य के प्रकाश को स्पर्श करना संभव नहीं है।

५७९ प्रश्न - श्री जीवाभिगम सूत्र में चबूतरा बाहर होना बताया, किन्तु आपने तो चबूतरा भीतर बताया, यह किस प्रकार समझें ?

उत्तर - वे दोनों ही चबूतरे जम्बूद्वीप की सीमा मे ही है, परन्तु बाहर (लवण समुद्र की सीमा में) नहीं है। तात्पर्य यह कि वे चबूतरे लवण समुद्र की सीमा में नहीं हैं।

५८० प्रश्न - युगलियों के क्षेत्र में कचरा नहीं होना बतलाया, किन्तु वहां वनस्पति तो होती है, फिर पान आदि खिर कर कचरा कैसे नहीं होता होगा ?

उत्तर - झड़े हुए पत्ते आदि वायु से, पानी से और शीघ्र ह
मिट्टी रूप हो जाने आदि कारणों से युगलिक क्षेत्र में कचरा नह
होता है।

५८१ प्रश्न - लोक का प्रमाण भगवती सूत्र में बताते हु
लिखा है कि - एक हजार वर्ष की आयु वाला बालक जन्मा
उसके लड़का हुआ, वह भी हजार वर्ष की उम्र का। यों सा
पीढ़ी हुई। उधर छह देव, लोक का नाप लेने छहों दिशा में गये
फिर भी पार नहीं पाये। किन्तु बारहवें देवलोक के देव तो यह
थोड़ी ही देर में आ सकते हैं। इस हिसाब से लोक का पार जल्द
आ जाना चाहिए ?

उत्तर - देवों की जो शीघ्र गति है, उससे यदि लोक क
महत्ता बताई जाय, तो वह लोगों के ध्यान में नहीं आवे, क्योंवि
लोक के नाप में हर एक देव को ३॥ रज्जु ही जाना होता है
उसका अन्त थोड़ी ही देर में वे छहों देव ले सकते हैं। अतएव
लोक के नाप की वास्तविक महत्ता की ओर लोगों की बुद्धि
आकर्षित नहीं होती। इसलिए देवों की मंद चाल से ही लोक क
नाप बताया गया है।

५८२ प्रश्न - अव्यवहार-राशि में से निकल कर जीव
कितने भव कर के मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर - प्रायः अनन्त भव कर के मोक्ष प्राप्त करते हैं, किन्तु
कोई शीघ्र दो या तीन भव कर के ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह
बात प्रज्ञापना सूत्र की टीका में है।

५८३ प्रश्न - नरक के भीतर पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु और
वनस्पति का खराब स्पर्श होना भगवती सूत्र श. १३ उ. ४ में कहा
है, तो ये पानी आदि कृत्रिम है या अकृत्रिम ?

उत्तर - वहाँ अप्, तेउ और वनस्पति तो कृत्रिम ही है, पृथ्वी ओर वायु कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों प्रकार की होती है।

५८४ प्रश्न - लवण समुद्र में बड़वानल (अग्नि) है। समुद्र में जो नदियाँ आदि मिलती है, उनके पानी को यह बड़वानल अधिक नहीं बढ़ने देता, तो क्या इसी प्रकार कालोदधि में भी नदियाँ मिलती है और उसमें भी बड़वानल है ?

उत्तर - कालोदधि में बड़वानल नहीं है। पृथ्वी, वायु, सूर्य के ताप आदि से पानी शोषण हो कर अमर्यादित पानी नहीं बढ़ता है।

५८५ प्रश्न - जीव के रुचक-प्रदेश, सदैव खुले हैं और जीव के एक-एक आत्म-प्रदेश पर कर्मों की अनन्ती-अनन्ती अवेडी-पवेड़ी है, तो फिर रुचक-प्रदेशों को निर्लेप कैसे समझे जायं ? क्या अवेड़ी-पवेड़ी में कोई सुराख (छिद्र) है, जिसमें रुचकप्रदेश खुले रह सकें ?

उत्तर - शास्त्रीय प्रमाणों से तो रुचक प्रदेश निर्लेप नहीं है ऐसा स्पष्ट होता है। रुचक प्रदेश भी कर्मों से आवेष्टित हैं। ग्रंथकारो और टीकाकारों का इसमें मतभेद है।

५८६ प्रश्न - जिनकल्पी मुनि के ७ उपधि कही। जिनकल्पी रात्रि को एक ही जगह रहते हैं और खाज भी नहीं खुजालते हैं, फिर उनके ओघा किस काम में आता होगा ?

उत्तर - जिनकल्पी की उपधि के आठ विकल्प होते हैं। कोई जिनकल्पी २, कोई ३, कोई ४, कोई ९, कोई १० कोई ११ और कोई १२ उपकरण रखते हैं। दो में - १. रजोहरण २. मुखवस्त्रिका-ये दो। यदि एक वस्त्र रखे तो तीन, दो वस्त्र रखे तो

(रिणामो) से कर्मों की अधिक उदीरणा आदि होकर महानिर्जरा ने की संभावना है।

५९० प्रश्न - निर्वृत्ति का क्या अर्थ है, भगवती सूत्र श. १९ ८ में यह शब्द आया है ?

उत्तर - इन्द्रियों की रचना को अथवा कार्य की समाप्ति को वृत्ति कहते हैं। क्रिया के साधन को 'करण' कहते हैं अथवा र्य के प्रारम्भ को करण और समाप्ति को निर्वृत्ति कहते हैं।

५९१ प्रश्न - निर्जरा के भेदों में माठा (अशुभ) ध्यान और प्रशस्त मन, वचन क्यों लिये ?

उत्तर - अशुभ ध्यान त्यागने के लिए। जैसे - "**अट्टरुद्दाणि** जित्ता" अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़ना, इस गम-वाक्य से यह स्पष्ट सिद्ध होता है और अप्रशस्त मन आदि वर्जने के लिए ही बतलाये हैं। यथा-"**तहप्पगारं मणं णो** रेज्जा" अर्थात् मन की अशुभ प्रवृत्ति न करें, इस आगम न से यह सिद्ध होता है। इसलिए इनको निर्जरा के भेदों में या है।

५९२ प्रश्न - अप्काय में ७ बोल पाते हैं, तो क्या तमस्काय ७ बोल पाये जाते हैं ?

उत्तर - तमस्काय के कुछ हिस्से (लगभग) तिरछे लोक द तक बेइन्द्रियादि जीवों की सम्भावना है, आगे नहीं।

५९३ प्रश्न - भरत आदि उत्तम पुरुषों की बाल-वय कब होती है और अंग कब जागते हैं ?

उत्तर - शास्त्रीय-दृष्टि से १६ वर्ष की उम्र वाला गच्छ में

अग्रसर हो कर विचर सकता है। अतः यही आयु बालवर समाप्ति की संभव है। नीति में भी १६ वर्ष के पुत्र को मित्रवत मान कर बालकपन की समाप्ति मानी है।

५९४ प्रश्न - आहारक-शरीर का जो पुतला बनता है, उसे चर्म-चक्षु वाले देख सकते हैं क्या ?

उत्तर - यदि आहारक शरीर बनाने वाले मुनि उसे दिखाना चाहें, तो दिख सकता है, अन्यथा साधारणतया दिखाई देना संभव नहीं।

५९५ प्रश्न - जीव, लोकान्तिक देव के स्वामीपने अनन्त बार उत्पन्न नहीं हुआ, इसका क्या कारण ?

उत्तर - लोकान्तिक देवों के स्वामी देव, अनन्तर (अगले मनुष्य के) भव में मुक्ति पाते हैं-ऐसा ठाणांग ठाणा ३ उ. १ की टीका व अर्थ में उल्लेख है। इसलिए अनन्त बार उत्पन्न नहीं होना सिद्ध होता है।

५९६ प्रश्न - १२ वें गुणस्थान में १० बोल की लब्धि होती है, या १३ वें के पहले समय में ? अगर १३ वें के पहिले समय में लब्धि उत्पन्न हो, तो फिर १२ वें गुणस्थान में ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर - जब तक घनघाति कर्म रहते हैं, तब तक छद्मस्थ रहता है। केवलज्ञान होने के प्रथम समय से ही १३ वाँ गुणस्थान गिना जाता है। १० में से ३ लब्धि तो पहिले ही हो जाती हैं और ७ लब्धि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोहनीय, इन तीन कर्मों के क्षय होते ही होती हैं।

५९७ प्रश्न - श्रीदेवी के स्पर्श से ही आगे का तथा पीछे का रोग नहीं होता, तो फिर सनत्कुमार के रोग क्यों पैदा हुआ ?

उत्तर - चक्रवर्तियों के श्रीदेवी के स्पर्श से सर्व रोग नाश होते हैं, परन्तु निम्न कारणों को अपवादरूप समझना चाहिए - १. जो चक्रवर्ती स्वयं स्पर्श की इच्छा नही करते और संयम के द्वारा ही रोग-नाश करना चाहते हैं २. जिनकी मृत्यु समीप हो, तो वे चक्रवर्ती श्रीदेवी के स्पर्श को सहन करने में असमर्थ हो जाते है और ३. अवश्यंभावी (निकाचित कर्म) होने पर भोगना ही पड़ता है।

५९८ प्रश्न - महा ऋद्धि के देवता, नंदीश्वर द्वीप से आगे प्रदक्षिणा नहीं दे सकता, इसका क्या कारण ?

उत्तर - देव, रुचकवर द्वीप से आगे प्रयोजन के अभाव से चोतरफ नहीं फिरते, ऐसा संभव है। यह बात भगवती सूत्र श. १८ उ. ७ की टीका में है।

५९९ प्रश्न - तीर्थंकर को तीर्थ कहना उचित है क्या ?

उत्तर - भगवती सूत्र के २० वें शतक के ८ वें उद्देशक में अर्हंत तो अवश्य तीर्थंकर है (तीर्थ नहीं) ऐसा कहा है।

६०० प्रश्न - पुष्करवर समुद्र और कालोदधि समुद्र का पानी पालर है और कालोदधि समुद्र में मच्छ ज्यादा है, तब पुष्करवर समुद्र में कम क्यों ? जब पानी एक सरीखा है, तो फिर न्यूनाधिकता क्यों है ?

उत्तर - कालोदधि के समान ही पुष्करवर समुद्र का पानी है। परन्तु इसमें स्वभाव से ही मच्छ-कच्छभादि अल्प उत्पन्न होते हैं।

६०१ प्रश्न - ज्योतिषी देव के विमान उठाने वाले देवों की उपमा सब रत्नोंमय चली, यह कैसे समझी जाय ?

****

उत्तर - सिंह, हाथी, बैल और घोड़े के आकार तो रत्नों के हैं ही। उनमें देव प्रवेश करते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

६०२ प्रश्न - ध्यान और काउसग्ग में क्या अन्तर है ?

उत्तर - काया की प्रवृत्तियों को रोकना-'कायोत्सर्ग' है और चित्त की एकाग्रता को 'ध्यान' कहते हैं। कायोत्सर्ग का समय नियमित (निश्चित) होता है और ध्यान का समय नियमित (निश्चित) नहीं होता है।

६०३ प्रश्न - वीतराग प्रभु, वाणी की वागरणा क्यों करते हैं ? उन्हें उपदेश देने का क्या प्रयोजन है ? अगर कहें कि भव्य-जीव को तारने वास्ते, तो प्रभु को भव्य-जीवों के प्रति मोह रहा ? वीतराग को प्रेम तो नहीं करना, क्योंकि राग-द्वेष क्षय हो गया, तो फिर ऐसा क्यों ?

उत्तर - अपने अघाती-कर्मों का क्षपण करने के लिये तथा त्रस और स्थावर प्राणियों के कल्याण के लिए वीतराग उपदेश करते हैं, परन्तु रागादि के वश से नहीं।

६०४ प्रश्न - अंत:कोडाकोडी किसे कहते हैं ?

उत्तर - एक कोडाकोडी में (कुछ) कम को 'अंत: कोडाकोडी' कहते हैं। एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसको एक कोडाकोडी कहते हैं। उसमें कुछ कम हो, उसे अन्त: कोडाकोडी कहते हैं।

६०५ प्रश्न - लेश्या, परिणाम, भाव इनके क्या अर्थ है ? इनमें क्या अन्तर है ?

उत्तर - परिणाम की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। जैसे - भूत-भविष्य रूप दीर्घकाल की पूर्वापर विचारणा को

परिणाम कहते हैं। जीव और अजीव, अपनी-अपनी स्थिति में रहे, इसे भी परिणाम कहते हैं। द्रव्य में पर्यायों का पलटना भी परिणाम कहलाता है, इत्यादि रूप से परिणाम को पन्नवणा सूत्र के १३ वे पद से समझना चाहिए। लेश्या भी एक जाति के आत्मा के परिणाम है अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा के साथ कर्म चिपटें, उसे लेश्या कहते हैं। अंतःकरण की प्रवृत्ति को अथवा मानसिक परिणाम को भाव कहते हैं। एवं सत्ता, स्वभाव, चेष्टा आदि भाव के अनेक अर्थ हैं।

६०६ प्रश्न - देवता २-३-४ आवास तक तो अपनी ऋद्धि से जाय और आगे पर-ऋद्धि से जाय। आवास संख्यात योजन का है, देवता संख्यात योजन मूलरूप से जाता है क्या ?

उत्तर-हाँ, ४-५ आवास तक देव मूलरूप से जा सकते हैं।

६०७ प्रश्न - क्या महाविदेह की एक विजय के छहों खण्डो में आर्य मनुष्य रहते हैं ?

उत्तर - अऋद्धि प्राप्त आर्य के क्षेत्र-आर्य आदि ९ भेद हैं, जिसमें से क्षेत्र-आर्य तो प्रत्येक विजय के सिर्फ एक मध्य खंड में (चक्रवर्ती की नगरी वाले खण्ड में) ही मिलते हैं और ज्ञानादि समुच्चय आर्य छहों खण्डों में मिल सकते हैं।

६०८ प्रश्न - वैताढ्य पर्वत पर छठा आरा बरतता है, तो देवों की श्रेणि में भी छठा आरा सरीखा भाव बरतता है क्या ?

उत्तर - भरत और ऐरवर्त क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत की विद्याधरों की श्रेणियों में छठा आरा वर्तता है, परन्तु देवों की श्रेणियों में नहीं।

६०९ प्रश्न - छठी नरक में जघन्य दो और उत्कृष्ट आठ

तथा ग्रैवेयक में जाने आश्रयी जघन्य तीन और उत्कृष्ट सात तथा आने आश्रयी जघन्य दो और उत्कृष्ट छह भव करते हैं, जिससे ८८ सागर या ९३ सागर होते हैं और अवधिज्ञान व विभंगज्ञान की स्थिति ६६ सागर पन्नवणा में कही, यह कैसे ?

उत्तर - नैरयिक और देव मर कर, मनुष्य-तिर्यच में विभंगज्ञान ले कर नहीं आते। विभंगज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर और देश-ऊणी करोड़ पूर्व की है, अधिक नहीं। तीसरी नरक से आगे के नैरयिक तो अवधिज्ञान लेकर आते ही नहीं, तो फिर छठी नरक का प्रमाण किस काम का ? देव-भवों से ९३ सागर हो सकते हैं, परन्तु बीच में अवश्य मिथ्यात्व आ जाता है। अतः ९३ सागर तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान नहीं रहते। अधिक से अधिक ६६ सागर जाजेरे तक उपरोक्त तीन ज्ञान ठहर सकते हैं।

६१० प्रश्न - सूत्र-सिद्धान्त की विनय-भक्ति कैसे समझना?

उत्तर - ज्ञानी-कथित ज्ञान का बहुमान करना, जैसे ज्ञान, क्लेश एवं अज्ञान का नाशक, हेय उपादेय का बोधक, आवागमन निवारक, धर्म में स्थिरता और प्रामाणिकता प्रदायक है, आदि रूप से चिन्तन और कथन करना; ज्ञान का बहुमान है। श्रद्धापूर्वक जिनवाणी का श्रवण, अध्ययन, पठन-पाठन, चिन्तन आदि करना तथा उन्हें क्रिया रूप देना 'विनय' कहलाता है।

६११ प्रश्न - द्रव्य-पुण्य और भाव-पुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिन भावों से पुण्य-प्रकृतियों का बन्ध होता है, उन भावों को 'भाव-पुण्य' और ४२ पुण्य-प्रकृतियों के अणुओं को द्रव्य-पुण्य कहते हैं।

६१२ प्रश्न - द्रह में श्रीदेवी के आत्मरक्षक १९ हजार देव और ४ हजार सामानिक देव बताये, तो देवी के भी पुरुष सामानिक देव होते हैं क्या ?

उत्तर - जिस प्रकार स्त्री राजा होते हुए भी पुरुष बड़े बड़े जागीरदार होते हैं, उसी प्रकार पुण्य के प्रभाव से देवियों के भी सामानिक देव होते हैं।

६१३ प्रश्न - किसी द्रह में देव और किसी द्रह में देवी की मालिकी क्यों ? क्या देवों की नहीं हो सकली ?

उत्तर - देव या देवियों की मालिकी अनादि से जहाँ कहीं है, वहाँ स्वभाव से उसी प्रकार चलती आती है, उसमें परिवर्तन नहीं होता।

६१४ प्रश्न - भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ८ मे आये 'प्लवक' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर - गति की क्रिया विशेष को 'प्लवन' कहते है। प्लवन (उछल-उछल कर आगे बढ़ना) क्रिया करने वाले को (उछलने वाले को) 'प्लवक' कहते हैं।

६१५ प्रश्न - जंघाचारण और विद्याचारण, अढ़ाई द्वीप बाहर जाते हैं, तो जहाँ दिन है वहाँ दिन ही है और जहाँ रात है वहाँ रात ही है, तो मुनि को रात में जाना कल्पता है ?

उत्तर - चन्द्र का प्रकाश, सूर्य तक और सूर्य का प्रकाश चन्द्र तक होता है। प्रकाश का मिश्रण होने से एकांत दिन और रात रूप कहीं भी न रह कर मिश्रण रूप (चित्रान्तर रूप) रहता है। इस प्रकार होने से रात का प्रश्न ही नही उठ सकता है।

६१६ प्रश्न - चक्रवर्ती के ७ एकेन्द्रिय रत्न शाश्वत हैं या अशाश्वत ?

उत्तर - चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न शाश्वत नहीं होते हैं किन्तु चक्रवर्ती के नवनिधान शाश्वत होते हैं।

६१७ प्रश्न - भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक २ में पृथ्वीकाय का सम-विषम शरीर किस तरह समझना ? समविषम आहार कैसे समझना ? शरीर तो एक सरीखा है, फिर यह बात कैसे ?

उत्तर - पृथ्वीकाय के सभी जीवों की अवगाहना समान नहीं होती है, किन्तु '**चउठाणवडिया**' बताई है। अतः शरीर छोटे-बड़े भी होते हैं और इससे आहार भी ज्यादा-कम होता है।

६१८ प्रश्न - वेदक-समकित की स्थिति एक समय की कैसे समझी जाय ?

उत्तर - क्षायिक-समकित प्राप्ति के पहले समय क्षायिक वेदक समकित होती है। उसकी स्थिति एक समय की है।

६१९ प्रश्न - गणधर महाराज के गुंथे हुए सूत्र में तीर्थंकर भगवान् के नाम के साथ "श्री" शब्द क्यों नहीं लगाया ? इसका क्या कारण है ?

उत्तर - गणधर सर्वाक्षर सन्निपाती होते हैं। जहाँ जरूरत होती है, वहाँ वैसे अक्षर रखते हैं।

६२० प्रश्न - भगवती सूत्र शतक २३ में प्रथम सूत्र-देवता को नमस्कार किया, तो अन्य शतक में क्यों नहीं किया ? इसका क्या कारण है ?

उत्तर - सूत्र-देव को नमस्कार २३ वें शतक के अलावा १५ वें और २६ वें शतक में भी है। अविनीतता और प्रत्यनीकता से छूटने के लिए १५ वें में, अनन्तकाय से छूटने के लिए २३ वें में और कर्म-बंध से छूटने के लिए २६ वें में बतलाया गया है। विघ्न-नाश के लिये भी किया जाता है।

६२१ प्रश्न - देवता, मनुष्य और मनुष्यणी को उठा कर तिरछे-लोक में तो ले जाता है, परन्तु ऊँचे-नीचे लोक में कहाँ तक ले जाते हैं ? इसका प्रमाण क्या ?

उत्तर - भगवती सूत्र के नौवें शतक के ३१ वें उद्देशक में वताये अनुसार मनुष्य-मनुष्यणी का संहरण ऊँचा पंडक-वन तक और नीचा पाताल-कलश व भवन (भवनवासी देवों के रहवास) तक होने का संभव है।

६२२ प्रश्न - पृथ्वी आदि में संहनन कैसे समझना ?

उत्तर - औदारिक शरीर वाले जीव, औदारिक शरीर का संहनन कर के शक्ति विशेष पैदा करते हैं। अतः उन पृथिवी आदि जीवों के संहनन बतलाया गया है। परन्तु हाड़, नाड़ी, नसाजाल रूप प्रकट संहनन पृथिवी आदि जीवों के दिखाई नहीं देता। यह भाव जीवाभिगम सूत्र के अर्थ में है। इस अपेक्षा से पृथ्वी आदि जीवों को असंहननी प्रथम कर्मग्रन्थ की ३९ वीं गाथा के अर्थ में कहा है।

६२३ प्रश्न - मनुष्य उत्तर-वैक्रिय करे, उनमें संहनन कौनसा होता है ?

उत्तर - वैक्रिय में छह संहननों में से कोई संहनन नहीं होता है। अतः मनुष्य के वैक्रिय को भी असंहननी समझना चाहिए।

६२४ प्रश्न - पन्नवणा सूत्र के १० वें चरम पद में छह बोल की पुच्छा है और छही बातों का निषेध किया है और वाद मे नियमा कहा, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - रत्नप्रभादि को अभेद (अखंड-सम्पूर्ण) एक रूप

में समझें, तब तो वे चीजें एक-एक ही होने से उनको चरम आदि किसकी अपेक्षा से बतावें ? अतः छहों का ही निषेध किया है तथा उसी के बीच का भाग और अन्त के भाग को भेद-विवक्षा कर के अनेक रूप समझें, तब **"णियमा अचरिमं"** आदि छहों भेद होते हैं।

६२५ प्रश्न - रेल (खड़ी हो या चलती हो) में बैठा हुआ यात्री, क्या संवर कर सकता है ?

उत्तर - रेल में बैठा हुआ यात्री पूर्णतया तो संवर नही कर सकता, किन्तु देश-संवर कर सकता है। निम्न प्रकरणों से यह ज्ञात होता है।

१. अठारहवें भगवान् श्री अरनाथ के श्रावक श्री अर्हन्नकजी ने जहाज के एक हिस्से में यावत् सागारी संथारा तक किया था।

२. नंद मणियार, मेढ़क के भव में बावड़ी में रहते हुए भी व्रत का पालन करता था।

३. समुद्रवर्ती मच्छ-कच्छपादि असंख्य श्रावक भी समुद्र में रहते हुए अपने व्रतों का पालन करते हैं।

इसी प्रकार रेल में भी देश से संवर किया जा सकता है ❊।

६२६ प्रश्न - जो धान्य ऊग नहीं सके, अंकुर नहीं दे सके, वो सब निर्जीव ही होता है क्या ?

उत्तर - सूखे नारियल, गोले, बादाम की अखंड मज्जा आदि अनेक चीजें सजीव होते हुए भी उगती नहीं है, इस प्रकार नहीं ऊगने वाले कई धान्यकण सजीव होते हैं। वैसे नहीं ऊगने वाले

❊ भाव संवर में तो बाधा नहीं लगती। द्रव्य-संवर देश से होता है - डोशी।

धान्यकण कोई सजीव और कोई निर्जीव होते हैं। पन्नवणा सूत्र के ९ वे पद आदि में वनस्पति की ३ योनियाँ सचित्त, अचित्त और मिश्र बताई है। अतः अचित्त कण भी ऊगा करते हैं। जैसे कि पेट से निकला हुआ धान्य, गोबर आदि में ऊगा करता है। धनिया, गवार आदि विभाग करने पर भी ऊगते हैं।

इसके सिवाय बिना बीज के भी वनस्पति उगा करती है। दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में उसे "समुच्छिमा' कहा गया है।

६२७ प्रश्न - श्री भगवती सूत्र श. ६ उ ८ में सौधर्म ईशान देवलोक के नीचे बादर पृथ्वी का निषेध किया, यह कैसे संभव हो सकता है ?

उत्तर - सौधर्म-ईशान देवलोक का आधार घनोदधि है। इसलिए उन देवलोकों के नीचे संलग्न में बादर पृथ्वी न होकर पानी है। अतः नीचे संलग्न की अपेक्षा बादर पृथ्वी का निषेध किया गया है।

६२८ प्रश्न - पांचवें देवलोक के ऊपर बावड़ियाँ है, या नहीं ? वहाँ बादर अप्काय और वनस्पतिकाय है या नहीं ?

उत्तर - पांचवें देवलोक के ऊपर १२ वें स्वर्ग तक बावड़ियाँ, बादर अप्काय और वनस्पतिकाय है लांतक आदि के लिए जो निषेध किया है, वह उन स्वर्गों के नीचे की अपेक्षा से है। पहले और दूसरे स्वर्ग के नीचे घनोदधि तथा तीसरे, चौथे और पांचवें के नीचे तमस्काय होने से प्रथम के ५ स्वर्गों के नीचे बादर अप्काय और वनस्पतिकाय का संभव है। ६-७-८ वाँ देवलोक, घनोदधि और घनवाय के आधार से हैं, परन्तु उन स्वर्गों के नीचे

मरे। उनमे से एक सातवीं नरक के '**अप्पइट्ठाण**' नरकावास में
ौर दूसरा सर्वार्थसिद्ध विमान में ३३ सागर की उम्र में गया।
रक का जीव तो लोहार की धमण के समान सांस लेता है और
र्वार्थसिद्ध का ३३ पक्ष से। परन्तु दोनों के ३३ सागर एक साथ
। पूरे होंगे। अतः श्वासोच्छ्वास का कोई कारण नहीं है।

आयुष्य-कर्म का संक्रमण नहीं होता। यह बात भगवती सूत्र
पहले शतक के पहले उद्देशक की टीका से स्पष्ट होती है।
युकर्म टूटने का वर्णन व्यवहार-दृष्टि से है।

निरुपक्रमी में जो व्यवहार-दृष्टि है, वही दिखते हुए उपक्रम
ी अपेक्षा से और सोपक्रम आयुष्य का जो वर्णन है वह
ायुष्य-कर्म बांधते समय की अपेक्षा से है।

जिस जीव के सोपक्रम रूप आयुष्य-कर्म के दलिक बंधे
ं, अगर वे ही निरुपक्रम रूप से बंधते, तो ज्यादा समय तक
ते। इसी दृष्टि से आयुष्य टूटना व्यवहार दृष्टि से कहा जाता है।
स्तविक दृष्टि से तो ज्ञानियों ने उस जीव के उतना ही बंध देखा
और उसी तरह से आयुष्य का समाप्त होना भी देखा है।

६३० प्रश्न - एक सज्जन तीसरा व्रत धारण करता है। वह
ग करता है कि मोटी चोरी जैसे - खात खन कर, गांठ खोल
, ताले पर कुंजी लगा कर अथवा कोई पड़ी हुई चीज लेना
जा किसी की अमानत जमा रकम को हड़प लेना इत्यादि
ग करता है। परन्तु सेलटेक्स, इन्कमटेक्स, कस्टम की राजचोरी
वह नहीं त्यागता है, तो ऐसी हालत में उसका तीसरा व्रत
ट होता है या नहीं ?

उत्तर - तीसरा व्रत पूर्णरूप से धारण किया हो, तब तो

सेलटेक्स, इन्कमटेक्स, कस्टम आदि की चोरी का पूर्णरूप से त्याग करना ही पड़ता है। अपूर्ण व्रत लेने पर बात निराली है अर्थात् जितने रूप से त्याग करता है, उतने अंश में वह व्रत गिन जाता है।

शंका - अनाचार सेवन से व्रत भंग होता है। अतिचार तक तो व्रत में दोष लगता है, एवं अतिचार का ही मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। चौथे व्रत में - 'इत्तरियपरिग्गहीया' से गमन किया हो, तो मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है, परन्तु इसका अभिप्राय तो यह है कि इत्तरियपरिग्गहीया से गमन करने की अभिलाषा की हो, तो मिच्छामि दुक्कडं। अभिलाषा तक तो यह दोष अतिचार तक है, परन्तु इसको सेवन करने पर तो यह अनाचार रूप मे हो जाता है। एवं गमन क्रिया हो जाने से चौथा व्रत टूट जाता है. अनाचार का तो मिच्छामि दुक्कडं नहीं दिया जाता। इसी मुताबिक तीसरे व्रत में खोटा लेख लिखा हो, तो मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है, तो उसी हालत में यह अतिचार रूप दोष में ही है एवं इसका अभिप्राय यह है कि खोटा लेख लिखने की सामग्री इकट्ठी की, इतने तक ही है, अगर खोटा लेख लिख लिया हो, तो यह अनाचार रूप में हो जाता है। एवं अनाचार आने से व्रत-भंग हो जाता है। अब जब श्रावक सेलटेक्स, इन्कमटेक्सादि चोरी को खुली रखता है, तव तो खोटा लेख, खोटा खाता लिख कर ही इन्कमटेक्स की चोरी करनी पड़ती है, एवं ऐसी हालत मे तीसरे व्रत का जो अतिचार (खोटा लेख लिखा हो) वह अनाचार रूप में आ जाता है। ऐसी हालत में श्रावक का तीसरा व्रत कायम नहीं रहता। जैसे चौथा व्रत में इतरियागमन से व्रत में अनाचार आ जाने

के कारण व्रत भंग होता है, उसी मुताबिक खोटा लेख लिखा हो, तो कार्य खत्म हो जाने पर तीसरा व्रत मूल से भंग हो जाता है एवं ऐसी हालत में उपरोक्त नियमानुसार अब श्रावक आगार रख कर त्याग करता है, तो उनका मूल तीसरा व्रत कायम नहीं रहता, पच्चक्खान जरूर होता है, लेकिन व्रत कायम नहीं रहता। कृपया इसका खुलासा करें ?

समाधान - चौथा व्रत लेते समय यदि कोई व्यक्ति एक अपनी पत्नी ओर एक पासवान के उपरांत अन्य सब प्रकार के मैथुन का त्याग एक करण एक योग से करता है, तो भी वह चौथे व्रत में ही गिना जाता है। जो सिर्फ अपनी पत्नी ही खुली रखता है, वह भी चौथे व्रत का पालक है। जो अखंड ब्रह्मचर्य धारण करता हे, वह भी चौथे व्रत का ही आराधक है। इस तरह तीनों ही चोथे व्रत में है, परन्तु कम-ज्यादा अवश्य है। सम्पूर्ण त्याग करना श्रेष्ठ है।

सम्पूर्ण के अभाव में जितने अंश में त्याग करता है, उतने अंशों में वह चौथा व्रत में ही गिना जाता है। इसलिए किसी भी तरह का आंशिक त्याग करना व्रत में ही माना जाता है, क्योंकि व्रतों के बाहर तो त्याग माने ही नहीं जाते।

इसी प्रकार तीसरा व्रत धारण करने वाले ने टेक्स आदि का आगार रखा हो, तो उसका वह अतिचार अनाचार उस ग्रहण किये हुए त्याग का नहीं है। पाप तो अवश्य है।

खोटा लेख लिखा हो, यह तीसरे व्रत का अतिचार और अनाचार नहीं है, परन्तु दूसरे व्रत का है। "आगार रख कर त्याग करे, तो तीसरा व्रत सम्पूर्ण नहीं होता है किन्तु पच्चक्खाण जरूर

होता है।" इत्यादि जो आपने लिखा है, उस पर विचार करें कि वे पच्चक्खाण किस व्रत में गिने जायेंगे। ध्यान देने से प्रतीत होगा कि वे तीसरे व्रत में ही माने जावेंगे।

६३१ प्रश्न - आयुष्य सिर्फ आर्त्तध्यान में क्यों बंधता है ?

उत्तर - आर्त्तध्यान छठे गुणस्थान तक है और आयुकर्म का बन्ध भी छठे गुणस्थान तक ही होता है। अतः जिसके आर्त्तध्यान हो, अथवा जो प्रमत्त हो, उसी के आयुकर्म का बंध हो सकता है जिसके आर्त्तध्यान समूल सदा के लिए छूट गया हो, या अप्रमत्त हो, उसके आयुष्य का बंध नहीं होता।

एकान्त आर्त्तध्यान में ही आयु बंधता है, ऐसी बात नहीं है, किन्तु प्रमादयुक्त धर्मध्यानी के भी आयुष्य बंध हो सकता है, क्योंकि उसके आर्त्तध्यान समूल नहीं छूटा है। जैसे कि - उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन २९ वाँ के २२ वें बोल से ज्ञात होता है।

६३२ प्रश्न - प्रतिक्रमण करने के पश्चात्-'गया काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की सामायिक, आवता काल का पच्चक्खाण में कोई दोष लग गया हो, तो मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है' और भी १८२४१२० प्रकार में तीन करण, तीन योग तथा तीन काल (भूत, वर्त्तमान, भविष्य काल) के लिए मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। इसमें क्या रहस्य है कि भविष्य-काल के पच्चक्खाण का भी मिच्छामि दुक्कडं वर्त्तमान-काल में दिया जाता है ?

उत्तर - आवते काल के पच्चक्खाण सम्बन्धी मिच्छामि दुक्कडं का तात्पर्य तो यही संभव है कि पच्चक्खाण, अश्रद्धान, अविनय आदि से किया हो।

वास्तव में मिच्छामि दुक्कडं तो भूतकाल के प्रतिक्रमण का ही है।

१८२४१२० प्रकार के मिच्छामि दुक्कडं में जो भूत भविष्य, वर्तमान काल की अपेक्षा से मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है, वह भी तो गये-काल के हिंसा सम्बन्धी प्रतिक्रमण का ही है। गये काल में भी भविष्य-काल की चिन्तवना कर ली जाती है। जैसे - "मै कलकत्ता गया था, मगर अमुक सब्जी नहीं खाई। या अमुक वाहन (सवारी) में नहीं बैठा, अब जाऊँगा तो जरूर खाऊँगा या बैठूंगा" इत्यादि। यद्यपि यह विचार है तो भविष्य का, परन्तु इसकी चिन्तवना तो कर ली गई है। इसीलिए इसका मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। इसी प्रकार भूतकाल में तीनों कालों का समझना चाहिए।

६३३ प्रश्न - पन्द्रह कर्मादान में, क्या आगार रख कर पच्चक्खाण हो सकता है ? अगर पन्द्रह कर्मादान में आगार रह सकता है, तो क्या ऐसी हालत में सातवाँ व्रत रहता है, अर्थात् पन्द्रह कर्मादान में आगार रख कर कोई सज्जन व्रत धारण करता है, तो उस हालत मे उसका सातवां व्रत रहता है या नहीं ?

उत्तर - वैसे तो श्रावक को उत्कृष्ट दृष्टि से पन्द्रह कर्मादानों का त्याग अवश्य करना ही चाहिए। किन्तु कर्मादानों का पूर्ण त्याग करने में असमर्थ होने पर, आगारों से भी पच्चक्खाण हो सकते हैं।

कर्मादानो में आगार रहते हुए भी सातवाँ व्रत धारण किया जा सकता है।

भगवती सूत्र के सातवें शतक के दूसरे उद्देशक की टीका और "सेन प्रश्न" से यह स्पष्ट होता है।

६३४ प्रश्न - प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध इन चार भेदों में से कौनसे भेद कषाय से और कौन से योग से रस-बन्ध दोनों से है, या अकेले कषाय या रोग से ? किस शास्त्र में इनका अधिक वर्णन मिल सकेगा ?

उत्तर - बन्ध तो सदैव चारों ही एक साथ होते हैं, किन्तु योग की प्रबलता होने पर प्रकृति व प्रदेश-बन्ध की प्रबलता होती है और स्थिति व अनुभाग की मंदता होती है। इसी प्रकार कषाय की प्रबलता होने पर स्थिति व अनुभाग-बन्ध की तीव्रता होती है और प्रकृति व प्रदेश बन्ध की मंदता होती है।

योग और कषाय की एक साथ प्रबलता होने पर चारों ही बन्धों में प्रबलता होती है। तात्पर्य यह कि प्रकृति व प्रदेश में मुख्यता योग की होती है और स्थिति व अनुभाग में मुख्यता कषाय की होती है।

दसवें गुणस्थान से आगे तेरहवें गुणस्थान तक सिर्फ एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है। वहाँ कषाय नहीं है, फिर भी योग से सातावेदनीय का बन्ध चारों ही प्रकार का होता है। कषाय नहीं होने से उस बन्ध की स्थिति दो समय से ज्यादा नहीं हो सकती। अनुभाग बंध भी अल्प (साता) रूप ही होता है।

पन्नवणा, भगवती, ठाणांग, उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर कर्मों का वर्णन दिया है। किन्तु कर्म ग्रन्थ में एक ही जगह वर्णन मिल सकता है।

६३५ प्रश्न - मोहनीय-कर्म के क्षयोपशम से अनुयोगद्वार में आठ बोल की प्राप्ति बताई, किन्तु मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर - जीव मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ही कुश्रद्धा का मंडन तथा सुश्रद्धा का खंडन कर सकता है।

मंडन और खंडन की शक्ति का प्रकट होना तथा रुचि, मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ही होती है और यथा प्रवृत्तिकरण तथा अपूर्वकरण भी मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ही होते हैं।

इस प्रकार कुदेवादि की रुचि तथा सुदेवादि की अरुचि यह मिथ्यादृष्टि तथा दोनों के प्रति समानता यह मिश्रदृष्टि कहलाती है।

ये दोनों तरह की रुचियाँ भी मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ही होती है। जड़ को तो ऐसी रुचि भी पैदा नहीं हो सकती ✤ ।

✤ मिथ्यात्व, दर्शनमोह के उदय का परिणाम है। मोहनीय के उत्कृष्ट उदय की स्थिति में जीव असंज्ञी भाव को प्राप्त होता है, जहाँ विचारने का साधन ही नहीं होता और अध्यवसाय भी मंदतर होते हैं। इससे भी मोह का उत्कृष्टतम उदय सूक्ष्म जीवों मे और निगोद मे होता है। वहाँ मोह के उदय की पराकाष्ठा है। महामोहनीय का बन्ध तो संज्ञी जीव ही करता है और मिथ्यात्व के उदय मे करता है, परन्तु महामोह का उदय जब होता है तब विक्षिप्त-पागल तथा बेहोश जैसी दशा हो जाती है। होश मे रहना भी मोह के उदय की कमी से होता है। विचार करने की शक्ति भी ज्ञानावरणीय और मोहनीय के क्षयोपशम से प्राप्त होती है। यों तो मन पर्याप्ति से पर्याप्त बालक और पशु भी प्रायः विशेष नहीं सोच सकते। जिसमे सोचने-समझने और धर्म के विषय में चिन्तन करने की शक्ति होती है और ज्ञानावरणीय कर्म (अज्ञान द्विक या त्रिक) का क्षयोपशम होता है, वही मिथ्यात्व को रुचिपूर्वक अपना सकता है। जिससे इससे भी विशेष प्रकार का क्षयोपशम होता है, वही मत प्रवर्तन, सिद्धात सर्जन और शास्त्र-निर्माण कर सकते हैं। यह सब क्षयोपशम भाव का परिणाम है। इस प्रकार के क्षयोपशम मे ही पुन महामोह का बन्ध होता है। कोई पशुबलि का पंथ चलाता है और कोई वाममार्ग आदि [illegible]। यदि क्षयोपशम द्वारा प्राप्त बुद्धिबल नहीं होता तो [illegible]

६३६ प्रश्न - अप्रतिपाती अवधिज्ञानी (पहले कर्मग्रन्थ मे लिखा है कि) सर्व लोक देखे और अलोक का एक प्रदेश भी देखे, तो अलोक का एक प्रदेश कैसे देखे ?

उत्तर - अवधिज्ञान का विषय रूपी पदार्थ है। अलोक मे रूपी द्रव्य नहीं हैं, परन्तु किसी जीव को इतना अवधिज्ञान हो जाता है कि पूरे लोक में रूपी पदार्थ को जान लेने के बाद यदि अलोक में भी रूपी द्रव्य हों, तो वे उसके एक प्रदेश को भी देख सकते हैं। इतनी शक्ति वाला अवधिज्ञान वापिस नहीं गिरता। अलोक में तो रूपी पदार्थ है ही नहीं, परन्तु ज्ञान की शक्ति बताने के लिए यह कल्पना की गई है, जिससे सरलता पूर्वक उनकी ज्ञान-शक्ति का परिचय हो सके। नन्दीसूत्र में भी ऐसा वर्णन है।

६३७ प्रश्न - भाव थकी ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी द्रव्य के

पाकिस्तान के प्रवर्त्तक बन सकते और हजारों मनुष्यों का रक्त बहता ? गामा आदि पहलवानों में इतनी शारीरिक शक्ति भी वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से प्राप्त हुई। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय और मोहनीय आदि का क्षयोपशम भी होता है। चारों घातीकर्मों का क्षयोपशम मिथ्यादृष्टि के भी होता है और सम्यग्दृष्टियों के भी।

कई सम्यग्दृष्टि जीवों के भी ज्ञानावरणीय कर्म का विशेष उदय होता है, जिससे न स्मृति (मतिज्ञान) बराबर रहती है, न श्रुताध्ययन होता है। उनके दर्शनमोह का क्षयोपशम होते हुए भी ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम बहुत कम है। उनके मुकाबले मिथ्यादृष्टि, मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के विशेष क्षयोपशम वाले कई भाषा शास्त्री, न्यायशास्त्री, न्यायाधिकारी और वैमानिक आदि मिलते हैं। आठ पूर्व से अधिक का श्रुत प्राप्त करने वाले मिथ्यात्वी भी ज्ञानावरणीय और मोहनीय के क्षयोपशम वाले हो सकते हैं। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के भी होता है और मिथ्यादृष्टि के भी होता है - डोशी।

असंख्यात पर्याय जाने और विपुलमति उससे अधिक जाने ऐसा कहना ठीक है, या यह कहना ठीक है कि 'उत्कृष्ट सर्व भावो के अनंतवें भाग को जाने ?''

उत्तर - विपुलमति मनःपर्यायज्ञान, ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान से अधिक जानता हुआ सर्व भावों के अनंतवें भाग को जानता है। ये दोनों ही बातें विपुलमति के लिए कहनी चाहिए।

६३८ प्रश्न - चलती रेलगाड़ी में सामायिक कर सकते हैं या नही ? या चलती रेल मे सामायिक करे, तो शास्त्र सम्मत है या नहीं ?

उत्तर - भाव-सामायिक की बात तो निराली है तथा सामायिक वाले को कोई जबरन रेल में डाल दें, ऐसी दशा में सामायिक वाले के भाव विशुद्ध रहे, तो उसकी सामायिक भंग नही होती। परन्तु व्यावहारिक सामायिक व्रत चलती रेल में करना शास्त्र-सम्मत नहीं है। क्योंकि वहाँ हिंसादि प्रवृत्तियाँ चालू है तथा अग्नि पानी आदि का संघटा चालू है। अतः रेल मे व्यवहार सामायिक व्रत करना शास्त्र-सम्मत नही है।

६३९ प्रश्न - देवो का अंग कंपायमान हो, तो स्वाभाविक होता है या किसी निमित्त से होता है ?

उत्तर - तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा आदि प्रसंग पर तो लोकानुभाव (स्वभाव) से तथा अन्य प्रसंगो पर तप-मंत्र आदि के निमित्त से इस तरह दोनों प्रकार से देवों के अंग, आसन (सिंहासन) कम्पायमान होते हैं।

६४० प्रश्न - साता-वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति १५ कोडाकोडी सागर की कहाँ भोगी जाती है ?

उत्तर - जिस प्रकार नरक गति और नरकानुपूर्वी की उत्कृष्ट स्थिति २० और देवगति व देवानुपूर्वी की १० कोडाकोडी सागर की बांध कर अन्य गति में नामकर्म की प्रकृति के साथ में उन प्रकृतियों का संक्रमण कर के तथा बीच-बीच में केवल प्रदेशोदय रूप में भी भोग लेते हैं, उसी प्रकार सातावेदनीय के प्रदेश भी असाता के साथ-साथ प्रदेशोदय रूप आदि से भोग लेते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकृतियों के विषय में समझना चाहिए।

६४१ प्रश्न - वंदना कर के किसने कर्म हलके किये ? उदाहरण सहित बतावें ?

उत्तर - नंदी सूत्र में थेरावली (स्थविरावली) के बाद 'भेरी' शब्द पर जो १३ वीं कथा श्रीकृष्ण वासुदेव की है, उसमे उन्होंने वंदना कर के कर्म हलके किये, ऐसां वर्णन है और उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन के १० वें बोल में "वंदन" से कर्म हलके होना स्पष्ट लिखा है।

६४२ प्रश्न - एक मुनि जी ने एक पुस्तक में संज्वलन के लोभ की स्थिति दो माह की लिखी, क्या वह ठीक है ? वे मुनिजी तो अभी मौजूद नहीं है, इसलिये इसका खुलासा यदि शास्त्र-सम्मत हो, तो बतावें।

उत्तर - संज्वलन के लोभ की बंध-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ४० कोडाकोडी सागर की पन्नवणा सूत्र के २३ वें पद के दूसरे उद्देशे के मूलपाठ में बताई है। अंतर्मुहूर्त का बंध क्षपक-श्रेणी वाले जीवों के ९ वें गुणस्थान के अंतिम समय में (जो संज्वलन के लोभ के बंध का अंतिम-स्थान है) होता है और ४० कोडाकोडी का बंध प्रथम गुणस्थान में हो सकता है। इन

दोनों प्रकार के बंध स्थानों के बीच में विविध मध्यम स्थिति-बंध के स्थान हैं। संज्वलन के क्रोध की बंधस्थिति जघन्य २ मास की बताई है, परन्तु लोभ की नहीं। लोभ के अलावा शेष कषायो की उदय-स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की और लोभ की उदय स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की पन्नवणा के १८ वें पद आदि से सिद्ध है। यहाँ लोभ की उदय-स्थिति जो जघन्य एक समय की बताई है, वह ११ वें गुणस्थान से लौट कर १० वे गुणस्थान में आकर, एक समय में काल करने वालों की अपेक्षा से है। अन्यथा प्रत्येक कषाय की उदय-स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की ही है। उपरोक्त प्रकार से संज्वलन के लोभ की बंध और उदय-स्थिति को समझना चाहिए।

६४३ प्रश्न - परदेशी राजा को १३ छठ (बेले) होना कहा जाता है सो इसका क्या आधार है ?

उत्तर - परदेशी राजा को १३ बेले का प्रमाण रायपसेणी (राजप्रश्नीय) सूत्र में तो है नहीं, किन्तु कही कथा-ग्रन्थों में इसका उल्लेख होगा।

६४४ प्रश्न - गोचरी जाने पर गृहस्थ द्वारा सचित्त जल आदि का स्पर्श हो जाय, तो वह घर असूझता हो जाता है और मुनिराज आहारादि लिये बिना ही लौट जाते हैं। सारा दिन वह घर असूझता ही माना जाता है। उस संप्रदाय के कोई भी साधु, साध्वी उस दिन उस घर से आहार नहीं लेते, तो ऐसा निषेध किस आधार से किया गया ? शास्त्रीय आधार क्या है ?

उत्तर - यदि साधु के बहराने के निमित्त से सचित्त जल आदि का स्पर्शादि हो जाय, तो वह घर असूझता उस सम्प्रदाय के

वहाँ विराजित मुनियों के लिये होता हैं, परन्तु सतियों के लिए नहीं, इसी प्रकार जो घर सतियों के असूझता हो जाय वह घर उस सम्प्रदाय के मुनियों के लिये असूझता नहीं होता है क्योंकि संत-सतियों के आहार-पानी का संभोग नहीं होता है अर्थात् साधु और साध्वियों के परस्पर आहार पानी देने का और लेने का व्यवहार नहीं होता है, ऐसा शास्त्र का कथन है। इसी प्रकार असूझता घर होने वाले मुनियों ने उस दिन विहार कर दिया हो उस सम्प्रदाय के दूसरे मुनि उसी दिन आ गये हों, तो उन मुनियों के लिए वह घर असूझता नहीं रहता है। उस दिन को संपूर्ण असूझते का कारण इस प्रकार ध्यान में है - गृहस्थ के वहाँ अशनादि ४ तैयार न हुए हों, परन्तु हो रहे हों, ऐसा यदि साधु जान ले, तो झट से पीछा फिर जाय, परन्तु घर में न जावे। यदि वहाँ आहारादि के लिये जाना जरूरी हो, तो कुछ दूर एकान्त में ठहर जावे, अशनादि ४ तैयार हुआ जान कर बाद में जावे- ऐसा आचारांग सूत्र के १० वें अध्ययन के ४ थे उद्देशे में है। इस पर से यह विचार समझ में आता है कि-गृहस्थ आरंभ की शीघ्रता कर लेगा-ऐसी आशंका से मुनि झट से फिर जावे, तो फिर साक्षात् मुनि को बहराने के निमित्त से जीवों की विराधना होने पर तो मुनि, उस दिन उनके यहाँ, उनके तथा दूसरों के हाथों से बहरे ही कैसे ? अतः वह दिन अवश्य टालना चाहिए। उस दिन उस घर से आहारादि नहीं लेना चाहिए।

६४५ प्रश्न - गृहस्थ के हाथ में कोई सचित्त वस्तु हो और वह वन्दना करे और कहे कि "पधारो, गोचरी का लाभ दो" उसके इतना कहने मात्र से वह घर असूझता हो जाना और वहाँ से

छ भी न लेना-ऐसा कोई-कोई कहते हैं, तो ऐसी प्रवृत्ति किस आधार से होती है ? क्या यह 'अधिक-प्ररूपणा' दोष नहीं है ?

उत्तर - रास्ते में कोई गृहस्थ मिले और "मेरे घर पधारो, गोचरी का लाभ दो" इस प्रकार कह दे, तो उसके कहने मात्र से घर असूझता नही होता तथा साधु किसी के यहां जावे, वहाँ कोई असूझता भद्र गृहस्थ बहराने के निमित्त तो नहीं उठे, परन्तु सहज ही वन्दना के निमित्त उठे, तो घर असूझता नहीं होता, परन्तु साधु के अंदर जाने के रास्ते के लिए तथा बहराने के लिए जीवों की विराधना आदि का कारण हुआ हो, तो घर असूझता समझना चाहिए।

६४६ प्रश्न - पंजाब और मारवाड़ आदि देशों के कुछ मुनि और तेरापंथी साधु अपने स्थान से रात को एक सौ कदम की दूरी तक व्याख्यान देने जाते हैं, तो इसके लिए कोई शास्त्रीय आधार है क्या ?

उत्तर - रात को व्याख्यान देने के लिए स्थानान्तर सौ कदम तक जाने के लिये कोई शास्त्रीय-प्रमाण नहीं है।

६४७ प्रश्न - सुलसा सती के देवदत्त आदि ३२ पुत्र हुए थे, या ३२ लक्षणों वाला एक ही पुत्र हुआ था ?

उत्तर - सुलसा सती के ३२ पुत्र हुए थे।

६४८ प्रश्न - छठी सती पुष्पचूला का विवाह हुआ था या नहीं ? यदि हुआ था, तो किसके साथ ? उसके भाई पुष्पचूल के साथ हुआ था क्या ?

उत्तर - छठी सती पुष्पचूला का विवाह, पुष्पचूल नाम के अपने भाई के साथ ही हुआ था। यह विवाह इनकी माता पुष्पवती

रानी के मना करने पर भी इसके पिता-पुष्पकेतु राजा ने कर दि
था। इस प्रकार कथा में है। किन्तु वह कथा प्रामाणिक मालूम न
होती है। क्योंकि शिष्ट पुरुष लोकविरुद्ध कोई भी प्रवृत्ति न
करते हैं।

६४९ प्रश्न - तीर्थंकर मुखवस्त्रिका क्यों नहीं रखते ?

उत्तर - अनादिकाल से तीर्थंकरो की यही रीति है कि
दीक्षा लेकर मुखवस्त्रिका आदि कोई भी उपकरण नहीं रखते अं
ज्ञान एवं अप्रमत्तता पूर्वक सतत सावधानी से संयम के अविरु
प्रवृत्ति ही करते हैं। उनके मुखवस्त्रिका बिना भी हाथ आदि
यतना कर के बोलने की सावधानी निरन्तर रहने का सम्भव है
अतः उनके मुखवस्त्रिका आदि की कोई आवश्यकता नहीं रहती

६५० प्रश्न - क्या ऋषभदेव भगवान् ने युगलनी के सा
नाता (पुनर्विवाह) किया था ?

उत्तर - एक युगल, लघुवय का ही था। उसको यु
अवस्था प्राप्त नहीं हुई थी, उसका रक्षण माता-पिता ही कर र
थे, ऐसी अवस्था में शास्त्रकार उन्हें बहिन-भाई ही मानते हैं। उ
बाल अवस्था में, उस युगल में बालक मर गया और बालिका र
गई। उस बालिका का पालन पोषण माता-पिता ने किया था। पि
अवस्था में आने के बाद उस कुमारी कन्या के साथ भगवा
ऋषभदेव का विवाह हुआ, परन्तु नाता (पुनर्विवाह) नहीं। ना
कहने वाले भगवान् पर झूठा कलंक लगाते हैं।

६५१ प्रश्न - ग्यारह गणधरों में से कितने गणधरों ने ना
(पुनर्विवाह) किये ?

उत्तर - किसी भी गणधर ने नाता (पुनर्विवाह) नहीं किया

कई लोग 'छठे-सातवें गणधर की माता ने नाता किया' - ऐसा आक्षेप करते हैं, परन्तु इस बात का खंडन भी समवायांग सूत्र के ३०, ८३, ६५ और ९५ वें समवाय के मूलपाठ से होता है। अतः उनका यह कहना भी मिथ्या है।

६५२ प्रश्न - पहली पहर में लाया हुआ धोवण, चौथी पहर में काम में नहीं आता, लेकिन गृहस्थ के यहाँ से पहली पहर का किया हुआ धोवण, दूसरे पहर आदि में लाने के चौथे पहर में भी काम में लिया जाता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर - आहार, पानी, लवंग, सूंठ, चूरण, लेपन आदि वस्तु, साधु के ग्रहण करने के बाद, साधु के लिये वापरने का सहजिक कल्प ३ पहर का ही है। अतः लवंगादि की तरह धोवण भी चौथी पहर में काम नहीं आता है और वही धोवण आदि दूसरी पहर में लाने के बाद सूर्यास्त के पहले-पहले काम मे आ सकता है। इसमे कोई शास्त्रीय बाधा नहीं है।

६५३ प्रश्न - साध्वी का व्याख्यान, स्त्री और पुरुषो की परिषदा में पहले कभी हुआ था या नही। जो हुआ हो तो शास्त्र मे किस जगह आया है ?

उत्तर - नन्दी सूत्र तथा सिद्ध प्राभृत की टीका मे साध्वियों के प्रतिबोधित पुरुषो का सिद्ध होना बताया है। अतः साध्वियाँ स्त्री और पुरुषों की सम्मिलित सभा मे भी उपदेश दे सकती हैं। यह टीका निम्न प्रकार है - "बुद्धिभिर्बोधितानां स्त्रीणां विंशति बुद्धिभिर्बोधितानामेव सामान्यतः पुरुषादीनां विंशति पृथक्त्वम् 'पुरुसाईणं सामन्नेण वीस पुहुत्तं सिज्झइति'. बुद्धि... मल्लिस्वामिनिप्रभृतिका तीर्थकरी सामान्यसाध्व्यादिका वा बोधि...



६५७ प्रश्न - 'चैत्य' किस को कहते हैं और कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - ज्ञान, साधु, स्थूप (चिता पर का स्थूप) व्यंतरायतन, वृक्ष विशेष आदि अनेक वस्तुओं को 'चैत्य' कहते हैं। अर्थात् ादि अनेक चीजें चैत्य कहलाती हैं।

६५८ प्रश्न - अछाया किसे कहते हैं ? क्या छाजों के नीचे हका' के जीव आते हैं ?

- छाया हुआ मकान व वृक्ष आदि के नीचे तो जाती। खास कर ऊपर उघाडा (खुला) हो, ते हैं। ऐसे ऊपर उघाड़े मकानादि हों, वहाँ बैठना आदि नहीं कल्पता। छाजे चौड़े और चे बैठने में अछाया सम्बन्धी कोई हरज क्ष्म स्नेहकाय के जीव आने का संभव

यतः सिद्धप्राभृत टीकायामेवोक्तं बुद्धिओ वि मल्लिप्पमुहाओ अन्नाओ य सामण्ण साहुणी पमुहाओ बोहंतित्ति।"

६५४ प्रश्न - स्त्री सातवीं नरक में क्यों नहीं जाती ?

उत्तर - आयु बन्ध के प्रसंग पर स्वभाव से ही स्त्री के सप्तमी नरक का आयु-बन्ध हो, ऐसे अध्यवसाय उत्पन्न ही नही होते हैं। अतः स्त्री सातवीं नरक में नहीं जाती है।

६५५ प्रश्न - सौ वर्षो की दीक्षित साध्वी भी एक दिन के दीक्षित साधु को वन्दना करे-ऐसा क्यों बताया है ? महाव्रत पांच दोनों के हैं, फिर साधु पद ऊँचा क्यों है ?

उत्तर - साधु और साध्वियों में महाव्रत की समानता होते हुए भी पुरुष के वन्दन से साध्वियों में अभिमान आदि की मात्रा न बढ़ जाय तथा ब्रह्मचर्य की सुरक्षा आदि कारण देख कर ही प्रभु ने 'पुरुष-ज्येष्ठकल्प' फरमाया है - ऐसा संभव है। इसी कल्प के हिसाब से पुरानी दीक्षित साध्वी भी नव-दीक्षित साधु को वन्दना करती है और बड़ा (पुरुष-ज्येष्ठ) भी मानती है और ऐसा करना ही ठीक प्रतीत होता है।

६५६ प्रश्न - जीवाभिगम सूत्र में ५ स्थावर के बजाय ३ स्थावर ही क्यों बताये ?

उत्तर - तेउकाय और वायुकाय को स्थावर होते हुए भी गति करने के (घास आदि चीजें सुलगते हुए तेउकाय आगे चलती है और वायुकाय भी हवा रूप में आगे चलती है) कारण जीवाभिगम सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र में 'त्रस' बतलाये हैं। अर्थात् तेउकाय और वायुकाय स्थावर हैं, परन्तु गति करने के कारण इन्हें 'त्रस' भी कहते हैं। अर्थात् तेउकाय और वायुकाय 'गतित्रस' कहलाते हैं।

६५७ प्रश्न - 'चैत्य' किस को कहते हैं और कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - ज्ञान, साधु, स्थूप (चिता पर का स्थूप) व्यंतरायतन, वृक्ष विशेष आदि अनेक वस्तुओं को 'चैत्य' कहते हैं। अर्थात् ज्ञानादि अनेक चीजें चैत्य कहलाती हैं।

६५८ प्रश्न - अछाया किसे कहते हैं ? क्या छाजों के नीचे सूक्ष्म स्नेहकाय के जीव आते हैं ?

उत्तर - छाया हुआ मकान व वृक्ष आदि के नीचे तो अछाया नही गिनी जाती। खास कर ऊपर उघाड़ा (खुला) हो, उसे 'अछाया' कहते हैं। ऐसे ऊपर उघाड़े मकानादि हो, वहाँ साधु को रात्रि में सोना बैठना आदि नहीं कल्पता। छाजे चौड़े और लम्बे हो तो छाजे के नीचे बैठने में अछाया सम्बन्धी कोई हरज नहीं है। छाजे के नीचे सूक्ष्म स्नेहकाय के जीव आने का संभव नहीं रहता है।

६५९ प्रश्न - दो हाथ की अवगाहना के सिद्ध कैसे हुए ?

उत्तर - कोई लघुवय अर्थात् छोटी उम्र (नव वर्ष) में वामन संस्थान वाले मुनि, चौथे आरे के अन्त में अथवा पांचवें आरे के पारंभ में मोक्ष जावे, तो ऐसे प्रसंग पर दो हाथ की अवगाहना वालों का सिद्ध होना संभवित हो सकता है।

६६० प्रश्न- क्या 'अवधि' ज्ञान भी है और अज्ञान भी है ?

उत्तर - मति, श्रुत और अवधि ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियों के क्षयोपशम के साथ दर्शन-सप्तक (अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र-मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय, इन सात प्रकृतियों) का क्षयोपशमादि हुआ हो,

यतः सिद्धप्राभृत टीकायामेवोक्तं बुद्धिओ वि मल्लिप्पमुहाओ अन्नाओ य सामण्ण साहुणी पमुहाओ बोहंतित्ति।"

६५४ प्रश्न - स्त्री सातवीं नरक में क्यों नहीं जाती ?

उत्तर - आयु बन्ध के प्रसंग पर स्वभाव से ही स्त्री के सप्तमी नरक का आयु-बन्ध हो, ऐसे अध्यवसाय उत्पन्न ही नहीं होते हैं। अतः स्त्री सातवीं नरक में नहीं जाती है।

६५५ प्रश्न - सौ वर्षों की दीक्षित साध्वी भी एक दिन के दीक्षित साधु को वन्दना करे-ऐसा क्यों बताया है ? महाव्रत पांच दोनों के हैं, फिर साधु पद ऊँचा क्यों है ?

उत्तर - साधु और साध्वियों में महाव्रत की समानता होते हुए भी पुरुष के वन्दन से साध्वियों में अभिमान आदि की मात्रा न बढ़ जाय तथा ब्रह्मचर्य की सुरक्षा आदि कारण देख कर ही प्रभु ने 'पुरुष-ज्येष्ठकल्प' फरमाया है - ऐसा संभव है। इसी कल्प के हिसाब से पुरानी दीक्षित साध्वी भी नव-दीक्षित साधु को वन्दना करती है और बड़ा (पुरुष-ज्येष्ठ) भी मानती है और ऐसा करना ही ठीक प्रतीत होता है।

६५६ प्रश्न - जीवाभिगम सूत्र में ५ स्थावर के बजाय ३ स्थावर ही क्यों बताये ?

उत्तर - तेउकाय और वायुकाय को स्थावर होते हुए भी गति करने के (घास आदि चीजें सुलगते हुए तेउकाय आगे चलती है और वायुकाय भी हवा रूप में आगे चलती है) कारण जीवाभिगम सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र में 'त्रस' बतलाये हैं। र्थात् तेउकाय और वायुकाय स्थावर हैं, परन्तु गति करने के इन्हें 'त्रस' भी कहते हैं। अर्थात् तेउकाय और वायुकाय 'गतित्रस' कहलाते हैं।

६५७ प्रश्न - 'चैत्य' किस को कहते है और कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - ज्ञान, साधु, स्थूप (चिता पर का स्थूप) व्यतरायतन, वृक्ष विशेष आदि अनेक वस्तुओं को 'चैत्य' कहते है। अर्थात् ज्ञानादि अनेक चीजे चैत्य कहलाती हैं।

६५८ प्रश्न - अछाया किसे कहते है ? क्या छाजों के नीचे सूक्ष्म स्नेहकाय के जीव आते हैं ?

उत्तर - छाया हुआ मकान व वृक्ष आदि के नीचे तो अछाया नहीं गिनी जाती। खास कर ऊपर उघाडा (खुला) हो, उसे 'अछाया' कहते हैं। ऐसे ऊपर उघाड़े मकानादि हो, वहाँ साधु को रात्रि मे सोना बैठना आदि नही कल्पता। छाजे चोड़े और लम्बे हो तो छाजे के नीचे बैठने मे अछाया सम्बन्धी कोई हरज नही है। छाजे के नीचे सूक्ष्म स्नेहकाय के जीव आने का संभव नहीं रहता है।

६५९ प्रश्न - दो हाथ की अवगाहना के सिद्ध कैसे हुए ?

उत्तर - कोई लघुवय अर्थात् छोटी उम्र (नव वर्ष) मे वामन सस्थान वाले मुनि, चौथे आरे के अन्त मे अथवा पांचवे आरे के पारंभ में मोक्ष जावे, तो ऐसे प्रसंग पर दो हाथ की अवगाहना वालो का सिद्ध होना संभवित हो सकता है।

६६० प्रश्न- क्या 'अवधि' ज्ञान भी है और अज्ञान भी है ?

उत्तर - मति, श्रुत और अवधि ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियों के क्षयोपशम के साथ दर्शन-सप्तक (अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र-मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय, इन सात प्रकृतियों) का क्षयोपशमादि हुआ हो,

तो तीन ज्ञान और दर्शन-सप्तक का क्षयोपशमादि नहीं हुआ हो तो तीन अज्ञान होते हैं। अज्ञान-दशा में ही वह 'विभंगज्ञान' अथवा अवधिअज्ञान कहलाता है।

६६१ प्रश्न- पूर्व और पश्चिम महाविदेह किस प्रकार है ?

उत्तर - मेरु पर्वत के पूर्व की ओर १६ विजय 'पूर्व महाविदेह' की है और पश्चिम की ओर की १६ विजय 'पश्चिम महाविदेह' की है। इस प्रकार पूर्व महाविदेह और पश्चिभ महाविदेह कहलाता है।

६६२ प्रश्न - तंदुलमच्छ गर्भज है या सम्मूर्च्छिम ?

उत्तर - 'तन्दुल' नाम चावल का है। जिस मच्छ की अवगाहना चावल जितनी हो और उसी आकार का हो, उसे 'तंदुल मच्छ' कहते हैं। वे सन्नी और असन्नी दोनों प्रकार के हो सकते हैं। परन्तु पहली नरक से आगे के नरक में जाने वाले एकान्त सन्नी ही होते हैं। गर्भज को सन्नी (संज्ञी) और अगर्भज को असन्नी (असंज्ञी) कहते हैं।

६६३ प्रश्न - जैन-धर्म का मूल क्या है और इसका लक्षण क्या है ?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा अनुसार महाव्रतों का और अणुव्रतों का पालन जैनधर्म का मूल है और सम्यग्-दर्शन और सम्यग्ज्ञान, जैनधर्म का लक्षण है।

६६४ प्रश्न - सम्प्रदाय कैसे चली ? और २२ संप्रदाय क्यों कही गई ?

उत्तर - दूर-दूर विचरने के कारण अधिक साधु-साध्वियों की एक आचार्य से संभाल न होने के कारण तथा आचरण

(समाचारी) भेद के कारण इत्यादि कारणों से सम्प्रदाये चली। २२ मुख्य प्रभावक पुरुष मध्यकाल में (कुछ काल पूर्व) हुए, वे भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विचरण कर के लोगों में धर्म-भावना भरते-जागृत करते थे। अतः उन २२ महापुरुषों के नाम से २२ सम्प्रदाय नाम प्रचलित हुआ।

६६५ प्रश्न - ग्रहण किसे कहते हैं ?

उत्तर - चन्द्र तथा सूर्य के विमान के और मनुष्यों के बीच में राहू का विमान आने से ग्रहण होता है। अर्थात् पर्वराहू का विमान इधर-उधर जाते और आते हुए चन्द्र और सूर्य के विमान के नीचे आने से एवं आवृत्त रूप दिखने को 'ग्रहण' कहते हैं।

६६६ प्रश्न - गाथापति, कौटुम्बिक और सार्थवाह किसे कहते हें ?

उत्तर - गाहावई (गाथापति) - गृहपति (घर-धणी) ओर माडलिक राजा को 'गाहावई' कहते हैं। कौटुम्बिक-कुटुम्ब के स्वामी को 'कौटुम्बिक' कहते हैं। सार्थ (समूह) के नायक को 'सार्थवाह' कहते है। सार्थवाह के लक्षण इस प्रकार बतलाये हें-जिस राजा का बहुमान हो, जो लोक मे प्रसिद्ध हो, जो दीनो का नाथ हो और प्रवास में चलते, मार्ग में वत्सलता करने वाला हो, उसे 'सार्थवाह' कहते है।

६६७ प्रश्न - बादाम के गोटे सचित्त है या अचित्त ?

उत्तर - बादाम के अखण्ड गोटे (मज्जा) सचित्त होते हैं।

६६८ प्रश्न - वर्षात मे आवे, जावे उसका मांगलिक कहना या नहीं ?

उत्तर - वर्षात की बूंदों में ठहरे हुए भाई-बहिन आदि को

मांगलिक नहीं सुनाना क्योंकि पानी के जीवों की विराधना हो
है। यदि वे जहां छींटे न लगते हों वहाँ खड़े हों, तो मांगलि
सुना सकते हैं।

६६९ प्रश्न - चौमासे में गृहस्थ के यहाँ से पाट लाना देना योग्य है या नहीं तथा उतरे हुए मकान आदि के पाटपा की आज्ञा लेनी व छोड़नी या नहीं ?

उत्तर - चौमासे में गृहस्थों के यहाँ से पाट, बाजोट सकते हैं तथा लाए हुए वापिस भी दे (संभला) सकते हैं। इ प्रकार उतरे हुए मकान में से भी ले सकते हैं और संभला स हैं।

६७० प्रश्न - परमाधार्मिक और जृम्भक देवों मे कि लेश्या पाई जाती है ?

उत्तर - भगवतीसूत्र के तीसरे शतक के ७ वें उद्देशक परमाधार्मिक देवों को यम लोकपाल के पुत्र स्थानीय बतलाये और वहीं पर उनकी स्थिति एक पल्योपम की बतलाई है तथा वें शतक के ८ वें उद्देशक में जृम्भक देवों की स्थिति भी ए पल्योपम की बतलाई है। उपरोक्त स्थिति के हिसाब से परमाधार्मि और जृम्भक इन दोनों प्रकार के देवों में द्रव्य लेश्या एक तेजो पाई जाती है। क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र के ३४ वें अध्ययन लेश्याओं की स्थिति का वर्णन देखने से स्पष्ट होता है कि पल्योपम के असंख्यातवें भाग वाले देव में तो कृष्णादि ४ लेश्या में से द्रव्य-लेश्या एक ही होती है और पल्योपम के संख्यात भाग की स्थिति से लेकर यावत् पल्योपमादि की स्थिति वाले दे में द्रव्य-लेश्या एक तेजो ही होती है। यदि उपरोक्त दोनों प्रक

क देवो के परिवारभूत व आभियोगिक देव छोटी (पल्योपम के सख्यातवें भाग की) स्थिति के हों, तो उनमें लेश्या कृष्णादि ४ से एक हो सकती है। अन्यथा एक पल्योपम वालों मे तो वल एक तेजोलेश्या ही समझनी चाहिए।

शंका - यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि अंब, अंबरीष आदि ाम जातिवाचक है, या व्यक्तिवाचक ? यदि जातिवाचक नाम है, व तो परमाधार्मिक और जृम्भक सभी देवो में एक ही तेजोलेश्या ोनी चाहिए। इनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक पल की ोती है। इससे कम स्थिति किसी की नही होती, चाहे वह उनका ारिवारिक या आभियोगिक देव ही क्यों न हों, जैसे कि चन्द्र-वमानवासी देवों की जघन्य स्थिति पाव पल और उत्कृष्ट एक ल एक लाख वर्ष की है। इनमें चन्द्र देवों के पारिवारिक या आभियोगिक देवो की भी इससे कम स्थिति होना संभव नही है, सी प्रकार परमाधार्मिक और जृम्भक जाति के सभी देवो मे एक ल की स्थिति होती है। इससे कम स्थिति होना सभव नही। अतः इन सब मे एक तेजो-लेश्या ही होनी चाहिए।

इन देवो के पारिवारिक या आभियोगिक देवो में इससे छोटी स्थिति होती हो और उनमें चार लेश्याओं में से कोई एक लेश्या पाई जाती हो-ऐसा कोई शास्त्रीय प्रमाण आपके ध्यान में हो, तो फरमाने की कृपा करें।

समाधान - अंब, अंबरीष आदि नाम जातिवाचक हैं, परन्तु जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का खुलासा कर के वहां नही बताया गया है। जैसे सर्वार्थसिद्ध विमान की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट के बिना बताई है, वैसे परमाधार्मिक और जृम्भक देवों की स्थिति

नहीं बताई है। कदाचित् शास्त्रकारों ने बाहुल्य पक्ष व मुखियाओं को ध्यान में लेकर ही कही हो। अतः परमाधार्मिक और जृंभक के परिवारभूत व आभियोगिकों में से कोई देव-देवी की स्थिति कदाचित् कम होती हो और उसके लिए विचारों में किंचित् स्थान दिया जाय, तो हरज की बात नहीं है ?

६७१ प्रश्न - तीसरे और छठे देवलोक के देवों में कितनी लेश्या पाई जाती है ?

उत्तर - तीसरे देवलोक के देवों में एक पद्म-लेश्या और छठे देवलोक के देवों में एक शुक्ल-लेश्या भगवती सूत्र के २४ वें शतक के २० वें उद्देशे में बतलाई है।

६७२ प्रश्न - अपने घर गृहस्थी कार्य के लिये कोई भी कामना कर के भगवान् से याचना नहीं करनी चाहिये और आशा रख कर तपस्या भी नहीं करनी चाहिये-ऐसा हमने आप लोगों से सुना है। यहाँ शंका होती है कि श्री कृष्ण जी ने तेला कर के माता की इच्छा पूर्ण की, सुभद्रा सती ने तेला कर के देव को बुलाया और चंपापुरी का कपाट बन्द करवाया और उस सती ने काचे धागे से छानी (चालनी) बांध कर पानी निकालकर छिटका तब कपाट खुले। किन्तु आजकल ऐसी तपस्या करने की मनाई करते हैं, इसका क्या कारण है ? इस प्रकार रुकावट से ही अच्छे-अच्छे जैनी, कुदेव और कुगुरु को मानने लग गये हैं ?

उत्तर - दशवैकालिक सूत्र के ९ वें अध्ययन के चौथे उद्देशक में भगवान् ने साफ मना किया है कि - इस लोक की इच्छा आदि से तप नहीं करना, सिर्फ कर्मों की निर्जरा के लिए ही तप करना चाहिए तथा और भी अनेक सूत्रों में सांसारिक कामना

रख कर तप करना निषेध किया है। तदनुसार ही साधु इसके निषेध का उपदेश करते हैं, केवल अपनी रुचि से नहीं। श्री कृष्ण-वासुदेव ने, अभयकुमार ने, चक्रवर्तियों ने और कोणिक आदि अनेकों ने जो सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए तेले किये तथा अब भी कई करते हैं, वे अपनी इच्छानुसार करते हैं, परन्तु प्रभु आज्ञा से नहीं। यदि साधुओं का बहाना नहीं कर के, साधुओं की आज्ञा मान कर ही गृहस्थ वैसा कामनायुक्त तप नहीं करते हों, तब तो कुगुरु व कुदेवों को भी नहीं मानना चाहिये। क्योंकि इनको मानने का भी साधु, प्रभु आज्ञा से पूर्ण निषेध करते हैं। अतः दोनों प्रवृत्तियों को रोक कर प्रभु आज्ञानुसार कर्म-क्षय के लिये ही तप करना चाहिये। कर्म हटने से अवश्य सुख होता है। अतः यही उचित है।

६७३ प्रश्न - चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति, इन दोनों सूत्रों के पाठ क्या समान है ? अगर समान हैं तो क्यों ?

उत्तर - चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति-ये दोनों सूत्र छठे अंग के उपांग माने गये है। अभी इन दोनों सूत्रों का पाठ कुछ श्लोकों के अलावा प्रायः समान है। इन सूत्रों की टीका करने वाले आचार्य मलयगिरि हैं। वे खुद कहते हैं कि - सूर्यप्रज्ञप्ति की निर्युक्ति पहले भद्रबाहुस्वामी द्वारा की गई। काल-प्रभाव से यह प्राप्त नही है। अतः मैं केवल सूत्र की व्याख्या करूँगा। इन दोनों सूत्रों का पाठ प्रायः समान ही क्यों है-इसके अनुमान में कई विचार पैदा हो सकते हैं। जैसे कि सूर्यप्रज्ञप्ति की दो नकलें पड़ी हो, उसमें से एक नकल में एकाध पाना चंद्रप्रज्ञप्ति का शामिल हो गया हो, उस पन्ने को देख के सूर्यप्रज्ञप्ति पर ही चन्द्रप्रज्ञप्ति नाम

लगा दिया हो फिर नकलें होकर प्रचलित हो गई हो। अथवा शास्त्र लिपि-बद्ध करते समय इन दोनों सूत्रों को भिन्न-भिन्न साधु लिपिबद्ध कराते, एक तरफ एक सूत्र का और दूसरी तरफ दूसरे सूत्र के बदले भ्रांति से उसी सूत्र को लिपि-बद्ध करा दिया हो,या दीमक वगैरह पाने को खा जाने से दूसरे सूत्र की भ्रांति से दूसरे का ही नाम लगा दिया गया हो ? इत्यादि अनेक शंकाएँ उपस्थित हो सकती है। इसका खास कारण तो विशेषज्ञ और सर्वज्ञ ही जाने।

६७४ प्रश्न - युवक और हट्टाकट्टा मनुष्य, स्वस्थ दशा मे संथारा मांगे, तो साधु उसे संथारा करावे या नहीं ?

उत्तर - विशेष ज्ञानी तो ज्ञान मे जैसा उचित समझे वैसा करे, परन्तु सामान्य साधु को ऐसी स्वस्थ हालत मे मनुष्य को विशेष कारण समझे बिना, आग्रहपूर्वक मांगने पर भी संथारा नही कराना चाहिए। यदि संथारा करने वाले को और कराने वाले को किसी कारणवश उस विषय का कोई विशेष अनुभव हुआ हो तथा किसी देव आदि की स्पष्ट विश्वास कारक सहायता मिली हो एवं जनता मे अविश्वास का कारण न हो, इत्यादि कोई विशेष कारण ठीक समझ में आने पर करावें, तो वह बात निराली है, अन्यथा नहीं।

६७५ प्रश्न - बीमार हालत में मनुष्य अत्यधिक कष्ट देखकर संथारा करले, किन्तु बाद में हालत सुधरने पर खाना पीना मांगे, तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर - जीव, शरीर, आहार, क्षुधा, कर्म, प्रत्याख्यान आदि स्वरूप का विचार करके उसको अपनी की हुई प्रतिज्ञा मे दृढ़

रहना ही श्रेयस्कर है। दूसरों का भी यही कर्त्तव्य है कि उपरोक्त वस्तुओं का स्वरूप भलीभांति समझा कर उसके भावो को दृढ़ करे। उसके भाव दृढ़ होने पर ही उसका संथारा गिना जायगा, अन्यथा नही। अगर उसके भाव दृढ़ व स्थिर न हों, तो जैसी उसकी मरजी होगी, वैसा वह करेगा। परन्तु उसको जबरन् नहीं रोकना चाहिये। यदि उसको जबरन् रोक कर खाने नही दिया जाय तो भी भावों से तो उसका संथारा नहीं रहता। फिर उसको जबरन् क्यों रोका जाय ? आहार की तीव्र अभिलाषा रूप आर्त्तध्यान, उसकी दुर्गति का एवं धर्म-विरुद्ध बनने का कारण होगा। बलात् नही रोकने पर कदाचित् कालांतर में वह अपने भावो को सुधार कर अपनी प्रतिज्ञा भंग का खेद करता हुआ प्रायश्चित्त लेकर पुनः शुद्ध त्यागी बन कर जीवन सुधार सकता है। कुछ भी हो, ऐसी हालत मे जबरन् रोकना प्रभु आज्ञानुकूल नही है। अतः जबरन् नही रोकना चाहिये।

६७६ प्रश्न - साधु के संथारा करने के बाद हालत सुधर गई हो और वह संथारा तोड़ कर आहार पानी करे, तो उसकी साधुता कायम रहती है क्या ?

उत्तर - जिस साधु ने केवल संथारा भंग कर के खाना-पीना चालू कर दिया है, इसके सिवाय किसी अन्य गुण का भंग नहीं किया है, अर्थात् जिसकी श्रद्धा (यानी 'संथारा अच्छा है, प्रभु ने यह बड़ा सुन्दर मार्ग बतलाया है। मैंने मेरी कमजोरी से भग किया है। यह अच्छा नहीं किया,' आदि आदि विचारो से उसकी श्रद्धा) शुद्ध हो और उनके अनुसार ही प्ररूपणा (कथन) हो एवं फरसना अर्थात् संथारा भंग के अलावा शेष संयम-क्रिया का

पालन करना भी भावपूर्वक बराबर हो, ऐसी अवस्था में संथारा भंग होने पर भी साधुपना कायम रहता है। खान-पान की प्रतिज्ञा भंग का जो दोष लगा है, वह तो है ही, परन्तु साधुपन तो उसमे मानना चाहिये। अपनी उस पूर्व-प्रतिज्ञा भंग की पुनः शुद्धि कर के वह आराधक भी हो सकता है। विपरीत श्रद्धा-प्ररूपणा और स्पर्शना होने पर साधुपना नहीं रहता।

६७७ प्रश्न - शिथिलाचारी साधु को वंदना करने से कर्म हल्के होते हैं या भारी होते हैं ? यदि उस साधु को चारित्रहीन समझ कर वंदना नहीं करे, तो क्या हर्ज है ?

उत्तर - निशीथ आदि सूत्रों में साधु के गुणों से रहित और दूषित आचार वाले ऐसे जो "पार्श्वस्थ" आदि है, उनको अवंदनीय बताया है और उनको वंदना करने से प्रायश्चित्त भी बताया है।

६७८ प्रश्न - क्या केवलज्ञानी का संहरण हो सकता है ?

उत्तर - केवली का संहरण नहीं होता। छद्मस्थ अवस्था में संहरण होने के बाद में केवली हो सकते हैं।

६७९ प्रश्न - यथाख्यात-चारित्र में संहरण होवे या नही ?

उत्तर - यथाख्यात-चारित्र होने के बाद संहरण नहीं होता। संहरण होने के बाद यथाख्यात-चारित्र हो सकता है।

६८० प्रश्न - स्नातक-नियंठा वाले को केवली समझना, या यथाख्यात-चारित्र वाले को ?

उत्तर - यथाख्यात-चारित्र में गुणस्थान चार (११, १२, १३, १४) होते हैं और केवली में गुणस्थान दो (१३, १४) होते हैं तथा स्नातक-नियंठा में गुणस्थान दो (१३, १४) है। अतः स्नातक-नियंठे को केवली और यथाख्यात-चारित्री को दोनों (केवली और छद्मस्थ) कह सकते है।

६८१ प्रश्न – "चौथे पलिभाग" और चारों पलिभाग का क्या अर्थ है ?

उत्तर – भरत और ऐरवर्त क्षेत्रों में – अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के छह–छह आरे होते हैं, परन्तु देवकुरु आदि युगलियो के क्षेत्रो में और महाविदेह क्षेत्र में आरे नहीं होते हैं। वहाँ वर्तने वाले काल के नाम निम्न प्रकार है – यहाँ 'सुषमसुषम' नाम के आरे में जो उत्कृष्ट रचनायें होती है, वैसी रचनायें वहाँ देवकुरु व उत्तरकुरु में निरन्तर रहती है। अतः देवकुरु और उत्तरकुरु में जो काल वर्तता है, उसको 'सुषमसुषम' नामक पहिला पलिभाग (सुषमसुषम के समान) कहते हैं। इसी प्रकार हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों में 'सुषम' नामके आरे की उत्कृष्ट रचनायें होने से वहाँ 'सुषम' नामक दूसरा पलिभाग गिना जाता है, इसी प्रकार हेमवय और हेरण्णवय क्षेत्रों में 'सुषम–दुःषम' नाम के आरे की उत्कृष्ट रचनायें होने से वहाँ 'सुषम–दुःषम' नामका तीसरा पलिभाग गिना जाता है और महाविदेह क्षेत्र में 'दुःषमसुषम' आरे की उत्कृष्ट रचनायें होने से वहाँ 'दुषमसुषम' नामक् चौथा पलिभाग गिना जाता है। इस प्रकार होने से जहाँ चौथा पलिभाग कहा जाय, वहां महाविदेह में समझना और जहां चारों पलिभाग कहा जाय, वहा ऊपर बताए गये युगलियों के क्षेत्रों में और महाविदेह में समझना चाहिये।

६८२ प्रश्न – श्री तीर्थकर भगवान् के समवसरण में १२ प्रकार की परिषद् धर्मोपदेश श्रवण करती है। क्या उसमे पुरुषवर्ग (साधु, श्रावक, देव, तिर्यच) बैठ कर और स्त्रीवर्ग (साध्वी, श्राविका, देवी, तिर्यचनी) खड़ी–खड़ी धर्मोपदेश सुनता है ? यदि

ऐसा है, तो इस भिन्नता का क्या कारण है ? क्या स्त्रीवर्ग वीतरागो के समवसरण मे बैठने लायक भी नहीं है ? यदि स्त्री-वर्ग बैठ कर धर्मोपदेश सुनता है, तो औपपातिक सूत्र में यह पाठ आया है - "कोणियं रायं पुरओ किच्चा ठिइया चेव पज्जुवासई।" टीका - "ठिइया-ऊर्ध्वस्थिता।"

इस पाठ मे आये हुए "ठिइया" शब्द का क्या अर्थ किया जाय ? यदि यहाँ "ठिइया" शब्द का अर्थ 'खड़ा रहना' किया जाय तो, आगे के पाठ से इस पाठ की संगति नहीं बैठती। यथा -

धर्मोपदेश सुनकर जब राजा और रानी वापिस जाने लगे, वहां सूत्र में राजा के लिए यह पाठ आया है - 'उट्ठाए उट्ठेई' अर्थात् पहले राजा बैठा हुआ था, अब जाने के लिये खड़ा हुआ।

रानी के लिये भी इसी प्रकार का पाठ आया है - 'उट्ठाए उट्ठेई।' पहले 'ठिइया' शब्द से रानी का खड़ा रहना माना जाय, तो फिर इस 'उट्ठाए उट्ठेई' पाठ की संगति कैसे होगी ? क्योंकि रानी जब पहिले से ही खड़ी है, तो फिर उसके खड़े होने का सवाल ही कहाँ उठता है ?

यदि स्त्री-वर्ग खड़ा रह कर ही वीतरागों की सेवा करता है और खड़ा रह कर ही धर्मोपदेश सुनता है, तो फिर आजकल मुनिराजों के धर्मोपदेश में स्त्रीवर्ग बैठ कर धर्मोपदेश क्यों सुनता है ? खड़े रहने की परिपाटी कब से बन्द होकर बैठने की परिपाटी चली ?

उत्तर - स्त्रीवर्ग को समवसरण में बैठना नहीं - ऐसा नियम आचारांगादि किसी भी सूत्र मे देखने में नहीं आया। प्रभु की ओर से बैठने की रुकावट न होते हुए भी कोई अपनी इच्छा, नं। आदि से नहीं बैठे, तो यह बात अलग है।

औपपातिक, व्याख्याप्रज्ञप्ति, अंतकृद्दशा, दशाश्रुतस्कन्ध आदि सूत्रों मे स्त्रीवर्ग ने जो खड़े-खडे सेवा की, ऐसा अर्थ दिया है, उससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि वहाँ शास्त्रकारो ने स्त्रियो को बैठने से रोका हो। जैसे आज भी कई लोग रुकावट न होते हुए भी अपनी इच्छा व उमंग आदि से खड़े-खड़े पब्लिक व्याख्यानादि सुनते है, उसी तरह वहां भी समझना चाहिए।

'**ठिइया**' - 'ऊर्ध्वस्थिता' का अर्थ 'ऊँचा ठहर कर' अर्थात् राजा आगे है और रानी पीछे है। यदि आगे बैठने वालो की जमीन नीची और पीछे बैठने वालों की जमीन ऊँची हो, तो 'ऊर्ध्व-स्थिता' का अर्थ बैठने के लिये भी लागू हो सकता है। ऐसी व्यवस्था बैठने वालों के लिए आज भी कई खेल के स्थानों आदि पर होती है।

अगर '**ठिइया**' का अर्थ 'वहीं ठहर कर' - राजा आगे है और रानी पीछे है (उसी स्थान पर ठहर कर - अर्थात् आगे न जाकर वहीं से) सेवा करती है। इन दोनों में से कोई भी अर्थ मान लेने पर फिर स्त्रीवर्ग के बैठने में कोई बाधा नहीं आती। और यह अर्थ मान लेने पर रानियों के लिए जो आगे - '**उट्ठाए उट्ठेई**' पाठ आया है, उससे भी संगति बराबर बैठ जाती है✤।

यद्यपि ऊर्ध्व का अर्थ खड़ा रहना भी होता है, परन्तु वह रानियों के '**उट्ठाए उट्ठेई**' पाठ से मेल नहीं खाता।

✤ आवश्यक सूत्र मलयगिरि टीका, जो आगमोदय समिति से छपा है, भाग २ पत्र ३०४ पृ. २ भाष्य गाथा ५६० की टीका मे लिखा है कि -

"देव्यः सर्वा एव न निषीदन्ति, देवा मनुष्या मनुष्यस्त्रियश्च निषीदन्ति" अर्थात् समवसरण मे देवियाँ नहीं बैठती हैं, किन्तु देव, मनुष्य और मनुष्यस्त्रियाँ बैठती हैं (समवसरणाधिकार) - डोशी।

श्री मल्लिनाथ प्रभु के तो आभ्यंतर परिषद् साध्वियों की ही थी, ऐसा सूत्र में उल्लेख है। वे साध्वियाँ सदैव सोना, बैठना, खाना-पीना आदि प्रभु के पास ही करती थीं और उनकी वैयावृत्य भी साध्वियाँ ही करती थीं। यदि वीतराग के समवसरण में स्त्रियों का बैठना निषिद्ध होता, तो यह बात कैसे सम्भव होती ?

बैठना निषिद्ध न होने पर ही विशेष वृद्धा, पैरों से अपंग एवं उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प आदि की अनेक स्त्रियाँ सेवा व श्रवण का लाभ ले सकती है, अन्यथा नहीं।

साध्वी, वीतराग की वाणी (ग्यारह अंगादि) को कंठस्थ करके बैठी-बैठी उसका स्वाध्याय करती है, तब फिर बैठ कर श्रवण करने में बाधा ही क्या हो सकती है ? श्रुतज्ञान के लिये स्त्रियों में दृष्टिवाद सीखने का क्षयोपशम नहीं होता, अतः दृष्टिवाद उनके लिये नहीं बतलाया गया। परन्तु शास्त्रकार स्त्रियों को दृष्टिवाद सीखने-सीखाने से मना नहीं करते। यदि पक्षपाती दृष्टि से ही उनके लिए दृष्टिवाद की रुकावट बताई गई होती, तो उनके लिये अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान होना तो बताते ही कैसे ? शास्त्रकारों की पूर्ण निष्पक्ष दृष्टि है। अतः स्त्री का सातवीं नरक में जाना वर्जित बताया है। परन्तु पुरुष जाते हैं और मोक्ष के लिये दोनों की समानता है। स्त्रियों की तो क्या, शास्त्रकार को तिर्यंच आदि किसी की भी महत्ता नहीं छिपाते। उदाहरणार्थ - अन्तर्मुहूर्त्त का तिर्यंच आठवें स्वर्ग में जा सकता हैं, परन्तु मनुष्य (बिना प्रत्येक वर्ष के) नहीं जाता। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय से निकल कर मनुष्य होकर केवली हो सकते हैं। परन्तु सप्तमी नरक के तथा युगलिक मर कर सीधे मनुष्य भी नहीं

हो सकते हैं तथा विकलेन्द्रिय से आये हुए मनुष्य होने पर भी केवली नहीं हो सकते। अतः जहाँ जिसकी जैसी स्थिति, स्वभावादि होते हैं, शास्त्रकार वहाँ वैसा ही फरमाते हैं, इत्यादि अनेक प्रमाणों से उनकी निष्पक्षता सिद्ध है।

धर्मोपदेश सुनने के लिये बैठने की परिपाटी नवीन नहीं है, क्योंकि धर्मोपदेश के अतिरिक्त भी कई कारणों से साधु और साध्वी को एकत्रित बैठने का अधिकार बताया है। जैसे - "**पंचहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ य एगत्तओ ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणे णाइक्कमइ तं जहा....पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे अचेलए सचेलियाहिं निग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ तंजहा.........** (स्थानांग ठा. ५ उ. २ सूत्र ४१७) "**छहीं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ य साहम्मियं कालगयं समायरमाणा णाइक्कमइ तंजहा.....** (ठा. ६ सूत्र ४७७) एवं व्यवहार सूत्र के सातवें उद्देशे में भी कारणवश कुछ काल तक साधु, साध्वी साथ रह सकते हैं, ऐसा वर्णन है। विकट काल मे भी साध्वी, साधु की नेश्राय से बैठी-बैठी स्वाध्याय कर सकती है तथा अपने अस्वाध्याय काल मे स्वाध्याय करना मना होते हुए भी परस्पर वाचना दे सकते हैं और ले सकते है। बृहत्कल्प के छठे उद्देशे में कारणवश परस्पर कांटा आदि निकालने का भी वर्णन है। इत्यादि और भी जगह बैठने का वर्णन बताया हैं, तो फिर समवरसण में बैठने का निषेध वीतराग कैसे बताते ?

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये शास्त्रों में जो परस्पर वैठना निषिद्ध किया है, वह तो दोनों के लिये समान है। परन्तु समवसरण आदि के प्रसंग पर शास्त्र-कथित अनुकूल समय में जनता उपस्थिति में बैठना निषेध नहीं हैं।

६८३ प्रश्न - ५६ अंतरद्वीपों मे उत्पन्न होने वाले सभी तिर्यच मर कर देवलोक में ही जाते है, या अन्य गति में भी जाते हैं ?

उत्तर - ५६ अंतरद्वीपों में उत्पन्न होने वाले तिर्यच मर कर चारों गति में जा सकते हैं, क्योंकि तिर्यचों में तो युगलिये केवल स्थलचर और खेचर में ही होते हैं, दूसरों मे नहीं इसलिये युगलियों के अलावा दूसरे तिर्यच (जलचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प) भी बहुत हैं। वे चारों गति में जा सकते हैं।

६८४ प्रश्न - सूर्य का जो 'सहस्रांशु' नाम दिया गया है, उसकी सहस्रों किरणें हैं। एक किरण का आकार प्रकार कितना है, एक किरण के प्रकाश का विस्तार कितना है ? क्योंकि प्राचीन काल से ऐसा कहते आ रहे हैं कि उसकी हजारों किरणे है, या उसकी हजार किरणें हैं। सहस्रांशु का भावार्थ यही देखने-सुनने मे आया है कि वह हजार किरणों वाला है। आज का मनुष्य वैज्ञानिक रूप से समझना चाहता है. लेकिन समाधान आज तक किसी ने नहीं किया ?

उत्तर - किरण शब्द की व्युत्पति निम्न प्रकार है - "**कीर्य्यंते परितः इति किरणः**" जो विस्तृत होती है, वह 'किरण' कहलाती है। सूर्य का जो प्रकाश रेखा के रूप में प्रकट होता है, उसे किरण कहा गया है। जिस प्रकार प्रकाशमान हीरे आदि से प्रकाशमान तेज-पुंज, रेखा रूप से निकलता है, उसी प्रकार सूर्य-विमान से भी जो भिन्न-भिन्न प्रकाश की रेखाएँ निकलती हैं, उन्हें 'किरण' कहते हैं। भगवती आदि सूत्रों में सूर्य को 'सहस्ररश्मि' (सहस्स रस्सि) कहा है। इसलिये यह स्पष्ट है कि उसकी एक हजार

केरणें होती है। इस शब्द की व्युत्पति से भी यही स्पष्ट है-
सहस्रं रश्मयः यस्स सः सहस्र रश्मिः (सूर्यः)।'

सूर्य से जो स्थिति लिये हुए भिन्न-भिन्न प्रकाश-श्रेणियाँ निकलती दिखाई देती है। उसे ही उन किरणों का आकार-प्रकार समझना चाहिए। सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रदर्शित आगमवाणी से तो यह सिद्ध ही है और वह श्रद्धेय है। रही आज की वैज्ञानिक पद्धति से सिद्ध करने की बात सो वह तो निवृत्ति मार्ग से परे है।

प्रकाश का विस्तार शाश्वत योजन (प्रमाण अंगुल के योजन) से १०० योजन ऊपर, १८०० योजन नीचे, हजारों या लाखों योजन क्षेत्र की संकीर्णता या विस्तृत स्थिति से तिरछा जाता है।

६८५ प्रश्न - तीन प्रकार का नाप का प्रमाण शास्त्र में लिया गया है - प्रमाणअंगुल, आत्मअंगुल और उत्सेधअंगुल। प्रमाण-अंगुल का वह प्रमाण है जो शाश्वत वस्तुएँ हैं, जैसे - द्वीप, समुद्र, नरकावास, देवलोक के विमान। ये भगवान् ऋषभदेव के समय के नाप के अनुकूल लिया गया है और जितना भी स्थिरीभूत चीजों का प्रमाण है वह सब उसी समय के नाप के अनुसार लिया जाता है। चार हजार कोस का योजन लेते हैं, तो ऋषभदेव के समय कोस कितना बड़ा होता था ? उनकी बालिश्त और हाथ बड़े होते थे और हाथ के माप के अनुसार गज़ और गज के माप के अनुसार कोस भी बहुत लम्बे होते होंगे-आजकल का कोस तो उस समय के दसवें अंश के समान या इससे भी कम पड़ता होगा ? तो प्रश्न पूछने का अभिप्राय यह है कि आजकल के कोस या मील के अनुसार कितने मीलों का एक योजन होना चाहिए ? इस विषय में साधारण मनुष्य सर्वथा अनभिज्ञ है।

उत्तर - प्रत्येक युग के प्रमाणोपेत पुरुष के जो अंगुल होते हैं, उन अंगुलों से १२ अंगुल की एक बालिश्त, २४ अंगुल का एक हाथ ९६ अंगुल का एक धनुष, दो हजार धनुष का एक कोस तथा ४ कोस का एक योजन होता है। यह प्रत्येक युग का एक साधारण माप है। परन्तु इसी एक माप से दुनियां को सही माप ज्ञात नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक युग का प्रमाणोपेत पुरुष, अपने नाप से पैरों पर खड़ा होकर ऊँचा हाथ करने पर ९ बालिश (वैंत) का ही होता है। प्रत्येक युग के सही नाप की जानकारी के लिए भगवान् ने तीन प्रकार के अंगुल बताये हैं - १. आत्मअंगुल जो कि ऊपर बताया गया है। प्रत्येक युग के पुरुष के प्रमाणोपेत अंगुल को 'आत्म-अंगुल' कहते हैं २. उत्सेध-अंगुल-चक्रवर्ती के काकणी रत्न की एक-एक कोर जितनी चौड़ी होती है, उसके माप को उत्सेध अंगुल कहते हैं। वह उत्सेध-अंगुल भगवान् महावीर के अंगुल से अर्ध होता है ३. प्रमाण-अंगुल-उत्सेध-अंगुल को हजार गुणा करने से प्रमाण अंगुल होता है। इसलिये जो वस्तु प्रमाण अंगुल से एक योजन की है, वही वस्तु उत्सेध-अंगुल से हजार योजन की होती है। अर्थात् प्रमाण-अंगुल के चार कोस का योजन, वही उत्सेध-अंगुल से चार हजार कोस का समझना चाहिए, परन्तु वे ४ हजार कोस प्रमाण अंगुल के नहीं समझना, उससे तो केवल चार ही कोस समझना चाहिये। आज के युग के योजन आदि से भगवान् ऋषभदेव के समय के योजन आदि लगभग ६२५ गुणा होना संभव है ?

६८६ प्रश्न - उत्सेध अंगुल का प्रमाण जो शास्त्र में लिया गया है, तो भगवान् ऋषभदेव की अवगाहना कितनी होगी और

धनुष कितना लम्बा होगा। वह धनुष आजकल के कितने गजो के समान पड़ता है और उस एक धनुष में कितने कोस या माइल बन सकते हैं?

उत्तर - चारों गति के जीवों की अवगाहना उत्सेध-अंगुल से ही मापी जाती है। अतः भगवान् ऋषभदेव की अवगाहना भी उत्सेध-अंगुल से पांच सौ धनुष की थी, न कि उनके धनुष से। अर्थात् उनके बालिश्त से तो वे भी लगभग ९ या १० बालिश्त के ही थे। अर्थात् भगवान् ऋषभदेव स्वयं (खुद) के हाथ से साढे तीन हाथ के ही थे।

६८७ प्रश्न - आकाश में तारों की जो एक लम्बी रेखा होती है, जिसका परिवर्तन कोई २-३ घंटों पश्चात् होता ही रहता है। कुछ समय पश्चात् वह पूर्व या पश्चिम में होगी और वही रेखा रात के एक या १॥ बजे अपना एक सिरा दक्षिण में और दूसरा उत्तर में रखेगी, जिसे सनातनधर्मी 'आकाशगंगा' या गॅवार भाषा मे 'मुर्दो की लाइन' भी कहते हैं, यह क्या चीज है ? समझ मे नहीं आ रहा है। ज्योतिषी ग्रन्थों में भी इसका वर्णन नहीं मिलता। मैंने चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति तो अभी पढ़े नहीं हैं। इसलिये इसके विषय में कुछ विचार नहीं कर सका। जिस तरह सूर्य की किरणों की संख्या का वर्णन है, तारों की किरणो की संख्या कितनी है ? राहु और सूर्य के विमानों का पारस्परिक कितना अंतर है ? जब सूर्य के विमान के नीचे राहु का विमान आ जाता है, या चन्द्रमा के नीचे राहु का विमान आ जाता है, तो इन दोनों मे कितना अंतर रहता है ?

उत्तर - (अ) आकाश मे तारो की जो एक घनी लम्बी

रेखा दिखाई देती है, उस रेखा में अनेक प्रकार के छोटे बडे तारे अधिक संख्या में वहाँ होते हैं। उनकी गति भी प्रायः परस्पर तेज और मंद रूप से मिलती जुलती होती है तथा वे सब प्रायः एक गति-चक्र में होते हैं। अतः रेखा एक समान दिखाई देती है।

इसी सामूहिक तारों की रेखा को देख कर लोग, नाम की भिन्न-भिन्न कल्पना कर लेते हैं। परन्तु वास्तविक स्थिति उक्त प्रकार से संभव प्रतीत होती है।

(ब) प्रत्येक सूर्य की किरणें एक हजार ही होती है, इसलिये उसे तो एक संख्या द्वारा बताया जाता है। किन्तु तारे छोटे-बड़े अनेक प्रकार के होते हैं, इसलिये उन सब की किरणों की समान संख्या एक रूप से वर्णित नहीं की जा सकती।

सूर्य की किरण संख्या ही वर्णित की गई है, शेष चन्द्रादि चार ज्योतिषियों की नहीं, क्योंकि सूर्य के विमान मे जो रत्न है, उनमें बादर पृथ्वीकाय के जो पर्याप्त जीव हैं, उन्हीं जीवों के 'आतप' नाम (उष्ण शरीर न होते हुए भी प्रकाश में उष्णता हो ऐसे) कर्म का उदय होता है। शेष चारों ज्योतिषियों के विमानो मे जो रत्नों के बादर-पृथ्वीकाय के जीव हैं, उनके 'उद्योत' (शरीर और प्रकाश दोनों ही शीतल हो ऐसे) नामकर्म का उदय होता है। अतः उनकी किरणों की गणना यहां नहीं बताई गई है, ऐसा प्रतीत होता है।

(स) नित्य-राहु का विमान, चन्द्र-विमान से चार अंगुल नीचे रहता है और पर्व-राहु के विमान चन्द्र और सूर्य के विमानो से नित्य-राहु के विमान की अपेक्षा अधिक नीचे रह सकते है, किन्तु कम नहीं।

६८८ प्रश्न - भरतखंड कितने योजन लम्बा है और कितने योजन चौड़ा है। एक खंड कितने योजन का होता है। खंड के योजन में कितने कोस होते हैं। इसका विस्तार से वर्णन बतावे ?

उत्तर - भरतक्षेत्र पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है। उसकी बडी से बड़ी लम्बाई (जीवा) प्रमाण-अंगुल के योजन से १४४७१$\frac{५}{१९}$ योजन की है। वह लम्बाई उत्सेध-अंगुल से मापे तो १४४७१००० योजन से भी कुछ ज्यादा है। बड़ी से बडी चौड़ाई (इषु) प्रमाण-अंगुल के योजनो से ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन की है। वह उत्सेध-अंगुलों के योजनों से ५२६००० योजन से कुछ अधिक है।

धनु-पृष्ठ (बाहर की ओर की गोलाई) का माप प्रमाण-अंगुल के योजनों से १४५२८$\frac{११}{१९}$ योजन का है। वह उत्सेध-अंगुल के योजनो से भी कुछ अधिक है। यहाँ यदि किन्ही भी योजनों के कोस बनाना हो, तो उनको ४ गुणा करने पर उसी माप के कोस बन जाते हैं।

इस भरत-क्षेत्र के ६ खंड हैं। मध्य के २ खंड विशेप बड़े हैं। इन दोनो से शेष ४ खंड छोटे हैं। ६ खंडों मे कुल ३२ हजार देश हैं।

६८९ प्रश्न - एक स्थान पर ऐसा वर्णन है कि कुछ जीव अधोमुखी हैं और कुछ ऊर्ध्वमुखी है, तो ऊर्ध्वमुखी को क्या लाभ होता है और अधोमुखी को क्या लाभ होता है ?

उत्तर - वहाँ किस अपेक्षा से अधोमुखी तथा ऊर्ध्वमुखी

जीवों का वर्णन है, सो तो मुझे ज्ञात नहीं, परन्तु संभवतया ऊर्ध्व और अधोमुखी का अर्थ निम्न प्रकार से किया जाना ठीक है -

१. ऊर्ध्वमुखी - आत्मोन्नति को अच्छी समझने वाले और उसी को लक्ष्य बना कर प्रवृत्ति करने वाले जीव 'ऊर्ध्वमुखी' कहलाते हैं। उन जीवों को आत्मगुण प्राप्ति का लाभ होता है।

२. अधोमुखी - शब्दादि पौद्गलिक वस्तुओं को अच्छी समझने वाले और उसी को लक्ष्य बना कर प्रवृत्ति करने वाले जीव 'अधोमुखी' कहलाते हैं। उन जीवों का कर्म-बन्ध तथा संसार-भ्रमण का लाभ होता है।

६९० प्रश्न - एक बात चक्रवर्ती के समय की है कि पहली पहर में वे खेती बोते थे और दूसरे प्रहर में काट लेते थे, तीसरे पहर में भोजन के लिए ताजा अन्न पहुँच जाता था और चौथे पहर में रसोई तैयार हो जाती थी। ऐसा चक्रवर्ती के समय में ही होता है, तो बाद में वासुदेव आदि के समय में क्यों नहीं होता ? यह बात असंभव-सी मालूम होती है। प्राकृतिक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि आज के वैज्ञानिक युग में भी अमेरिका अधिक से अधिक ४ फसलें ही वर्षभर में तैयार कर सका है। परन्तु ये तो वर्ष में ३६५ हुई। इसका समाधान कीजियेगा ?

उत्तर - चक्रवर्ती के पास चर्मरत्न होता है। वह रत्न एक हजार देवों से अधिष्ठित होता है। गृहपति-रत्न उस पर धान्य भी उत्पन्न करता है। आवश्यकता होने पर उस रत्न की सहायता से उसी दिन अन्न उत्पन्न करके काम में लेना भी, सम्प्रदाय विशेष मानती है। चर्मरत्न मूल स्वभाव से २ हाथ और श्रीवत्स आकार का होता है। किन्तु आवश्यकता होने पर चिन्तित के अनुसार

यथावसर विभिन्न आकार और विस्तार (यावत् १२ योजन से भी कुछ अधिक विस्तार वाला) हो जाता है। देव-संयोग से ये सब बाते शक्य हैं। वासुदेवादि के यह रत्न नहीं होता, इसलिये उनके समय में ऐसा नहीं होता। आज का मनुष्य वैज्ञानिक ढंग से भी वर्ष में ४ फसल उत्पन्न कर लेता है, फिर देव उसी दिन ऐसी चीजें कर ले, तो कौनसी आश्चर्य की बात है ?

६९१ प्रश्न - समवायांग शास्त्र में लिखा है कि ९६ करोड़ गांव एक चक्रवर्ती के होते है और ४५ या ४७ हजार बड़े शहर होते है। आज दो-ढ़ाई अरब की आबादी है। यदि एक गांव की आबादी कम से कम ५० की लें, तो करीब ८ करोड़ गांव होते हैं। ये ९६ करोड़ जो गांव लिये हैं, उस समय का वर्णन है- जब कि एक घर में ३२ पुरुष और २८ स्त्रियाँ होती थी, तो इसके अनुसार गांव भी बड़ी-बड़ी आबादी के होंगे। करोड़ का वर्णन सो लाख का ही है, या न्यूनाधिक ? जैसे आजकल कोडी शब्द २० वस्तुओं को भी कहते हैं। यह उपरोक्त बात शंकास्पद है। इसका खुलासा फरमावें। यदि इतने गांव थे, तो आबादी बेशुमार होगी। आबादी के अनुसार पृथ्वी भी बहुत लम्बी चौड़ी होगी। परन्तु पृथ्वी योजनानुसार नपी-तुली है, तो इतनी पृथ्वी कहां से आई होगी ? इसके निर्वाह के साधन कैसे पूर्ण होते होंगे। आजकल तो थोड़ी आबादी होते हुए भी लोग भूखे मर रहे हैं। आजकल की व्यवस्थानुसार हम उन्हें सुखी कैसे मान सकते हैं ?

उत्तर - 'कोड़ी' शब्द का अर्थ यहाँ पर १०० लाख से ही सगत है। ३२ पुरुष और २८ स्त्रियाँ एक घर में हों, तभी घर गिनती मे गिना जाय, यह बात शास्त्र-संगत नही है। तात्पर्य कहने

का यह है कि जिस घर में एक या दो व्यक्ति हों, तो भी वह घर गिनती में गिना जाता है।

वर्तमान में २ या २॥ अरब की आबादी बताई जाती है, वह तो केवल दृष्टिगत जगत् की है। अर्थात् जहॉ तक लोग शोध-खोज आदि से जान सकते है, उस जगत् की है।

शास्त्रों में भरत-क्षेत्र बहुत ही विशाल बताया गया है। उस विशाल क्षेत्र में शास्त्र-वर्णित ९६ करोड़ गांव और ४८ हजार नगर आदि होना युक्ति संगत है। क्षेत्र की विशालता से निर्वाह होने मे कोई बाधा नहीं आती है।

६९२ प्रश्न - क्या शय्यातर के यहॉ आये हुए मेहमान का हाथ, दूसरी जगह भी नहीं फरसना ? चौके में जीमने वाले नौकर आदि का भी हाथ नही फरसना।

उत्तर - शय्यातर के यहाँ आये हुए मेहमान का और चौके में जीमने वाले नौकरों का हाथ दूसरी जगह फरस सकते है। अर्थात् दूसरी जगह फरसने में कोई रुकावट नहीं।

६९३ प्रश्न - क्या विहार करते समय पहिले दिन के फरसे हुए घर को फरसना ?

उत्तर - विहार करते समय भी पहिले दिन का फरसा हुआ घर नहीं फरसना चाहिए।

६९४ प्रश्न - आहार-पर्याप्ति का काल कितना ?

उत्तर - आहार-पर्याप्ति के अपर्याप्ता को 'नियमा अनाहारक' पन्नवणा के २८ वें पद के दूसरे उद्देशे के मूलपाठ में कहा है। इससे आहार-पर्याप्ति का एक ही समय में पूर्ण होना सिद्ध होता है। अर्थात् उपपात-क्षेत्र को प्राप्त कर के जीव, आहार ग्रहण कर

के उसी समय मे आहार-पर्याप्ति पूर्ण कर लेता है। जीवाभिगम सूत्र और पन्नवणा सूत्र की टीका में इसी प्रकार खुलासा है। जो १७६ आवलिका मे आहार पर्याप्ति का पूर्ण होना कहते हैं, वह ऊपर बताये हुए पाठ व टीका से मेल नही खाता है।

६९५ प्रश्न - बड़ा साधु, प्रतिक्रमण की आज्ञा किसकी लेवे ?

उत्तर - बड़े साधु को प्रतिक्रमण की आज्ञा भगवान् से लेनी चाहिये। अर्थात् जहाँ जिसका शासन वर्तता हो, वहाँ बडे को उनकी आज्ञा लेनी चाहिये। अथवा श्री सीमन्धर स्वामी की आज्ञा ले सकते हैं ।

६९६ प्रश्न - वेदनीय-कर्म की अपेक्षा शुक्ल-लेशी मे चोथा भंग कैसे घटे ?

उत्तर - भगवती सूत्र के २६ वे शतक के प्रथम उद्देशे मे वेदनीय की अपेक्षा जो चौथा भंग बतलाया है, उसके लिये कोई ऐसा फरमाते है कि अयोगी-गुणस्थान के प्रथम समय मे घंटालाला के न्याय से परम शुक्ल-लेश्या है, इसलिये वहाँ उनमे चौथा भग सभव है। इसका खुलासा वही पर टीकाकार ने इस प्रकार दिया है- "केचित्पुनराहुः-अतएव वचनादयोगिता प्रथमसमये घंटालाला-न्यायेन परमशुक्ललेश्याऽस्ति इति सलेश्य· स चतुर्थभंगक· संभवति तत्त्व तु वहुश्रुतगम्यमिति।"

६९७ प्रश्न - अवधिदर्शन की स्थिति १३२ सागरोपम जाजेरी। टीकाकार ने पहले के दो भव सातवी नरक के माने, सो कैसे ?

उत्तर - पन्नवणा सूत्र के टीकाकार और टव्वाकार तो

अवधिदर्शन की कायस्थिति के विषय में पहले दो भव सातवी नरक के बीच में तिर्यच का भव करके मानते हैं और वे कहते भी है कि विग्रह-गति वाले तिर्यच और मनुष्यों में विभंगज्ञान का निषेध है, अविग्रह वालों में नहीं। परन्तु मेरे सुनने में तो विभंगज्ञान वाला १२ वें स्वर्ग या पहली ग्रैवेयक में विभंगज्ञान ले कर जावे और वहाँ से अवधिज्ञान लेकर वापिस आवे, ऐसे तीन भव १२ वे स्वर्ग के या ग्रैवेयक के कर के ६६ सागर से कुछ अधिक यहाँ की स्थिति मिलाने से हो जावे, फिर विजयादि विमान में अवधिज्ञान युक्त दो बार आने-जाने से ६६ से कुछ अधिक, इस प्रकार कुल १३२ सागर से कुछ अधिक हो सकते हैं। यह धारणा ठीक मालूम होती है।

६९८ प्रश्न - १५ कर्मादान का विशेष खुलासा कहाँ है ? खेती अल्प-आरंभ में या महारंभ में ?

उत्तर - भगवती सूत्र के शतक ८ उद्देशा ५ की टीका उपासकदशा अध्ययन १ की टीका, योगशास्त्र, धर्मसंग्रह सटीक, प्रवचनसारोद्धार, आवश्यक बृहद्वृत्ति, आवश्यक चूंर्णि, श्रावक धर्म प्रज्ञप्ति, धर्मरत्न प्रकरण, आवश्यक हारिभद्रीय आदि सूत्र और ग्रंथों में कर्मादानों का विशेष खुलासा है। सूयगडांग सूत्र के १८ वें अध्ययन की टीका एवं टब्बे में तथा उववाई के अर्थ में खेती को 'महा आरंभ' में बताया है। भगवती सूत्र के शतक ८ उद्देशा ५ की टीका व टब्बा में और उपासकदशा के प्रथम अध्ययन की टीका व टब्बा में खेती को कर्मादान में बताया है।

६९९ प्रश्न - श्री शांतिनाथजी के स्तवन में - "नव पदवी ःटी रे कही, जिण में एकण भव में छही लही" - आया है, सो

नव पदवी कौनसी है और एक ही जीव को एक साथ ही सभी पदवियाँ मिल सकती है या नहीं ? यदि मिल सकती है, तो पहले किसको मिली थी ? अधिक से अधिक कितनी मिल सकती है ?

उत्तर - तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मांडलिक राजा, सम्यग्दृष्टि, श्रावक, साधु और केवली-ये नव पदवी बड़ी है। इनमें से बलदेव, वासुदेव और श्रावक, इन तीन पदवियों को छोड़ कर शेष ६ पदवी श्री शांतिनाथ के भव में मिली थी। इससे ज्यादा किसी को भी एक भव में नहीं मिल सकती है।

७०० प्रश्न - जीवित मनुष्य के शरीर मे जो पुद्गल हैं, वे पुद्गल सजीव है' या निर्जीव ? शरीर के पुद्गल कीटाणु यदि सजीव हैं, तो उपवास करने से शरीर के कीटाणु को पीड़ा होती है। यदि कीटाणु को पीड़ा होती है, तो तपस्या करने से पाप नही होता क्या ?

उत्तर - मनुष्य के जीवित-शरीर में विविध गुण, स्वभाव और आकार-प्रकार वाले पुद्गल शास्त्रानुसार निर्जीव ही बताये हैं। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक उन पुद्गलों को कीटाणु (जीव) मानते हैं। जिन-मतानुसार जीवित-शरीर के पुद्गलों को निर्जीव माना है। अतः शुद्ध तपश्चर्या से पाप नहीं, अपितु निर्जरा होती है।

शरीर के किसी भाग में कृमि (चूरणिया-कीड़ा), जूँ और लीख आदि उत्पन्न हो सकते है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर में जो आज के वैज्ञानिक कीटाणु (जीव) मानते हैं, वह सूत्रानुसार नहीं है। शरीर के किसी भाग में कृमि, जूं आदि उत्पन्न होते हैं। तप करने से उनके पोषण मे तो कोई बाधा नहीं रहती। उनका पोषण तो रक्तादि से निर्बाध होता रहता है। अतः विशुद्ध तप निर्जरा का ही कारण है।

७०१ प्रश्न - चित्र वाले मकान मे साधु-साध्वी को उतरने की मनाई है। जो चित्र है, उससे भाव बिगडने की आशंका रहती है। फिर जिन-मूर्ति के दर्शन से शुभ भाव उत्पन्न हो, इसमें सन्देह ही नही होना चाहिए। जब चित्रयुक्त मकान में उतरने से भाव बिगड सकते हैं, तो वीतराग का चित्र देखने से या मूर्ति के दर्शन से शुभ भाव क्यों नही होगे ?

उत्तर - विद्या, कला आदि प्राप्त करने के लिए मनुष्य को नाना प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं। परन्तु अनेक पाप कार्य (कलह, कुदृष्टि आदि) मनुष्य तो क्या, पशु भी अनायास ही सीख जाते हैं। क्योंकि विद्या आदि कर्मो के क्षयोपशम से प्राप्त होती है और कलह आदि कर्मों के उदय से। विकारीभाव कर्मो के उदय से उत्पन्न होते हैं और चित्र आदि मनोविकार में सहायक हैं। परन्तु सद्भाव, कर्मो के क्षयोपशमादि से उत्पन्न होते है। अतः उसके लिए शुभ और अशुभ बाह्यनिमित्त की अनिवार्य आवश्यकता नहीं होती।

जिस प्रकार एक ही चित्र प्रत्येक जाति और धर्म वाले व्यक्ति को विकारी बना सकता है, क्या उसी प्रकार एक ही मूर्ति प्रत्येक धर्म और जाति वाले व्यक्ति को सद्भावी बना सकती है ? कदापि नही। जिस मूर्ति को लोग पूजनीय मानते हैं, वही मूर्ति-विरोधियों के लिये घृणास्पद होती है और वे अवसर पा कर उसे खंडित भी कर देते हैं। जैसे कि - समय समय पर मुगलो आदि ने किया। अन्य मतावलम्बियों की बात तो दूर रही, परन्तु जैनियों मे भी दिगम्बर और श्वेताम्बर की मूर्तियाँ वैराग्य के बजाय परस्पर ्लह एवं वेमनस्य का कारण बनती है और वे घृणास्पद समझी

जाती है। परन्तु विकारी चित्र तो साधारणतया सबके लिये विकार के कारण होते है। यदि मूर्ति, सद्भाव का कारण और पूजनीय है, तो सभी के लिये प्रतिष्ठा के पूर्व और किंचित् भी खण्डित होने के बाद क्यों अपूज्य मानी जाती है ? परन्तु चित्र तो प्रतिष्ठा के पूर्व और किंचित् खंडित होने के बाद भी विकार मे सहायक होता है।

अंतरंग मे सद्भावना - वैराग्य की जागृति होने पर तो अच्छी व बुरी सभी वस्तुएँ वैराग्य का कारण बन सकती है। जैसे-भरतचक्रवर्ती के लिए आदर्श भवन, समुद्रपालजी के लिये चोर, स्थूलिभद्र जी के लिए वेश्या, नमिरायजी के लिये चूडी, मृगापुत्रजी के लिये मुनि आदि। अत· मूर्ति को खास वैराग्य का ही कारण कैसे समझा जाय ? अर्थात् वैराग्य क्षयोपशमादि भाव मे है। इसलिए मूर्ति आदि के निमित्त कारण की मुख्यता नहीं है, परन्तु विकारादि तो कर्मो के उदय से है और चित्रादि का निमित्त विकारो मे सहायक है। अत· चित्रादि से बचना अति आवश्यक है।

७०२ प्रश्न - ग्रामानुग्राम विहार मे श्रावको को साथ रखने की मनाई किस सूत्र मे, कौन से अध्ययन मे और उसकी कौनसी गाथा मे आया हुआ है ? तथा जो श्रावक रास्ते की सेवा मे साथ रहते है, उनके पास से आहार-पानी न लेने का विधान कौन से सूत्र मे आया है ?

उत्तर - श्री आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के पहले अध्ययन के पहले उद्देशे के ८ वें सूत्र मे निम्न पाठ है -

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दुइज्जमाणे

णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं गामाणुगामं दुइज्जेज्जा।''

इसमें अन्यतीर्थी व गृहस्थों को ग्रामानुग्राम विहार में साथ नहीं रखने का स्पष्ट निषेध है। टीकाकार ने इसी सूत्र की टीका में नहीं रखने के कारण बताते हुए लिखा है कि - शारीरिक कारणों के निरोध से आत्म-विराधना और प्रासुक-अप्रासुक लेने से संयम-विराधना होती है और भोजन में भी दोष की सम्भावना है।

इस सूत्र से गृहस्थों को विहार में साथ रखने की एवं टीका में उनसे आहार ग्रहण करने की स्पष्ट मनाई है।

श्री निशीथसूत्र के दूसरे उद्देशे के ४२ वें सूत्र में अन्यतीर्थी व गृहस्थादि को ग्रामानुग्राम विहार में साथ रखने से प्रायश्चित्त कहा है।

७०३ प्रश्न - असन्नी के २२ दंडकों में से १३ अशाश्वत और ९ शाश्वत कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - नारकी का एक दंडक, दस भवनपति देवों के १० दंडक, वाणव्यंतर देवों का १ दंडक और मनुष्यों का एक दंडक, इन १३ दंडकों में असन्नी कभी मिलते हैं और कभी नहीं मिलते। अतः ये १३ दंडक असन्नी के अशाश्वत है। पाँच स्थावर के ५ दंडक, तीन विकलेन्द्रिय के ३ दंडक और तिर्यंच पंचेन्द्रिय का १ दंडक, इन ९ दंडकों में असन्नी निरंतर मिलते हैं। अतः ये ९ दंडक असन्नी के शाश्वत हैं।

७०४ प्रश्न - १६ सतियों के नाम क्रमशः लिखने की कृपा करें। विशेष खुलासा करें कि ये सतियें किस-किस तीर्थंकर के समय में हुई हैं ?

उत्तर - सोलह सतियों की नामावली का क्रम निम्न प्रकार से देखने में आया है -

१. ब्राह्मी २. सुन्दरी ३. चंदनबाला ४. राजीमती ५. द्रौपदी ६. कौशल्या ७. मृगावती ८. सुलसा ९. सीता १० सुभद्रा ११. शिवा १२. कुन्ती १३. शीलवती १४. दमयंती १५ पुष्पचूला १६. पद्मावती।

ब्राह्मी और सुंदरी भगवान् श्री ऋषभदेव के समय मे, चन्दनबाला, मृगावती, सुलसा, शिवा और पद्मावती भगवान् श्री महावीर के समय में, राजिमती, द्रौपदी और कुन्ती श्री अरिष्टनेमि के समय में, कौशल्या और सीता श्री मुनिसुव्रतजी के शासन में दमयंती श्री धर्मनाथजी के शासन में हुई। सुभद्रा का समय संभवतः भगवान् पार्श्वनाथ के बाद का है। शेष दो सतियों का समय मेरी स्मृति में नही है।

७०५ प्रश्न - एक उपयोग, वाटे वहता सिद्ध में पावे सो कैसे ?

उत्तर - केवली जब शरीर छोड़ कर मोक्ष पधारते है, तब रास्ते में उनको एक ही समय लगता है और वहाँ मात्र एक केवलज्ञान का ही उपयोग चालू रहता है, जो कि उत्तराध्ययन के २९ वें अध्ययन के "**सागारोवउत्ते सिज्झइ**" पाठ से स्पष्ट है। इसी प्रकार पन्नवणा के ३६ वें पद आदि से भी स्पष्ट है।

७०६ प्रश्न - नरक और देवलोक में ४ कषाय का शाश्वत अशाश्वत का प्रश्न किया, नरक में क्रोध-कषाय वाले शाश्वत बतलाये और देवलोक में लोभ-कषाय वाले शाश्वत बतलाये, सो कैसे ? जीवाभिगम सूत्र में सातवीं नरक में ३ लेश्या बतलाई और देवता मे ४ लेश्याएँ पावे, सो इसका खुलासा करें ?

उत्तर - (अ) भगवती सूत्र के शतक १ उद्देशक ५ के पाठानुसार नरक में क्रोध-कषाय शाश्वत है, शेष ३ कषाय के उदय वाले जीव कभी मिलते हैं और कभी नहीं भी मिलते है। अतः इन ३ कषाय वाले जीव नरक में अशाश्वत हैं। इसी प्रकार देवों में लोभ के उदय वाले जीव सदैव पाये जाते हैं, शेष ३ कषाय वाले जीव कभी मिलते हैं और कभी नहीं मिलते हैं।

(ब) द्रव्य-लेश्या की अपेक्षा तो सातवीं नारकी में एक कृष्ण-लेश्या ही पाई जाती है, परन्तु सातों नरकों में मिला कर कृष्णादि तीन लेश्याएँ पाई जाती है। भाव-लेश्या की अपेक्षा तो प्रत्येक नारकी में छह ही लेश्याएँ पाई जा सकती हैं। यदि सातवी नरक के एकेन्द्रिय जीवों में गिनें, तो कृष्णादि तीनों लेश्याएँ होती हैं।

भवनपति व व्यंतर देवों में तथा देवलोक के एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा चार लेश्याएँ पाई जाती है, परन्तु समुच्चय देवो मे तो छह ही लेश्याएँ होती हैं।

७०७ प्रश्न - संवत्सरी के विषय में शास्त्र का प्रमाण बतावें कि क्यों मनाई जाती हैं ?

उत्तर - संवत्सरी के दिन अधिकांश जीवों के आयुष्य कर्म का बन्ध होता है, अतः उस दिन पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये और आत्म-विशुद्धि के लिये आहारादि का त्याग कर धर्माराधन में ही तल्लीन रहना चाहिए।

वर्षभर के सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए ज्ञानियों ने कम-से-कम एक दिन तो नियुक्त करना जरूरी समझा। अतः अन्य दिनों की अपेक्षा आयुष्य-बंधादि कारणों से उस दिन की विशेष महत्ता समझ कर वही दिन नियुक्त किया।

समवायांग सूत्र के सित्तरवें समवाय के अनुसार संवत्सरी का दिन भादवा सुदी पांचम निश्चित होता है।

७०८ प्रश्न - निर्ग्रन्थ साधु को आहार बहराने से निर्जरा होती है या पुण्य ?

उत्तर - धर्म और निर्ग्रन्थ के स्वरूप का नहीं जानने वाला भी यदि शुभभावों से निर्ग्रन्थों को आहारादि बहरावे, तो उसे अवश्य पुण्य होता है। धर्म के अभिमुख और सम्यग्दृष्टि जीव यदि निर्ग्रन्थों को आहारादि बहरावे, तो उसे पुण्य और निर्जरा दोनों ही होते हैं।

७०९ प्रश्न - आठ योग और आठ उपयोग कहाँ-कहाँ पावे, इसका खुलासा विस्तारपूर्वक लिखने की कृपा करें ?

उत्तर - पंचेन्द्रिय के अलद्धिया (अलब्ध=अप्राप्त) आहारक में ८ योग (सत्यमन, व्यवहार-मन, सत्य-भाषा, व्यवहार भाषा, औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय-मिश्र) और ८ उपयोग (मति-ज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, चक्षु-दर्शन, अचक्षु-दर्शन और केवल-दर्शन) होते हैं।

७१० प्रश्न - गर्भ का काल नव महिना साढे सात रात्रि बतलाया है, तो देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में प्रभु ८२ रात्रि रहे, फिर त्रिशला रानी की कुंख में रक्खे गये, तो ९ महिना साढ़े सात रात्रि त्रिशला रानी की ही कुंख में रहे, या दोनों के मिलाकर रहे ?

उत्तर - भगवान् महावीर, देवानंदा और त्रिशला रानी दोनो के गर्भ में कुल ९ मास और साढ़े सात रात्रि रहे।

७११ प्रश्न - तिरछा-लोक, ऊँचा-लोक और नीचा-लोक मे २४ दंडक में से कौन-कौन से दंडक पावे ?

उत्तर - व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक को छोड़कर २ दंडक अधो (नीचा) लोक में पाये जाते हैं। छोड़े हुए उपरो तीनो दंडक के देव भी अधोलोक में जाते आते है, परन्तु व उनका स्थायी निवास नहीं होता। अतः २१ दंडक अधोलोक समझना चाहिए।

औदारिक के १० दंडक, व्यंतर और ज्योतिषी ये १२ दंड स्थायी रूप से तिरछालोक में पाये जाते है। आने-जाने वालो व अपेक्षा तो नरक के सिवाय सभी दंडक पाये जाते हैं।

पांच स्थावर के ५ दंडक, तीन विकलेन्द्रिय के ३ दंड तिर्यच पंचेन्द्रिय का १ दंडक और वैमानिक का १ दंडक, यह १ ऊर्ध्व-लोक में स्थायी रूप से पाये जाते हैं। आवागमन की अपे तो नरक के सिवाय सभी दंडक पाये जाते हैं।

७१२ प्रश्न - ६ नरक के अपर्याप्त में दृष्टि कितनी ? अ सातवीं नरक के अपर्याप्त में कितनी दृष्टि पाई जाती हैं ?

उत्तर - प्रथम छह नरक के अपर्याप्त में समदृष्टि अ मिथ्यादृष्टि-ये दो दृष्टियाँ पाई जाती हैं और सातवीं नरक अपर्याप्त में एक मिथ्यादृष्टि ही पाई जाती है।

७१३ प्रश्न - २४ दंडक के अपर्याप्तों में कितनी दृष्टि पा जाती हैं ?

उत्तर - छह नरक, दस भवनपति, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्य पचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यंतर, ज्योतिषी और पहले स्वर्ग से नव ग्रैवेयव तक के अपर्याप्तों में समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि - ये दो दृष्टिय पाई जाती है। सातवीं नरक और पांच स्थावर के अपर्याप्तों में ए मित्यादृष्टि ही पाई जाती है। पांच अनुत्तर विमान के अपर्याप्तो एक समदृष्टि ही पाई जाती है।

७१४ प्रश्न - चौवीस दंडक के पर्याप्तों में कितनी दृष्टि पाई जाती है ?

उत्तर - पंचेन्द्रिय के १६ दंडकों के पर्याप्तों में सामान्यतया तीनों ही दृष्टि पाई जाती है, परन्तु यदि अनुत्तर विमान को पृथक् किया जाय, तो अनुत्तर विमान के पर्याप्तों में एक समदृष्टि ही पाई जाती है। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्तों में एक मिथ्यादृष्टि ही पाई जाती है। थोकड़े वाले नवग्रैवेयक में दो दृष्टि कहते हैं,,किन्तु भगवती सूत्र, जीवाभिगम सूत्र आदि में तीन दृष्टि वतलाई गई है। अतः तीन दृष्टि मानना ही ठीक है। आगम के अनुसार है।

७१५ प्रश्न - जीव पर्याप्ति कितनी-कितनी आवलिका मे बांधता है ?

उत्तर - कई लोग आहार-पर्याप्ति को बांधने का समय १७६ आवलिका और शेष पर्याप्ति बांधने का समय बत्तीस-बत्तीस आवलिका का मानते हैं। परन्तु यह बात शास्त्रसंगत नहीं है। क्योंकि शास्त्रानुसार तो आहारपर्याप्ति एक ही समय मे पूर्ण होती है। शेष प्रत्येक पर्याप्ति को पूर्ण करने का काल 'असंख्य' समय के अंतर्मुहूर्त्त का है। परन्तु वह अंतर्मुहूर्त्त भी एकेन्द्रिय आदि सभी जीवों के समान नही होता अर्थात् छोड़ा बडा होता है, ऐसा समझना चाहिए।

७१६ प्रश्न - चक्रवर्ती का पड़ाव ८४ लाख हाथी, चौरासी लाख घोडा, चौरासी लाख रथ तथा ९६ करोड़ पदाति (पैदल सेना) - ये चौरासी कोस में कैसे समावे ?

उत्तर - चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सेना की संख्या तो आपके

लिखे अनुसार ठीक है, परन्तु संम्पूर्ण सेना एक ही स्थान पर रहे, यह आवश्यक नहीं। क्योकि चक्रवर्ती को आवश्यकतानुसार विभिन्न स्थानों पर थोड़ी-बहुत सेना रखनी ही पड़ती है। अतः एक ही स्थान पर सम्पूर्ण सेना कैसे एकत्रित हो सकती है ? सम्पूर्ण सेना एकत्रित न रहने पर भी आधिपत्य के कारण चक्रवर्ती की सेना उतनी ही बताई जाती है। सेना का पड़ाव ८४ कोस में न समझ कर ४८ कोस लम्बा और ३६ कोस चौड़ा समझना चाहिये। ४८×३६ कोस का क्षेत्रफल उपरोक्त सेना के लिए कम नहीं होता है ?

७१७ प्रश्न - तैजस् और कार्मण की अवगाहना समस्त लोक प्रमाण कैसे मानी जाय ?

उत्तर - केवली-समुद्घात के समय तैजस् और कार्मण की अवगाहना सम्पूर्ण लोक जितनी होती है, अतः सम्पूर्ण लोक जितनी बताई है।

७१८ प्रश्न - देवताओं मे सन्नी और असन्नी दोनो हैं-ऐसा कुछ महात्माओ का मत है और कुछ महात्माओ का मत है कि देवों मे सन्नी ही हैं, असन्नी नही। उपरोक्त दोनो में कौनसा मत ठीक है ?

उत्तर - पहिली नरक की तरह भवनपति और वाणव्यन्तर देवों मे भी असन्नी-तिर्यच-पंचेन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। वे वहाँ थोडे समय तक असन्नी (असंज्ञी) रहते हैं बाद मे सन्नी हो जाते है। इसलिये वे अल्पसमय तक ही असन्नी के कारण 'कर्मग्रन्थ' आदि के कर्त्ता कई पूर्वाचार्य, देव और नरक गति में असन्नी की विवक्षा नही करते। परन्तु भगवती सूत्र के शतक ६ उद्देशे ४ तथा शतक

१३ उद्देशे २ और शतक १८ उद्देशे १ में तथा जीवाभिगम सूत्र की दो प्रकार के जीवों की पहली प्रतिपत्ति और पन्नवणा सूत्र के २८ वे पद का दूसरा उद्देशा आदि स्थानों के सूत्र पाठानुसार देव और नरक गति मे सन्नी और असन्नी दोनों ही होते हैं। अतः सूत्रों के मूल पाठानुसार तो देव और नरक गति में सन्नी और असन्नी दोनो ही मानना ठीक है। आगमानुसार है।

७१९ प्रश्न - निर्जरा के १२ भेदों मे से देवों में ४ भेद कहे हैं। कुछ महात्माओं का कहना ३ ही का है, सो सही क्या है ? नारकी में निर्जरा के भेद कितने है ? और देवताओं में कितने ?

उत्तर - देवों में निर्जरा के १२ भेदों मे से - विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय और ध्यान ये चार भेद पाये जा सकते हैं। इनके अलावा भी भाव-ऊनोदरी व प्रतिसंलीनता आदि का कुछ अंश किसी विशिष्ट देव में पाया जावे, तो यह बात निराली है। वेयावृत्य के सिवाय शेष निर्जरा के भेद, देवों के समान नरक में भी है, परन्तु वहाँ स्वाध्याय का भेद तो-किसी देवादिक से धर्मकथा सुनना व अन्य किसी नैरयिक को सुनाना आदि रूप से समझना चाहिये।

७२० प्रश्न - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में जीव के छह-छह भेद कहे है, उसी तरह विभंगज्ञान मे भी छह भेद कहे हैं, तो क्या विभगज्ञान के छही भेद हैं अथवा न्यूनाधिक ? और वे किस प्रकार है ? और उपशम और मिश्र के छह-छह भेद ही कहे हैं क्या यह ठीक है, और है तो किस प्रकार है ?

उत्तर - आपने किस की अपेक्षा से छह-छह भेद पूछे हैं ? इसका खुलासा इन प्रश्नों मे नहीं है। यदि आपने समुद्घात की

अपेक्षा से प्रश्न पूछे हों, तो इस प्रकार से भेद समझें-मतिज्ञान आदि चारो ज्ञानों मे और उपशम-समकित में केवलीसमुद्घात के सिवाय छह समुद्घात तथा तीन अज्ञान और मिश्र समकित मे केवली व आहारक के सिवाय ५ समुद्घात पाये जाते है।

७२१ प्रश्न - पाप-प्रकृति के ८२ भेद हैं, उसमें से देव और नरक मे कितने पाये जाते हैं ?

उत्तर- बंध की अपेक्षा से-नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नाम, इन ११ पापप्रकृतियो को छोड कर शेष ७१ पाप-प्रकृतियों का बन्ध नरक गति में होता है। नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक और विकलत्रिक, इन ९ पाप-प्रकृतियो को छोड़ कर शेष ७३ पाप-प्रकृतियों का बन्ध देवगति में होता है।

उदय की अपेक्षा से - निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तिर्यचद्विक, जातिचतुष्क. ऋषभनाराच आदि ५ संहनन, बीच के ४ संस्थान, स्थावर चौक, इन २४ पाप-प्रकृतियो को छोड़ कर शेष ५८ पाप-प्रकृतियों का उदय नरक-गति में होता है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, नपुंसकवेद, नरकायु, नीचगोत्र, नरकद्विक, तिर्यचद्विक जातिचौक, ऋषभनाराच आदि ५ संहनन, न्यग्रोध आदि ५ संस्थान, अशुभविहायोगति, स्थावर-चौक और दुःस्वरनाम, इन ३० पाप-प्रकृतियों को छोड़ कर शेष ५२ पाप-प्रकृतियों का उदय देवगति में होता ह।

७२२ प्रश्न - पुण्य के ४२ भेद हैं, उनमें से देव और नारक में कितने पाये जाते हैं ?

उत्तर - बंध की अपेक्षा से-सुरद्विक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, देवायु और आतपनाम, इन ८ पुण्य-प्रकृतियों को

ोड़ कर शेष ३४ पुण्य-प्रकृतियों का बन्ध नरक गति में होता है। परोक्त ३४ और आतप नाम, इन ३५ पुण्य-प्रकृतियों का बन्ध वगति में होता है।

उदय की अपेक्षा - नरक के सिवाय ३ आयुष्य, मनुष्यद्विक, वद्विक, औदारिकद्विक, आहारकद्विक, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान, ्भविहायोगति, सौभाग्यचतुष्क, आतप, उद्योत जिननाम और ्चगोत्र, इन २२ पुण्य-प्रकृतियों को छोड़ कर शेष २० पुण्य-कृतियों का उदय नरक-गति में होता है।

तिर्यंच और मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, ाहारकद्विक, प्रथम संहनन, आतप, उद्योत और जिननाम, इन २ पुण्य-प्रकृतियो को छोड़ कर शेष ३० पुण्य-प्रकृतियो का दय, देवगति में होता है।

नोट - शुभ वर्णादि चारों का उदय जो नरक मे कहा है, ह अत्यन्त अशुभ वर्णादि वालों की अपेक्षा से अल्प अशुभ र्णादि वालो मे समझना तथा नरक मे मुख्यरूप में अशुभ वर्णादि , परन्तु सूक्ष्म रूप से शुभ वर्णादि भी होते हैं। इसी प्रकार देवों भी अशुभवर्णादि के विषय में समझ लेना चाहिए। यहाँ परोक्त दो प्रश्नों में ८२ और ४२ भेदों के विषय मे ही पूछा है। त: समकित-मोहनीय और मिश्रमोहनीय भी यहाँ नही बताई है।

नोट - चौथा कर्मग्रन्थ (गाथा २६ या २९) तो उपशम मे ाहारक-समुद्घात का भी निषेध करता है।

७२३ प्रश्न - आस्रव के ४२ और संवर के ५७ भेद है, नमें से देवगति में और नरकगति में कितने-कितने भेद हैं ?

उत्तर - आस्रव के ४२ भेदों में से 'इरियावही क्रिया' को

छोड़ कर शेष ४१ भेद नरक और देव-गति में पाये जाते हैं। बारह भावना और दर्शन-परीषह-जय (निश्चय समकित के कारण) ये संवर के तेरह भेद नरक और देवगति में पाये जाते हैं।

७२४ प्रश्न - पृथ्वीकाय, अप्‌काय और प्रत्येक-वनस्पति काय में गुणठाणा कितना है ?

उत्तर - पृथ्वीकाय, अप्‌काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय मे सूत्रानुसार तो एक पहला ही गुणस्थान बतलाया है परन्तु कर्मग्रन्थ आदि में पहला और दूसरा-ये दोनों गुणस्थान बतलाये गये है। आगम के अनुसार एक पहला गुणस्थान मानना उचित है।

७२५ प्रश्न - पृथ्वीकाय और बेइन्द्रिय में लेश्या कितनी पावे ?

उत्तर - पृथ्वीकाय मे ४ और बेइन्द्रिय में ३ लेश्याएँ पाई जाती हैं।

७२६ प्रश्न - पृथ्वीकाय और बेइन्द्रिय में पाँच ज्ञान मे से कितने ज्ञान पावे ?

उत्तर - सूत्रानुसार बेइन्द्रिय में ज्ञान दो (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान) पाये जाते हैं। पृथ्वीकाय में ज्ञान नही पाया जाता। कर्मग्रन्थादि में तो इन दोनों में ज्ञान नहीं बतलाया है। परन्तु आगम के अनुसार उचित है।

७२७ प्रश्न - आत्मा ८ है, इनमें से पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में कितनी आत्मा पायी जाती है ?

उत्तर - ज्ञान आत्मा और चारित्र आत्मा के सिवाय शेष ६ आत्माएँ पांच स्थावर में और चारित्र आत्मा के सिवाय शेष ७ आत्माएँ तीन विकलेन्द्रिय मे पाई जाती है। यह सूत्रानुसार है।

कर्मग्रन्थादि वाले विकलेन्द्रिय में ज्ञान-आत्मा नहीं मानते। अतः वे दोनो (स्थावर और विकलेन्द्रिय) में छह आत्मा ही मानते हैं। आगम के अनुसार मानना उचित है।

७२८ प्रश्न - कुछ महात्माओ का मत है - भैरव, भवानी, महादेव आदि वाणव्यंतर, भवनपति देवो की पूजा मनौती आदि मिथ्यात्व है। क्या संसार-व्यवहार में ऐसा करने वाला भी मिथ्यात्वी कहा जा सकता है ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि होते हुए भी जो सांसारिक कार्य के लिए वाणव्यंतर, भवनपति आदि देवों की पूजा अर्चा करते हैं और उस कार्य को सांसारिक-प्रवृत्ति मानते तथा प्ररूपते है। इस प्रकार करने वालों के 'भाव-मिथ्यात्व' तो नहीं, परन्तु प्रवृत्ति मिथ्यात्व है। पडिमाधारी और अभिग्रहधारी के अलावा अनेक सम्यग्दृष्टि गृहस्थ जीवो के ऐसा कार्य करने का प्रसंग आ जावे और करे (जैसे चक्रादि रत्नो की पूजा एवं देवों का सत्कार आदि भरत चक्रवर्ती आदि को करने का प्रसंग आया और किया) तो ऊपर माफिक प्रवृत्ति-मिथ्यात्व ही समझना चाहिए।

७२९ प्रश्न - देवताओं और नारकों में परीषह कितने ?

उत्तर - देव और नरक मे परीषह अनेक होते हुए भी समकित मे निश्चल रहने के कारण, वे दर्शन-परीषह पर विजय पा सकते हैं। अत· उनमें एक २२ वॉ परीषह ही समझना चाहिए। अथवा ये २२ परीषह साधु-साध्वियो के लिये ही बतलाये गये हैं। इसलिए इस अपेक्षा से देवों में और नारकों मे कोई परीपह नही होता है।

७३० प्रश्न - संयम के १७ भेदों में से देव और नारकी मे कितने भेद है ?

उत्तर - संयम के १७ भेदों में से देव और नरक में एक भी भेद नहीं पाया जाता है। क्योंकि देव और नारक तो असंयमी है।

७३१ प्रश्न - देव और नरक में कषाय के २५ भेदों में से कितने भेद पाये जाते हैं ?

उत्तर - स्त्रीवेद और पुरुषवेद के सिवाय नरक-गति में २३ और नपुंसकवेद के सिवाय देवगति में २४ कषाय पाई जाती है।

७३२ प्रश्न - कर्मप्रकृति १४८ में से देव और नारकी में उदय और उदीरणा कितनी-कितनी है ?

उत्तर - १४८ प्रकृतियों में से कर्मग्रन्थ आदि में समुच्चय १२२ प्रकृतियों का उदय और उदीरणा बताई, उनमें से १. निद्रानिद्रा २. प्रचलाप्रचला ३. थीणद्धी ४. स्त्रीवेद ५. पुरुषवेद ६-८. नरक के सिवाय तीन आयुष्य, ९-१०. मनुष्यद्विक ११-१२. तिर्यचद्विक १३-१४. देवद्विक १५-१८. जातिचौक, १९-२० आहारकद्विक २१-२२. औदारिकद्विक २३-२८. छह संहनन, २९-३३. समचउरंस आदि पांच संस्थान ३४. शुभ विहायोगति ३५-३८. स्थावर चौक ३९-४२. सौभाग्य चौक, ४३. आतप नाम ४४. उद्योत नाम ४५. जिननाम ४६ ऊँचगोत्र। इन ४६ प्रकृतियों को छोड़ कर शेप ७६ प्रकृतियों का उदय और उदीरणा नरक-गति में समझनी चाहिए।

१. निद्रानिद्रा २. प्रचलाप्रचला ३. थीणद्धी ४. नपुंसकवेद ५-७. नरकादि तीन आयुष्य ८. नीचगोत्र ९-१४ नरकादि तीन गति और ३ आनुपूर्वी, १५-१८ जातिचौक, १९-२० औदारिकद्विक २१-२२. आहारकद्विक, २३-३३ छह संहनन और न्यग्रोधादि पांच संस्थान, ३४ अशुभविहायोगति, ३५ आतपनाम, ३६ उद्योत,

३७ जिननाम, ३८-४१ स्थावर चौक, ४२. दुःस्वरनाम। इन ४२ प्रकृतियो को छोड़ कर शेष ८० प्रकृतियों का उदय और उदीरणा देवगति मे है।

७३३ प्रश्न - सत्ता में प्रकृति १४८ है, तो उदय और उदीरणा की १२२-१२२ कैसे कह सकते हैं ?

उत्तर - सत्ता की तरह बंध, उदय और उदीरणा की भी १४८ प्रकृतियाँ हैं। परन्तु कर्मग्रन्थादि के कर्त्ता पूर्वाचार्यो द्वारा वर्णादि २० प्रकृतियों का समावेश, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, इन चार भेदों मे करने से १६ भेद कम हुए। पाँच बंधन और पाँच संघातन, इन १० भेद कम हुए। इन २६ (१६+१०) भेदों का अंतर्भाव करके शेष १२२ प्रकृतियाँ उदय और उदीरणा में बतलाई है। उपरोक्त समावेश को समझ कर उदय और उदीरणा की १२२ प्रकृतियॉ कह सकते हैं।

७३४ प्रश्न - सत्तागत प्रकृति १४८ मे से बंध की प्रकृति १२० बराबर मान्य है ? और इन १२० में से देव और नरक मे कितनी मिलती हैं ?

उत्तर - पन्नवणा सूत्र के २३ वें पद के दूसरे उद्देशे में १४८ ही प्रकृतियों का बंध बताया है। कर्मग्रन्थ आदि के कर्त्ताओ ने कुछ प्रकृतियों का अंतर्भाव (जैसे वर्णादि की २० प्रकृतियो का समावेश, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श, इन चारो में कर लिया, इत्याधि) करके बंध १२० प्रकृतियों का ही बताया है, परन्तु बंध तो सभी प्रकृतियों का समझना चाहिए।

१२० प्रकृतियों मे से नरकगति में १०१ प्रकृतियों का और देवगति मे १०४ प्रकृतियों का बंध होता है।

७३५ प्रश्न - छह लेश्या में से किस गुणस्थान तक कौन-कौन-सी लेश्या पाई जाती है ?

उत्तर - पहले से छठे गुणस्थान तक छहों लेश्याएँ होती है। सातवे गुणस्थान में तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या ये तीन प्रशस्त लेश्याएँ होती हैं। आठवें से ले कर तेरहवें गुणस्थान तक शुक्ललेश्या होती है।

७३६ प्रश्न - तीनों वेद में गुणस्थानक कितने हैं ?

उत्तर - स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदों मे पहिले से नौवें तक ९ नौं गुणस्थानक पाये जाते हैं।

७३७ प्रश्न - पांच ज्ञान में गुणस्थानक कितने और कौन-से पाये जाते हैं ?

उत्तर - पहला, तीसरा, तेरहवाँ और चौदहवाँ ये ४ गुणस्थानक छोड़ कर शेष १० गुणस्थानक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में हैं। यह सूत्रानुसार है। परन्तु कर्मग्रन्थादि में पूर्वोक्त १० गुणस्थानक में से दूसरा गुणस्थानक छोड़ कर शेष ९ ही गुणस्थानक बतलाये है। किन्तु आगमानुसार दस गुणस्थानक मानना ही ठीक है। मनःपर्याय ज्ञान में छठे से १२ वें तक ७ गुणस्थान और केवलज्ञान में १३ वाँ और १४ वाँ-ये २ गुणस्थानक पाये जाते हैं।

७३८ प्रश्न - तीन अज्ञान में गुणस्थानक कितने और कौन-कौन से ?

उत्तर - सूत्रानुसार तीन अज्ञान में पहला, दूसरा और तीसरा-ये तीन गुणस्थानक हैं। कर्मग्रन्थादि में दो (१-२) और तीन (१, २, ३) गुणस्थानक भी बताये हैं।

७३९ प्रश्न - सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापनीय-चारित्र और परिहार विशुद्ध-चारित्र में गुणस्थानक कितने पाये जाते हें ?

उत्तर - सामायिक और छेदोपस्थापनीय-चारित्र में-छठा, सातवाँ, आठवां और नौवां-ये चार, परिहार विशुद्ध में छठा और सातवां-ये दो, सूक्ष्स-संपराय मे एक १० वॉ और यथाख्यात-चारित्र में ११ वाँ, १२ वाँ, १३ वाँ और १४ वाँ-ये ४ गुणस्थानक पाये जाते हैं।

७४० प्रश्न - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन मे गुणस्थानक कितने पाये जाते है ?

उत्तर - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन मे प्रथम के १२ गुणस्थानक पाये जाते हैं। अवधिदर्शन में चौथे से बारहवें तक ये ९ गुणस्थानक कर्मग्रन्थ में कहे हैं। परन्तु सूत्रानुसार तो चक्षु आदि तीनों दर्शनों में गुणस्थानक १२ ही पाये जाते हैं।

७४१ प्रश्न - क्षायिकसमकित, उपशमसमकित और क्षयोपशम-समकित में गुणस्थान कितने पाये जाते है ?

उत्तर - क्षायिक-समकित में चौथे से १४ वे तक ११ गुणस्थान, औपशमिक-समकित में चौथे से ग्यारहवें तक ८ गुणस्थान और क्षायोपशमिक-समकित में चौथे से सातवे तक ४ गुणस्थान पाये जाते हैं।

७४२ प्रश्न - आठ कर्मो की १४८ प्रकृतियों में से नारकी, तिर्यच, देव और मनुष्य मे सत्ता कितनी और कौन-कौनसी पावे ?

उत्तर - देवायु को छोड़ कर शेष १४७ प्रकृतियॉ सत्ता रूप नरकगति में, जिननाम को छोड़ कर शेष १४७ प्रकृतियॉ सत्तारूप तिर्यचगति में १४८ प्रकृतियाँ सत्तारूप मनुष्यगति में और नरकायु छोड़ के शेष १४७ प्रकृतियॉ सत्तारूप देवगति मे पाई जाती है।

७४३ प्रश्न - पृथ्वीकाय ७ लाख, अप्काय ७ लाख, तेउकाय

७ लाख, वायुकाय ७ लाख, इनके भेद कैसे होते है और कौन-कौनसे ?

उत्तर - पृथ्वी आदि जीवों के उत्पत्ति स्थान असंख्य है, परन्तु अनेक स्थानों पर उत्पन्न होने पर भी जिन पृथ्वी आदि जीवों के शरीर का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान सदृश हों, उनमे सब जीवों की एक ही योनि मानी गई है। वर्णादि किसी मे भी फरक होने पर योनि भिन्न गिनी जाती है। वर्णादि की विभिन्नता के कारण (पन्नवणा के प्रथम पदानुसार) सात लाख आदि भेद माने गये है।

वर्णादि के स्थूल भेदों की अपेक्षा पृथ्वी आदि चारों के ३५०-३५० भेद है। इनमें वर्णादि के सूक्ष्म भेद जानने के लिये साढ़े तीन सौ भेदों को ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान से गुणा करने पर पृथ्वी आदि चारों के भिन्न-भिन्न सात-सात लाख भेद हो जाते हैं।

७४४ प्रश्न - बंध की १२० प्रकृति कौन-कौन सी है ? और भेद कितने है ? देव, नारक, तिर्यंच और मनुष्य में कितनी कितनी पावे ?

उत्तर - आठ कर्मो की कुल १४८ प्रकृतियाँ है, जिनमे से ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस और ८ स्पर्श, इन २० प्रकृतियों को केवल वर्ण, गंध, रस और स्पर्श-इन चारों भेदों में ही समावेश करने से १६ भेद बंध में से कम हुए। ५ बंध और ५ संघातन-इन १० प्रकृतियों का बंध ५ शरीर के बंध के साथ बताने से ये १० भेद भी बंधन में से कम हुए। मिश्रमोहनीय और समकित-मोहनीय का मिथ्यात्व से पृथक् बंध नहीं मानने से ये दो भेद भी बंध मे

कम हुए। इस प्रकार कुल २८ (१६+१०+२) प्रकृति-बंध मे से कम मानने से शेष १२० प्रकृतियो का समुच्चय बंध कर्मग्रन्थ मे बतलाया है। ३ नरकत्रिक (नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरकायु) ३ देवत्रिक, २ वैक्रियाद्विक (वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोंपांग) २ आहारक द्विक ३ सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्मनाम, साधारणनाम, अपर्याप्तनाम) विकलेन्द्रियत्रिक, एकेन्द्रियत्रिक (एकेंद्रियजाति, स्थावरनाम, आतपनाम) इन १९ प्रकृतियों को छोड कर शेष १०१ प्रकृतियों का बंध नरकगति में हैं। जिननाम और आहारकद्विक छोड़ कर शेष ११७ प्रकृतियों का बंध तिर्यचगति में है। मनुष्य-गति मे १२० ही प्रकृतियों का बंध है। नरकगति में जो १९ प्रकृतियॉ छोड़ी गई है, उनमें से एकेन्द्रिय-त्रिक को छोड़ कर शेष १६ प्रकृतियों का बंध देवगति में नहीं होता, अतः १०४ प्रकृतियों का बंध देवगति में समझना चाहिए।

७४५ प्रश्न - साधु जी म. सा. को यहॉ से कोई देव, महाविदेह-क्षेत्र में संहरण कर के ले जावे, उस समय वहॉ रात्रि हो जावे, तो वहाँ आहार-पानी कर सकते है, या नहीं ? (यदि भरत-क्षेत्र में रात्रि है और महाविदेह-क्षेत्र मे दिन है तो आहार कर सकते हैं या नहीं)।

उत्तर - भरत-क्षेत्र के साधु को यदि कोई देवादि संहरण करके महाविदेह क्षेत्र में ले जावे, तो वह महाविदेह-क्षेत्र के दिन मे ही आहार कर सकता है, रात्रि में नहीं। भरत-क्षेत्र के रात-दिन का हिसाब वहॉ व्यवहार में नहीं लाया जाता है। अर्थात् साधु का जन्म व दीक्षा भरतादि किसी भी क्षेत्र में हुई हो, परन्तु वह जब जिस क्षेत्र में हो, तब उसे वहीं के दिन-रात के हिसाब से प्रवृत्ति

करनी चाहिये। अन्यथा भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशा १ मे 'क्षेत्रातिक्रांत' दोष बतलाया है। जैसे - भरत-क्षेत्र में ही जोधपुर और मद्रास आदि स्थानों के सूर्योदय और सूर्यास्त के समय मे आध-घंटा, पौन-घंटा या इससे न्यूनाधिक अंतर पड़ जाता है। अतः मद्रास में स्थित साधु, जोधपुर के सूर्यास्त के अनुसार आहारादि करता है, या जोधपुर मे स्थित साधु मद्रास के सूर्योदय के अनुसार आहारादि करता है, तो उसे भी क्षेत्रातिक्रांत दोष लगता है, तो महाविदेह-क्षेत्र का तो कहना ही क्या ? अर्थात् वहाँ रात्रि भोजन का दोष लगता है।

७४६ प्रश्न - स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान में लिखा है कि-उपवास, बेला तथा तेला, धोवन-पानी से हो सकता है। धोवन-पानी के तीन प्रकार बताये हैं, सो उपवास का धोवन पानी, बेला में या तेला में काम आ सकता है, या नही ? उसी प्रकार बेला-तेला का पानी काम में आ सकता है या नहीं ? इसमे क्या अन्तर है ? धोवण-पानी में अन्न का असर आता है या नहीं ? धोवण-पानी में अन्न का असर आने से कोई दोष लगता है, या नहीं? धोवन-पानी के ३ रूप अलग-अलग है, सो वह धोवन-पानी साधु को ही कल्पता है, या श्रावक को भी कल्पता हैं ?

उत्तर - स्थानांग सूत्र ठाणा ३ उद्देशक ३ मे जो तीन तीन प्रकार का धोवन-पानी बताया गया है, उसमें तेले मे बताया हुआ धोवन-पानी, उपवास व बेले में और बेले में बताया गया उपवास में काम आ सकता है, परन्तु उपवास का बताया हुआ बेले-तेले में और बेले का बताया हुआ तेले में आगार रखे बिना काम में नहीं आ सकता।

धोवन-पानी में अन्न का अंश आता है, परन्तु उससे तप में दोष नहीं लगता, तभी तो प्रभु ने उसे ग्राह्य बतलाया है। उपरोक्त धोवन को श्रावक भी तपस्या में काम में ले सकता है।

७४७ प्रश्न - चक्रवर्ती के १ लाख ९२ हजार रानियाँ थीं। वे रानियों के पास वैक्रिय-रूप धारण कर जाते हैं, सो वैक्रिय-शरीर से सन्तान की प्राप्ति होती है क्या ?

उत्तर - जिसका मूल शरीर वैक्रिय हो, उसके मूल तथा बनाये हुए वैक्रिय-शरीर से गर्भ नहीं रहता। परन्तु जिसका मूल शरीर औदारिक हो, उसके बनाये हुए वैक्रिय-शरीर से गर्भ रह सकता है। इसका खुलासा "संग्रहणी" सूत्र की १६६ वी गाथा के अर्थ में और 'रायपसेणी' सूत्र की टीका में किया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में चक्रवर्ती के ६४ हजार रानियां बताई गई है। अतः चक्रवर्ती के १९२००० रानियाँ कहना आगम-सम्मत नहीं है।

७४८ प्रश्न - तिर्यचगति छोड़ कर तीन गति एक साथ कहां पर पाई जाती है ?

उत्तर - शून्यकाल में, एकांत व्यवहार राशि में, तीर्थकर नामकर्म की सत्ता वालों में और एकांत पंचेन्द्रिय-जाति आदि मे तिर्यंच के सिवाय शेष ३ गति पाई जाती है।

७४९ प्रश्न - किसी ने एक सामायिक ली, उसके एक सामायिक के उपरांत १५ मिनिट अधिक आ जाने के बाद यदि वह दूसरी सामायिक ग्रहण करे, तो पहिले अधिक आया हुआ समय, दूसरी सामायिक में सम्मिलित किया जा सकता है, या नही ?

उत्तर - जो समय सामायिक में अधिक व्यतीत हो चुका है, उसको मिला कर आगे सामायिक ग्रहण की जा सकती है।

७५० प्रश्न - लोक मे बादर पृथ्वीकाय अधिक है अप्काय ?

उत्तर - लोक में बादर पृथ्वीकाय के जीवों से बादर अप्क के जीव असंख्य गुणा अधिक है। यह बात पन्नवणा के तीसरे से स्पष्ट है। पृथ्वीपिंड की मोटाई अधिक होने पर भी अप्क के जीव संख्या मे अधिक हैं, क्योंकि बादर अप्काय के असं शरीर के बराबर एक बादर पृथ्वीकाय का शरीर होता है। यह ब भगवती सूत्र शतक १९ उद्देशा ३ प्रश्नोत्तर २० और २१ से स्प है। अत पन्नवणा सूत्र आदि में जो अप्काय के जीव अधि बतलाये है, उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती है।

७५१ प्रश्न - आसमानी स्याही के फूलण के विपय महाराज श्री की क्या धारणा है ?

उत्तर - आसमानी स्याही में भी फूलण की शंका रहती है इसमें तो क्या, पर फाउन्टेन पेन (इन्डीपेन) में भी फूलण व शंका समझ कर अजमेर-सम्मेलन के समाचारी विपयक निय मे १९ वॉ नियम "**इन्डीपेन पाढियारी लइने पण पोताना उपयो मां लेवी नहीं**" बनाया है। अतः उपरोक्त दोनों में फूलण समझ चाहिए।

७५२ प्रश्न - उपवास में चउत्थभक्त पच्चक्खाण का पा चला है, इसका मतलब अगले दिन एकासणा और पारने के दि भी एकासणा करे, तो पच्चक्खाण देने में बाधा नहीं। अभी वर्तमा मे तो ऐसी प्रथा नहीं है। इस प्रकार से कोई करते नही है, तो फि चउत्थ भक्त, आठ भक्त, दस भक्त इत्यादि बड़ी तपस्या पच्चक्खाण देने मे दोष आता है या नहीं ?

उत्तर - चार टंक आहार छोड़ने पर भी चउत्थ-भक्त कह सकते हैं और पारने धारने मे एक-एक टंक न छोड कर उपवास करने को भी चउत्थ-भक्त कहते हैं। क्योकि चउत्थ भक्त, छठ भक्त और अट्ठम-भक्त आदि नाम क्रमशः उपवास, बेले और तेले के है। भगवान् ऋषभदेव को ६ दिन का संथारा आया, उसे जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में १४ भक्त का संथारा कहा है। इसी तरह भगवान् महावीर के बेले के संथारे को छठ-भक्त कहा है। उनके तो कोई पारने का प्रश्न ही नहीं था। तो भी उनको उपरोक्त भक्त ही बताया है। कृष्ण वासुदेव ने देवकी के पास से पौषधशाला मे जा कर गजसुकुमाल जी के लिये तेला किया, इसी प्रकार अभयकुमार ने दोहद-पूर्ति के लिये तेला लिया। धारणे के दिन एक टंक न करने पर भी उसे अट्ठमभक्त ही कहा है तथा भगवती मे २ दिन के आयंबिल को भी आयंबिल-छठ कहा है। इत्यादि प्रमाणो से स्पष्ट है कि उपवास बेला आदि के नाम ही चउत्थ-भक्त, छट्ठभक्त आदि है। भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पहले उद्देशक की टीका में और अन्तगड सूत्र की टीका में बतलाया है कि "**चउत्थ भत्तमिति उपवास्य संज्ञा**" अतः पच्चक्खाण दिलाने मे कोई दोष नहीं।

७५३ प्रश्न - भगवती सूत्र शतक २ उद्देशा १० मे अलोक में 'अजीव-द्रव्य देश' कहा, प्रदेश नही तो प्रदेश के विना देश कैसे बना ? सविस्तार समझाइये।

उत्तर - भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १० में बतलाया गया है कि क्या अलोकाकाश में जीव, जीवो के देश, जीवों के प्रदेश, अजीव, अजीवों के देश और अजीवों के प्रदेश हैं ? इसके उत्तर

मे प्रभु ने ६ ही बोलो का निषेध किया है, क्योकि अलोकाकाश मे देश, प्रदेश आदि कुछ भी नहीं है। बाद में "**एगे अजीवदव्वदेसे.........**" जो पाठ हैं, उसमे अलोकाकाश को ही सम्पूर्ण आकाश का देश बतलाया है। उस देश को सम्पूर्ण आकाश से अनन्तवे भाग (लोकाकाश जितना) कम समझना चाहिए। जब इतना बड़ा देश है, तो उसके प्रदेश भी अवश्य है और उन प्रदेशो को अनन्त समझना चाहिए। अर्थात् अलोकाकाश के अन्दर तो कुछ नहीं है। अतः छहों का निषेध किया है, परन्तु अलोकाकाश खुद आकाशास्तिकाय का देश है और उसमें प्रदेश भी हैं।

७५४ प्रश्न - लोकाकाश में धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य का देश नहीं, तो फिर अरूपी अजीव के १० भेद मे देश शामिल है, सो कैसे ? शतक २ उद्देशा १०।

उत्तर - लोकाकाश में अरूपी अजीव के सिर्फ ५ भेद बतलाये है, क्योंकि आकाश के अन्दर तो आकाश होता नहीं है, अतः आकाश के तीनों भेद छोड़े गये और सम्पूर्ण लोकाकाश की पृच्छा होने से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय के देश भी छोडे गये है, कारण कि जहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि तीनो का स्कंध होता हैं, वहाँ देश नहीं होता और जहाँ देश होता है, वहाँ स्कंध नहीं होता। अत· यहाँ पूर्ण लोकाकाश में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का स्कंध है, देश नही (प्रदेश तो दोनों में ही होते है) उपरोक्त ५ भेदों के सिवाय शेष ५ भेद लोकाकाश मे है। ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक्लोक तथा जम्बूद्वीप आदि की भिन्न पृच्छा हो, तो वहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय का स्कंध न कह कर देश-प्रदेश ही कहे जायेगे।

७५५ प्रश्न - सामान्य-केवली पांच पदो मे से कौन-से पद में हैं और केवली-समुद्घात, तीर्थंकर देव के होती है, या नहीं ? **'नमो लोए सव्वसाहूणं'** पाठ आया है, वह केवली-समुद्घात मे आत्म-प्रदेश समस्त लोक में फैलते है, इस अपेक्षा से है, या अन्य कारण से है ?

उत्तर - सर्वज्ञता के कारण केवली भगवान् प्रथम पद मे माने जाते है, फिर भी वे पंचम पद में तो अवश्य गिने ही जायेगे, क्योंकि सिद्धो के सिवाय शेष चारों पदों का समावेश पंचम-पद में होता है, अर्थात् छह गुणस्थान से १४ वें गुणस्थान तक के सभी साधु, पचम-पद में समझना चाहिए। तीर्थंकरों के केवली-समुद्घात नही होती।

केवली-समुद्घात में आत्म-प्रदेश सम्पूर्ण लोक में फैलने से तथा तीनों लोक मे साधु होने से **''लोए सव्व''** शब्द है, तथा स्वलिंग, अन्यलिंग, गृहस्थलिंग आदि भेदों में रहे हुए सभी भाव-साधुओ की अपेक्षा से भी **''सव्व''** शब्द कहा है। तथा **''लोए सव्व''** शब्द पंचम पद के अनुसार शेष ४ पदो के साथ समझने में भी कोई बाधा नहीं है। जैसे - लोक के सब अरिहंत, सिद्ध, आचार्य और उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो।

७५६ प्रश्न - आयुष्य-बंध के ६ भेद सूत्र भी भगवती शतक ६ उ ८ में आये, जो जाति आदि है, उसको आयुष्यवंध कैसे कहा ? और बंध निधत्त कहा, तो क्या आयु-कर्म निधत्त वधता है ? कौन-कौन से कर्मो का बंध निकाचित होता है और किस कारण से ? और निकाचित बंधते समय बंधने वाली सभी प्रकृतियाँ निकाचित बंधती है ? आयुष्य-बंध के पहले या पीछे

क्या निकाचित कर्म बंध सकता है ? स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट कितनी होती है और क्या पूरी भोगनी पडती है ? जीवन में कितने बार बंध सकता है ? पहले वही प्रकृति निधत्त बंधी हुई हो, तो वह भी निकाचित हो जाती है, या नही ? निकाचित बंध प्रदेशों द्वारा छूट सकता है ? संक्रमण आदि होता है, या नहीं ?

उत्तर - आयुष्य-कर्म की प्रधानता बताने के लिये जाति के साथ आयुष्य शब्द का प्रयोग किया है। आयुष्य-कर्म का उदय होने पर ही जाति आदि का उदय होता है। अतः आयुष्य की प्रधानता बताई गई है।

यहाँ 'निधत्त' शब्द, निधत्त-बंध वाचक नहीं, परन्तु निपेक (बन्धे हुए कर्मो को समय-समय पर भोगने के लिये कर्मपुद्गलों की रचना विशेष को 'निषेक' कहते हैं) वाचक है।

सोपक्रम आयुष्य के सात उपक्रमों के सिवाय आयुष्य कर्म के बन्ध को निकाचित ही समझना चाहिए।

अध्यवसाय विशेप से आठों ही कर्मो का बंध निकाचित हो सकता है - एसा संभव है।

जिस समय एक प्रकृति का निकाचित बंध होता है, उस समय एक साथ बंधने वाली सभी प्रकृतियो का एकांत रूप से निकाचित बंध ही हो-ऐसा कोई नियम नहीं है।

आयुष्य-बंध के पहिले व पीछे भी अन्य कई प्रकृतियों का निकाचित-बंध हो सकता है।

कई प्रकृतियो का निकाचित-बंध, जीवन मे अनेक बार भी हो सकता है।

जो प्रकृति पहले निधत्त बंधी हो, उसी प्रकृति को कालान्तर

मे निकाचित भी बांध सकता है (आयुष्य का बंध एक भव में एक ही बार होता है दो बार नहीं)।

निकाचित-बंध प्रदेशोदय द्वारा नहीं छूट सकता और निकाचित-बंध का संक्रमण आदि भी नहीं होता है।

७५७ प्रश्न - आयुष्य-बंध के समय ६ प्रकृतियो का एक साथ बंध होता है, तो उस समय जो जाति, गति आदि का बन्ध होता है, उसमें परिवर्तन होता है या नहीं ? जैसे आयुष्य बंधते समय सातवीं नरक की गति या भवनपति देव की गति स्थिति अवगाहना का बंध किया। बाद में परिणामों की विचित्रता से सातवीं का पहली नरक में व भवनपति का वैमानिक में जा सकता है या नहीं ? यदि जा सकता है, तो फिर स्थिति अवगाहना आदि का बंध कैसे घटता है ?

उत्तर - आयुष्य-बन्ध के साथ जाति-गति आदि का जो बन्ध होता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अर्थात् पहली नरक का आयुष्य बांधने वाला जीव, पहली नरक में ही जाता है। अन्यत्र किसी भी गति में नहीं जा सकता। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

७५८ प्रश्न - भगवती सूत्र शतक २ उद्देशा १ में लिखा कि मड़ाई अनगार ४ गति में से किसी भी गति में जा सकता है, तो अनगार अवस्था मे ऐसा कैसे हो सकता है ?

उत्तर - क्रोधादि कषाय के उदय से चारित्र-भ्रष्ट हुए 'मडाई अनगार' को चारों गति में भटकना पड़ता हैं, अन्यथा नहीं।

७५९ प्रश्न - बादर वायुकाय को स्वकाय और परकाय का शस्त्र (उपक्रम) से मरे बिना उपक्रम नहीं, सो क्या कारण ?

(भगवती श. २ उ. १)

उत्तर - उपक्रम बिना वायुकाय के जीव नहीं मरते, यह उत्तर सोपक्रमी आयुष्य वाले वायुकाय के जीवों की अपेक्षा से है, सभी के लिये नहीं।

७६० प्रश्न - खंदकजी, भगवान् महावीर स्वामी के पास आये, उस समय भगवान् नित्य-भोजी थे, तो क्या तपस्या नहीं करते थे?

उत्तर - खंदकजी भगवान् के पास आये, उन दिनों मे भगवान् नित्य-भोजी थे, अर्थात् उन निकटवर्ती दिनों मे उनके तपस्या की हुई नहीं थी।

७६१ प्रश्न - सातवीं नरक में जीव को सम्यक्त्व आती है, वह पर्याप्त अवस्था में किसी भी समय में आ सकती है, या कोई काल निश्चित है और कौनसी सम्यक्त्व आती है ?

उत्तर - सातवीं नरक के पर्याप्त जीवों को आयुष्य-बंध और मृत्यु समय के सिवाय किसी भी समय समकित प्राप्त हो सकती है। वहाँ क्षयोपशम, उपशम, वेदक और सास्वादन समकित पाई जाती है।

७६२ प्रश्न - मकान की ऊपर की मंजिल में साधु ठहर सकता है, या नहीं ? सप्रमाण बताइये।

उत्तर - दूसरा आचारांग, दूसरा अध्ययन, प्रथम उद्देशक के १० वें सूत्र में जरूरी कारणों के बिना ऊपर ठहरने की मनाई की है।

७६३ प्रश्न - श्री भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशा ६ के तीसरे सूत्र में श्रावक तथारूप असंयती आदि को अशनादि देवे, तो एकांत पाप कहा सो कैसे ? विस्तार से खुलासा लिखे।

उत्तर - आठवें शतक के छठे उद्देशे के प्रथम तीनो प्रश्न, मोक्षार्थ दान विषयक हैं, अनुकंपा आदि दान विषयक नही। अतः ये उत्तर निर्जरा और पाप से ही सम्बन्धित हैं, पुण्य से नहीं। जैसे कि - पहले-दूसरे प्रश्न में साधु को बहराने से निर्जरा के साथ ही साथ पुण्य भी अवश्य होता है, परन्तु वहाँ पुण्य का प्रकरण नहीं होने से उसका वर्णन नहीं करके निर्जरा व पाप का ही वर्णन किया है। इसी प्रकार तीसरे प्रश्न में भी निर्जरा न होने से एकांत पाप बतलाया है, परन्तु पुण्य का निषेध नहीं समझना चाहिये।

यहाँ केवल असंयती शब्द न कह कर 'तथारूप असंयती' कहा। इससे सभी असंयतियों का अर्थ ग्रहण न होकर, अन्यतीर्थियों की वेश-भूषा धारण करने वाले उनके धर्माचार्य, धर्मगुरुओं का ही ग्रहण होता है और उनको गुरु-बुद्धि से दान देने में निर्जरा न होकर एकांत पाप (मिथ्यात्व) होता है। यहाँ तो "**पडिलाभेमाणे**" शब्द है, वह गुरु बुद्धि से दान देने के अर्थ में है। अतः तथारूप के अन्य-तीर्थियों को गुरु-बुद्धि से दान देने मे निर्जरा न बता कर एकान्त पाप (मिथ्यात्व) बतलाया है।

७६४ प्रश्न - जीव कर्मो का बन्ध करता है, तो क्या सभी प्रदेशों में बंधने वाले प्रदेशादि बराबर बँटते हैं, या कम-ज्यादा ? और वीर्य-अन्तरायादि का क्षयोपशम करता है, वह भी सभी प्रदेशों से बराबर करता है, या कम-ज्यादा ?

उत्तर - जीवों के प्रदेशों पर कर्मो के प्रदेश न्यूनाधिक हो सकते है और क्षयोपशम भी न्यूनाधिक हो सकता है।

७६५ प्रश्न - सिद्ध भगवान् एक गाउ के छठे भाग में अवस्थित हैं, तो यह छठा भाग ऊँचाई में ही है, या तिर्छा चौड़ाई में भी ? क्या चौड़ाई में पूरे ४५ लाख योजन में सिद्ध रहे हुए हैं ? मूलपाठ में "**उवरिमे**" शब्द तो है, पर चौड़ाई का कोई जिक्र नहीं देखा ?

उत्तर - २४ अंगुल का एक हाथ होता है और चार हाथ का अर्थात् ९६ अंगुल का एक धनुष और २ हजार धनुष का एक गाउ होता है। इसका छठा भाग करने से ३३३ धनुष ३२ अंगुल होते हैं। अधिक से अधिक ५०० धनुष की अवगाहना वाले मनुष्य मोक्ष जाते हैं। मोक्ष जाने वालों की अवगाहना का दो-तिहाई भाग ही अवशेष रहता है, ५०० धनुष का दो तिहाई भाग ३३३ धनुष और ३२ अंगुल होता है। ५०० धनुष का दो-तिहाई भाग और गाउ का छठा भाग बराबर है। अतः एक गाउ के छठे भाग जितनी ऊँचाई में सिद्ध है।

लम्बाई चौड़ाई में तो सिद्ध, पूरे ४५ लाख योजन के गोल-क्षेत्र में है। क्योंकि मनुष्य-क्षेत्र के बाहर से कोई मोक्ष जाता ही नहीं। वे मनुष्य-क्षेत्र के जिन आकाश-प्रदेशों पर से मोक्ष जाते हैं, उन्हीं आकाश-प्रदेशों की सीध में ऊपर जाते हुए सिद्ध-क्षेत्र में ठहरते हैं। उस सीध से उसका एक भी प्रदेश इधर-उधर नहीं होता। मनुष्य-क्षेत्र का एक भी आकाश प्रदेश ऐसा नहीं कि जहाँ सिद्ध न हुए हों। अर्थात् मनुष्य-क्षेत्र के सभी आकाश-प्रदेशों पर (कभी कहीं और कभी कहीं) काल-क्रम से सिद्ध हो चुके हैं। अतः पूरे ४५ लाख योजन की लम्बाई-चौड़ाई में सिद्ध अवस्थित (ठहरे हुए) हैं।

७६६ प्रश्न - क्या सभी क्रियावादी समकिती है ? भगवती

सूत्र के तीसवें शतक में क्रियावादी को वैमानिक और भवनपति मे भी जाना लिखा है, यह कैसे ? क्रियावादी तो ३६३ पाखंडियो में भी है।

उत्तर - साधारणतया जीवादि पदार्थों के मानने वालों को 'क्रियावादी' कहते हैं। उनमे जो जीवादि पदार्थो को यथार्थ रूप (अनेकांत से नित्यानित्यादि) से मानने वाले हैं, वे सभी क्रियावादी सम्यग्दृष्टि हैं और वास्तव में वे ही क्रियावादी कहलाने के योग्य है। उनका वर्णन भगवती सूत्र के ३० वें शतक में दिया है। तीसवे शतक मे बताये सभी क्रियावादी सम्यग्दृष्टि ही हैं। वे अगर क्रियावादी अवस्था में आयुष्य का बंध करे, तो तिर्यच-पंचेन्द्रिय और मनुष्य तो वैमानिक देवों का और नैरयिक व देव, मनुष्य का ही आयुष्य बंध करते हैं और कहीं का भी आयुष्य बंध नहीं करते है। हैद्राबाद की प्रति में जो भवनपति का उल्लेख है, वह भूल से लिखा गया-ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि अवस्था में भवनपति के आयु का बंध कदापि नहीं हो सकता है।

जो क्रियावादी, जीवादि पदार्थो को एकांत रूप से नित्य, अनित्य आदि मानते है तथा काल, स्वभाव, नियति आदि के समूह को कारण न मान कर पृथक्-पृथक् रूप से ही उनको कारण मानते हैं, अतः एकान्त दृष्टि से कोई किसी को और कोई किसी को जीवादि पदार्थो का हेतु मानने के कारण क्रियावादी के १८० भेद होते है। वे शुद्ध ज्ञानियों द्वारा 'मिथ्यादृष्टि' कहलाते हैं। ३६३ मे से उनके १८० भेद है और उनका वर्णन सूत्रकृतांग के १२ वे अध्ययन में बताया है।

नोट-ये किसी-न-किसी प्रकार से जीवादि पदार्थो को स्वीकारते हैं, अतः क्रियावादी हैं और यथार्थ न मानने से मिथ्यादृष्टि हैं।

७६७ प्रश्न - क्षायिक-सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद आयुष्य का बंध होता है या नहीं ? प्रमाण ?

उत्तर - क्षायिक-समकित केवल कर्मभूमि के मनुष्य को ही प्राप्त होती हैं। क्षायिक-समकित प्राप्ति के पहले जिन जीवो ने चारों में से किसी भी गति का आयुष्य बांध लिया हो, तो उन जीवों को क्षायिक-समकित की प्राप्ति के बाद भी जहाँ का आयुष्य बांधा है, वहाँ जाना ही पड़ता है।

यह भी ध्यान रहे कि प्रथम की चार नरक के सिवाय अन्य किसी भी नरक का स्थलचर-युगलिकों के सिवाय अन्य किसी तिर्यच का और ३० अकर्मभूमि के मनुष्यों के सिवाय अन्य किसी मनुष्य का आयुष्य बंधने के बाद उस मनुष्य को क्षायिक-सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होती।

आयुष्य बन्ध के पहले क्षायिक समकित की प्राप्ति हो गई हो, तो फिर वह मनुष्य किसी भी गति का आयुष्य न वांध कर इसी भव में मोक्ष जाता है। यह बात भगवती सूत्र शतक १ उ. ८ के अर्थ व टीका में स्पष्ट हैं तथा चौथे कर्मग्रन्थ की २५ वीं गाथा के अर्थ से भी यही भाव झलकता है।

जिनको नरक व देव का आयुष्य बंध के बाद क्षायिक समकित आई हो, तो वे नरक और देव-भव में एक मनुष्य का ही आयुष्य बाँधते हैं तथा जिनके स्थलचर-युगलियों का और तीस अकर्मभूमियों का आयु बांधा हो, वे एक बार देव का फिर देवभव में मनुष्य का इस प्रकार दो बार आयुष्य बांधते हैं। यह वात भी कर्मग्रन्थ की उपरोक्त गाथा के अर्थ से स्पष्ट है।

७६८ प्रश्न - केवलज्ञान होने के बाद पूर्व के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि ज्ञानों का क्या होता है ? छूट जाते हं, या केवलज्ञान में विलय हो जाते हैं ?

उत्तर - मतिज्ञान आदि चारो ज्ञान क्षायोपशमिक भाव मे है और केवलज्ञान क्षायिक भाव में हैं। अतः केवलज्ञान होते ही चारो ज्ञान छूट जाते हैं। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में भगवान् ऋषभदेव के वर्णन मे केवलज्ञान की व्याख्या करते हुए टीकाकार कहते है कि - "**केवलमसहायं-नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे।**" तथा प्रज्ञापना सूत्र के २९ वें पद में केवलज्ञान की व्याख्या करते हुए टीकाकार कहते हैं कि - **केवलं-एकं मत्यादिज्ञान निरपेक्षत्वात्, "नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे" (नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने)** इत्यादि प्रमाणो से चार ज्ञान का छूटना स्पष्ट है।

७६९ प्रश्न - यथाख्यात-चारित्र की प्राप्ति के बाद पूर्व के क्षायोपशमिक चारित्र छूट जाते हैं या यथाख्यात-चारित्र मे मिल जाते हैं-विलीन हो जाते है ?

उत्तर - यथाख्यात-चारित्र की प्राप्ति के बाद क्षायोपशमिक-चारित्र छूट जाते हैं।

७७० प्रश्न - उपशम-समकित में कोई काल करता है, या नहीं ? उपशम-श्रेणी में तो काल करते हैं, पर उपशम समकित मे काल करते है या नहीं ?

उत्तर - उपशम-समकित में जीव काल कर सकता है ऐसी धारणा है और **चौथा कर्मग्रन्थ** में, गोम्मटसार आदि में भी इसका **स्पष्ट उल्लेख है।**

७७१ प्रश्न - सूत्र श्री चंदपन्नत्ती के सतरवां प्रति पाहुडा मे नक्षत्रों मे भोजन का अधिकार है, उनमें लिखा है कि अमुक-अमुक नक्षत्रों में अमुक-अमुक भोजन करके जावे, तो कार्य सिद्ध होवे। जैसे कि रेवती नक्षत्र में जलचर, फूलन अथवा पानी का भोजन, शतभिषा में तुम्बड़े का भोजन, जेष्ठा नक्षत्र मे कोहले का

भोजन उत्तराफाल्गुणी में लसुनकन्द अथवा आलू का भोजन करके जावे, तो कार्य सिद्ध होवे। इत्यादि २८ नक्षत्रों के विषय मे भोजन का अधिकार लिखा है और बाल-ब्रह्मचारी १००८ श्री अमोलकऋषिजी म. सा. का हिन्दी अनुवाद किया हुआ है। अब इसमें भोजन करके जाने का लिखा है, सो सांसारिक कामों के लिए लिखा है या कौन-से कार्य सिद्ध होने के लिये लिखा है ? ऐसे मांसादि और अभक्ष्य चीजों का शास्त्र में किस अपेक्षा से वर्णन आया है। अगर इस विषय में कोई दूसरा मतलब निकलता हो, तो भी पूछ कर खुलासावार वापिस लिखने का कष्ट उठावें। इस सूत्र को पढ़ने के लिये श्रावकों को मना है, ऐसा कोई संत-सतियांजी कहते हैं। इसका क्या कारण है ? सतरवां पाहुड़ा मे गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि अहो भगवन् ! आपके मत में नक्षत्रों में किस प्रकार भोजन विचार कहा है, अर्थात् क्या भोजन कर जावे, तो कार्य सिद्ध होवे ? आपके मत का मतलब "जैन-धर्म" ही है, या दूसरा ?

उत्तर - नक्षत्रों के भोजन संबंधी जो पाठ है, वह भगवद्-वाणी की परम्परा से मेल नहीं खाता। वीतराग-वाणी में इस प्रकार की अभक्ष्य-भक्षण रूप प्ररूपणा कदापि नहीं हो सकती। "यहाँ आप के मत" का मतलब जैन-धर्म ही होता है। परन्तु ऐसा पाठ भगवान् के नाम से स्वार्थ-प्रिय पुरुष ने प्रक्षेप कर दिया हो अथवा पूर्वापर संबंध छूट गया है। पहले मांस भक्षण संबंधी अन्यमत की मान्यता बता कर पीछे जैन धर्म की मान्यता देनी चाहिये थी कि मांक्ष भक्षण आदि मान्यता गलत है। इतना पाठ छूट गया है। ऐसा प्रतीत होता है। भगवान् तो ऐसी सावद्य वाणी कभी नहीं फरमाते। ऐसे कारणों से ही साधारण मनुष्यों के लिये इन सूत्रों को वांचने की पूर्वाचार्यों ने रुकावट की है।

७७२ प्रश्न – देवसी प्रतिक्रमण किस समय करने का शास्त्र में विधान है ? प्रतिक्रमण किस समय शुरू करना चाहिये ? सूर्य अस्त होने से पहिले प्रतिक्रमण के छही आवश्यक हो जाना चाहिए क्या ?

उत्तर – उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वे अध्ययन की २० वीं गाथा तक सामान्य प्रकार से मुनियों का दिन और रात्रिकृत्य बताया। आगे १८॥ गाथा में अर्थात् ३८॥ गाथा तक विशेष प्रकार से दिन-कृत्य बताया है। बाद में (प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग आदि)रात्रि-कृत्य करना बताया है। इसी अध्ययन की ३९ वी गाथा की इस "**एवं च सप्तविंशति स्थंडिलानां प्रत्युपेक्षणानन्तरमादित्यो-ऽस्तमेति इत्थं विशेषतो दिनकृत्यमभिधाय संप्रति तथैवरात्रि-कर्त्तव्यमाह**" – टीका से स्पष्ट है। अतः प्रतिक्रमण रात्रि के प्रारम्भ से करना स्पष्ट सिद्ध होता है।

इसी अध्ययन की ४३ वीं गाथा मे प्रतिक्रमण पूर्ण होने (स्तुति मंगल) के पश्चात् ही स्वाध्याय-काल प्रतिलेखन करे, यानी स्वाध्याय करने का विधान है और वह स्वाध्याय चारों ही सन्ध्याओं में करना मना है। जैसा कि ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे के दूसरे उद्देशक में कहा है – "**नो कप्पई निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए**" यदि कोई करे तो निशीथ के १९ वें उद्देशक – "**जे भिक्खू चउहिं संझाएहिं सज्झायं करेइ करंतं वा साइज्जई तंजहा-पुव्वाए, पच्छिमाए अवरण्हे, अद्धरत्ते**" आदि से प्रायश्चित का भागी होता है। यदि सूर्यास्त का समय प्रतिक्रमण समाप्ति का होता, तो प्रतिक्रमण समाप्त होते ही स्वाध्याय करना कैसे बताते ? अतः सन्ध्या को अस्वाध्याय समाप्ति के लगभग ही प्रतिक्रमण की समाप्ति का समय है और वह उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है।

बृहत्कल्प के उद्देशक ३५ वें में "**भिक्खू उग्गए वित्तिए अणअत्थमिए संकप्पे**" क्रम से ४ सूत्रों से प्रभु ने उदय से अनस्त तक अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक सरोग या नीरोग अवस्था में प्रसंगवश भिक्षु की भिक्षुवृत्ति का ग्रहण व भक्षण समय बताया है, तो फिर अनस्त का समय प्रतिक्रमण का कैसे हो सकता है ?

दशाश्रुतस्कन्ध के ७ वें अध्ययन में प्रतिमाधारी अप्रतिबद्धविहारी, घोर पराक्रमी, अग्नि या सिंह के आक्रमण से काया को विचलित नहीं करने वाले मुनि भी "**जत्थेव सूरी य अत्थमेज्जा तत्थेव उवायणावित्तए**" आदि सूर्यास्त तक विहार में रह सकते हैं, तो फिर सूर्यास्त के पूर्व प्रतिक्रमण कर लेना कैसे संगत हो सकता है ?

इत्यादि प्रबल प्रमाणों से कोई खास पर्व आदि के अलावा रात्रि के प्रारम्भ से प्रतिक्रमण का प्रारम्भ करना सिद्ध होता है।

७७३ प्रश्न - सूक्ष्म के १० भेद हैं, जिनमें प्रत्येक-शरीरी कितने और साधारण कितने ? सूक्ष्म में साधारण कैसे माना जाय? क्या सूक्ष्म वनस्पति के जीवों में एक शरीर में अनेक जीव हैं ?

उत्तर - सूक्ष्म वनस्पति में पर्याप्त और अपर्याप्त के एक-एक औदारिक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव हैं। अतः दस में से ये दो तो साधारण हैं और शेष ८ प्रत्येक हैं।

७७४ प्रश्न - "जैसा खावे अन्न, वैसा रहवे मन, जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वाणी" - क्या यह बात पंच महाव्रतधारी पर लागू हो सकती है ?

उत्तर - न्याय और अन्याय से पैदा किये हुए धन से जो अन्नादि बना हो, उसका प्रभाव महाव्रतधारियों पर नहीं पड़ता।

परन्तु मुनि-कल्पनानुसार शुद्ध और अशुद्ध आहार-पानी आदि का प्रभाव तो मुनियों पर भी अवश्य होता है।

७७५ प्रश्न - जब शास्त्र लिखे गये, तब पूर्व का ज्ञान था? क्या एक पूर्व के ज्ञान वालों ने ही शास्त्र लिखे है, या परम्परा से सुना हुआ याद रख कर लिखा गया है ?

उत्तर - जब शास्त्र लिखे गये तब तक पूर्व का ज्ञान था। एक पूर्व के ज्ञान वाले की देख रेख में शास्त्र लिखे गए थे। जो एक पूर्व का ज्ञान था, वह उनके गुरु-परम्परा से आया हुआ और सीखा हुआ था। उसी के बल पर उन्होंने सूत्र लिखे और लिखाये थे। अर्थात् भगवान् का फरमाया हुआ जो शास्त्र ज्ञान उनको कंठस्थ था उसी को उन्होंने लिपिबद्ध किया था (लिखा था)। उन्होंने अपनी तरफ से उसमें कुछ भी घटाया, बढ़ाया नहीं। अतः यह शुद्ध वीतराग वाणी है।

७७६ प्रश्न - श्री सूयगडांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के पांचवें अध्ययन ८-९ गाथा में लिखा है कि कोई साधु आधाकर्मी आहार भोग ले, तो उसे पाप से लिप्त भी नही कहना और पाप से अलिप्त भी नहीं कहना, क्योंकि आधाकर्मी-आहार को भी कारण से या अनजानपने से भोगवने से कर्म नहीं बंधते। इसलिए एकांत वचन नहीं बोलना। अतएव बतावें कि क्या कारण से साधु आधाकर्मी आहार भोग सकता है और भोगने पर पाप लगा भी नहीं कहना, पाप नहीं लगा भी नहीं कहना तो फिर क्या कहना ? जैसे आधाकर्मी-आहार के विषय मे एकांत शब्द नहीं कहा, उसी प्रकार सभी अनाचार समझे जा सकते है ? अगर नही, तो किस आधार पर ठीक समझा जाय ? ५२ अनाचार में कौनसा अनाचार कारणवश साधु काम में ले सकता है और कौनसा नही ?

उत्तर - सूयगडांग सूत्र की आधाकर्म विषयक गाथाओं क फलितार्थ निम्न प्रकार समझना चाहिये।

मुनि अपनी ओर से पूर्ण सावधानी के साथ गवेषणा क हुए भी उनको कोई गृहस्थ, कपट एवं प्रपंच से आधाकर्मी वस्तु देवे और मुनि उसे अंतःकरण से शुद्ध जानते हुए काम में ले ले तो वह आधाकर्मी वस्तु उसकी विशुद्ध गवेषणा के कारण शु जैसी होगी। वह आधाकर्मी वस्तु जैसा फल देने वाली नहीं हो तथा कोई साधु दोषों की बेपरवाही से, गवेषणा की शुद्धि न रख हुए और शंका पड़ने पर गोलमाल करके आधाकर्मी वस्तु ले भोगवे, तो वह वस्तु उसे अवश्य ही आधाकर्मी की फलदा होगी, इत्यादि प्रसंग उपस्थित होने पर गृहस्थादि के कहने किसी अन्य साधु को मालूम हुआ कि अमुक मुनियों के आधाक वस्तु भोगने में आ गई, तो ऐसे प्रसंगों पर उस सुनने वाले सा को, ऊपर बताये हुए दोनों प्रकार के भावों वाले मुनियों के भाव का पता न होने से। उनके कर्म-बंध हो गये, या नहीं हुए - ऐ एकांत वचन नहीं कहना। कहने से भाषा सम्वन्धी अनाचार क सेवन होता है। इसलिये सूत्रकृतांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के पांचवें अध्ययन के भावों के अनजानों को ऐसी एकांत भा बोलने का निषेध किया है। किन्तु आधाकर्मी वस्तु कर्म-बन्ध क हेतु है - ऐसा बताने का निषेध नहीं किया। यदि यही निषे होता, तो आचारांगादि अनेक सूत्रों मे प्रभु आधाकर्मी वस्तु क कर्मबन्ध व संसार-भ्रमण आदि का कारण क्यों बताते ?

जानबूझ कर आधाकर्मी वस्तु को काम में लेने की शास्त्र में अनेक स्थानों पर एकांत मनाई की है। जैसे - आचारांग के ९ वें अध्ययन के उद्देशक २ में-आधाकर्मी आदि दोष युक्त वस्तु

कोई साधु को देवे और उसके नहीं लेने पर साधु को कोई मारे, पीटे, काटे, जलावे, पचावे, लूटे आदि अनेक प्रकार की पीड़ा करे, तो उसे सहन करना, परन्तु अशुद्ध वस्तु न लेना बताया है।

सूयगडांग सूत्र अध्ययन १ उद्देशक ३ गाथा १ मे आधाकर्मी आहार का एक कण भी जिसमें मिल गया है, तो ऐसी वस्तु भी काम में लेने वालों को दोनों (साधु और गृहस्थ) पक्षों का सेवन करने वाला, अर्थात् वेश से साधु और भाव से उसे गृहस्थ बताया है।

भगवती सूत्र श. १ उ. ९ मे आधाकर्मी वस्तु भोगने वाले जो श्रमण हैं, वे धर्म का उल्लंघन करते है। वे छह काय की अनुकम्पा रहित, कर्मो को मजबूत कर संसार-भ्रमण करते हैं, इत्यादि बताया है।

भगवती सूत्र श. ५, उ. ६ में आधाकर्मी, "कांतार-भक्त' (जगल में साधु के निर्वाह के लिये तैयार किया हुआ आहारादि) 'दुर्भिक्षभक्त' (दुष्काल के समय साधु के निर्वाह के लिये तैयार किया हुआ आहारादि) 'ग्लान-भक्त' (रोगी के नीरोगार्थ भिक्षुओ को देने के लिये तैयार किया हुआ आहारादि) आदि सदोष आहारादि को मन में भी निरवद्य (निष्पाप) हैं-ऐसा समझे और उसकी आलोचना किये बिना काल करे, तो विराधक होना बताया है। इत्यादि अनेक सूत्रों में आधाकर्मी वस्तु तथा कांतार-भक्त, दुर्भिक्ष-भक्त आदि को-रोगादि प्रसंग पर भी छूट न देकर एकांत निषेध ही बताया है।

७७७ प्रश्न - पूर्व का ज्ञान भी क्या लब्धि युक्त है ?

उत्तर - अट्ठाईस लब्धियों में चौदहवी "पूर्वधरलब्धि" है। दस पूर्वी से १४ पूर्वी तक पूर्वधर-लब्धि वाले कहलाते हैं। पूर्वधर-लब्धि के प्रभाव से सीखे हुए १४ पूर्वो के ज्ञान को एक मुहूर्त मे दोहरा सकते हैं।

७७८ प्रश्न - सोपक्रम आयुष्य वाले के लिये पूर्वाचार्य लिखते हैं कि वे द्रव्यायुष्य (आयु-कर्म के पुद्गल) तो पूरे भुगतते हैं, किन्तु कालायुष्य-स्थिति कम हो सकती है। इसमे रस्सी का दृष्टांत है। लंबी रस्सी देर से जलती है और गुंछली करने से जल्दी जल जाती है। क्या यह ठीक है ? क्या इस प्रकार स्थिति में कमी हो सकती है ?

उत्तर - आयुष्य-बन्ध के समय में ही सोपक्रम आयु वाला, आयुकर्म के दल अधिक होते हुए भी मंद प्रयत्न के कारण स्थिति कम और उपक्रमयुक्त ही बांधता है। अतः निश्चयनय से तो आयुकर्म की स्थिति कम होती ही नहीं। परन्तु व्यवहार-नय से कम होनी बताई हैं, सो वह अपनी थोड़ी बंधी हुई स्थिति में ही उतने आयुष्य-दल को खपा देता है। वास्तव में तो ज्ञानियों ने उनका बन्ध व उपक्रम वैसा ही देखा था, जैसा उन्होंने भोगा।

७७९ प्रश्न - श्री नन्दीसूत्र में लिखा है कि अप्रतिपाती अवधिज्ञानी अलोक में एक से अधिक आकाश-प्रदेश को देखता है। अवधिज्ञान का विषय तो रूपी पदार्थ देखने का है, फिर अरूपी आकाश-प्रदेश कैसे देख सकते हैं ?

उत्तर - अलोक के प्रदेश देखना-यह अवधिज्ञान की शक्ति (सामर्थ्य) का वर्णन किया है। परन्तु अलोक में अवधिज्ञान वालों के लिए देखने योग्य कुछ भी पदार्थ नहीं है। टीकाकार भी यही कहते हैं। जैसे - **"एतच्च सामर्थ्यमात्रमुपवर्ण्यते तत्वलोके किंचिदप्यवधिज्ञानस्य दृष्टव्यमस्ति।"**

७८० प्रश्न - चार प्रकार के जीव बताये हैं। जैसे - प्राण, भूत, जीव और सत्त्व। प्रश्न यह है कि प्राणादि नाम किस अपेक्षा से है ? प्राण तो सभी जीवों में है, परन्तु बेइन्द्रिय, तेइंद्रिय और

चोइन्द्रिय को ही 'प्राण' कह कर बतलाया, पचेन्द्रिय को 'जीव' कह कर वतलाया, चार स्थावर को 'सत्त्व' कहा और वनस्पति को 'भूत' कहा, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - सामान्य प्रकार से तो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, इन चारों मे से प्रत्येक विशेषण सभी संसारी जीवो के लिये लागू होते है और विशेष प्रकार से भिन्न-भिन्न शब्द भिन्न जीवों के संकेत वाचक भी हैं। अत: उपरोक्त चारो शब्द कही एकार्थक और कही भिन्नार्थरूप है।

७८१ प्रश्न - आचारांग में १८ दिशा और १८ भावदिशा बतलाई। जिनमे भावदिशा १८ में-४ स्थावर ४ दिशा, वनस्पति चार तरह की बताई-बीज, पेड़, पत्ता और फल। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोरन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, ये चार तथा चार तरह के मनुष्य, एक ऊँची-दिशा, एक नीची-दिशा, इस प्रकार कुल १८ दिशा। जिनमे मनुष्य कर्मभूमि, अकर्मभूमि सम्मूर्च्छिम और छप्पन अंतरद्वीप। प्रश्न यह है कि छप्पन अंतर्द्वीप के मनुष्यों को अलग क्यों लिया ? ९९ तरह के देवता और सात तरह के नारकी मे भावदिशा एक-एक ही बताई और मनुष्य के ४, वनस्पति के ४ कर दिये, सो इसका क्या कारण ?-देवता तथा नारकी की दो ही दिशा बताई, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - प्रज्ञापक (कथन करने वाले) की अपेक्षा से जो १८ दिशाएँ है, उनमे ऊँची-नीची दिशा एक-एक ही बताई है। सातो ही नरक नीचे होने से सभी नरक को एक नीची भावदिशा मे माना है। देव नीचे भी है और ऊपर भी, परन्तु ऊपर अधिक है, अत: सभी देवो को एक ऊँची भाव-दिशा मे माना है। पृथ्वीकायादि की कायस्थिति, नारक और देवो की तरह सम्मिलित नहीं है,

भिन्न-भिन्न है। अतः चारों (पृथ्वी आदि ४) की चार भाव-दिशाएँ मानी है। वनस्पति के जीव, कायस्थिति और प्रकार (भेद) अधिक होने से इसकी चार (अग्रबीज, मूलबीज, स्कंधबीज और पर्वबीज) भाव-दिशायें मानी हैं। बेइन्द्रिय आदि चारों तिर्यचों की कायस्थिति भिन्न-भिन्न होने से चारों की चार भाव-दिशायें गिनी है। मनुष्यों में स्वभाव, दृष्टि, गतागत आदि की भिन्नता से इनकी भी चार भाव-दिशायें कही हैं।

७८२ प्रश्न - बरसात का पानी जब तक पृथ्वी पर नहीं पड़े, तब तक अचित्त होने की मान्यता सुनी है, तो वह पानी सचित्त है या अचित्त ? अगर अचित्त है, तो क्या कारण ?

उत्तर - देवकृत वर्षा की बात को छोड़ कर प्राकृतिक वर्षा का पानी पृथ्वी पर गिरने से पहले भी सचित्त ही होता है।

७८३ प्रश्न - पंखे आदि की हवा अचित्त है। बाद में सचित्त मानी जाती है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर - पंखे आदि की हवा प्रारंभ से अचित्त होती है और वह सचित्त का घात करती है। बाद में वह सचित्त बन जाती है। गर्म-जल, अचित्त मिट्टी आदि की तरह वह अचित्त हवा भी कालांतर में सचित्त बन जाती है। उसका ऐसा ही स्वभाव है।

७८४ प्रश्न - सामायिक में १४ नियम धारण कर सकता है या नहीं ? यानी सचित्तादि का जैसे ५ उपरान्त त्याग आदि कर सकता है ?

उत्तर - सामायिक में १४ नियम, सावद्य भाषा टाल कर (जैसे इतने द्रव्यादि उपरांत त्याग, इस प्रकार) धारण कर सकते हैं।

७८५ प्रश्न - व्याख्यान के समय जनता के सामने लोच किया जाना क्या उचित है ?

उत्तर - शांति से एकांत मे बैठ कर लोच करते हुए यदि कोई गृहस्थ अनायास सहज में आ जावे और उसकी दृष्टि पड़ जावे, तो बात निराली, परन्तु चालू व्याख्यान मे जाकर तथा जनता को सूचित करके आडम्बर से लोच करना ठीक नहीं है।

७८६ प्रश्न - दूध विगय का त्याग वाला क्या रबड़ी, कलाकंद खा सकता है ?

उत्तर - दूध विगय का त्यागी, अपने नियमानुसार रबड़ी, कलाकद नहीं खा सकता है अर्थात् खाना नही कल्पता है।

७८७ प्रश्न - निकाचित कर्म भी क्या बिना भुगते छूट जाते हं ? शास्त्रों में दीर्घ-काल की स्थिति और तीव्र अनुभाग को थोडे काल की स्थिति और मन्दानुभाग करने का लिखा है, वह निकाचित कर्म की अपेक्षा से है, या निधत्त की अपेक्षा से ? क्या निकाचित के भी मन्द और गाढ़ आदि भेद होते हैं ? या निकाचित कैसा भी हो, बराबर भुगतना ही पड़ता है ?

उत्तर - स्थिति और अनुभाग की घटावढ़ी निधत्त कर्म की अपेक्षा से है। निकाचित कर्म मे स्थिति और अनुभाग की घटा-बढी नहीं होती। भगवती सूत्र श. १ उ. १ की टीका से यह स्पष्ट है।

७८८ प्रश्न - बम्बई में श्रीसुशीलकुमार जी म सा. ने कहा कि जो लोग श्री सीमंधर स्वामीजी महाराज की आज्ञा लेते है, वह गलत है। श्री महावीरस्वामी जी की ही आज्ञा लेनी चाहिए, क्योकि शासन उन्ही का है। क्या यह ठीक है ?

उत्तर - संवत् २०१० में जोधपुर के संयुक्त चातुर्मास मे भी यह प्रश्न निकला था। वहाँ भी उसका सारांश यही था कि जिसका शासन हो उसी की आज्ञा लेना। अत्र विराजित वड़े गुरु महाराज साहव श्री रत्नचन्द्र जी म. सा की भी यही धारणा थी।

****

वैसे तो श्री सीमंधर स्वामी जी की ही आज्ञा लेने की प्रथा विशेषरूप से पाई जाती है। अरिहंत पद को नमस्कार मंत्र में प्रथम नमस्कार किया जाता है। अतः 'श्री सीमंधरस्वामी की आज्ञा लेना गलत है'-ऐसा तो नहीं मानना चाहिये।

शासनपति तो सिद्ध हो गये हैं और अभी तीर्थंकर श्री सीमंधरस्वामी आदि ही हैं। एक तीर्थंकर की आज्ञा का आराधक सभी तीर्थंकरों की आज्ञा का आराधक होता है। सभी तीर्थंकरों का मत समान ही है। अतः उनकी आज्ञा लेने को गलत कहना, ठीक नहीं है।

प्रतिक्रमण की आज्ञा में-'**इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं**' आदि पद से प्रयुक्त '**भंते**' शब्द अनेक अर्थ वाला है। इस शब्द में शासनपति, वर्त्तमान अरिहंत तथा गुरु आदि का समावेश हो सकता है। अतः श्री सीमंधरस्वामी की आज्ञा का निषेध करना भी ठीक नही हैं।

७८९ प्रश्न - बारह व्रतधारी श्रावक, रात्रि में भी कभी भोजन कर लेवे, तो कौनसा व्रत खण्डित होता है ?

उत्तर - रात्रि-भोजन का त्याग, श्रावक के ७ वें व्रत में है। कोई श्रावक रात्रि-भोजन के त्याग का भंग कर दे, तो उसका ७ वाँ व्रत खण्डित होता है।

७९० प्रश्न - एक आदमी को प्रतिदिन के लिये ६॥ से ७॥ बजे तक सामायिक का नियम है। नहीं करे, तो उस रोज उपवास करना चाहिए। उस प्रकार का नियम लिया है। वह व्यक्ति गाड़ी, मोटर, जहाज मे ७, ८ रोज की मुसाफिरी करे, तो सवारी में सामायिक कर सकता है या नहीं ? यदि नहीं करता है तो उसका नियम-भंग होता है, या नही ?

उत्तर - गाड़ी, मोटर, जहाज में सामायिक नहीं कर सकते, परन्तु आगार से संवर करके कम-से-कम नियम जितना समय तो उसको धर्मकार्य में बिताना ही चाहिये और कारणविशेष से बाकी रही हुई सामायिकों की पूर्ति आगे-पीछे कर देना चाहिए। यदि नियम लेते समय आगार न रखा हो, तो जैसा नियम लिया हो, वैसा ही करना चाहिये। नियम लेते समय आगार रखे जाते हैं।

७९१ प्रश्न - पक्खी और चौमासी, पूनम को मनानी चाहिये। यदि श्रावक-वर्ग चतुर्दशी को उपवास-पौषध आदि करे, पूनम को पारणा करे, व्यापार करे, तो ऐसा शास्त्र सम्मत है, या नहीं ? तथा वह व्यक्ति अरिहंत-मत का आराधक है, या विराधक ?

उत्तर - आठम, चौदस, अमावस और पूनम, इस प्रकार महीने में ६ पौषध श्रावक के बतलाये हैं। अतः चौदस और पन्नरस दोनों दिन दया, उपवास का पौषध करे। पक्खी का पौषध दशाश्रुतस्कंध के ५ वें अध्ययन में बताया है। दोनों दिन व दोनों में किसी एक दिन पौषध करने वाला भी आराधक हो सकता है।

७९२ प्रश्न - जिसके नरकायु का बन्ध हो गया, उस जीव को तपश्चरण होता है,या नहीं ? कोई कहते है कि जिसके नरकायु का बन्ध हो गया, उससे तपस्या नहीं होती। क्या यह बात सत्य है ?

उत्तर - नरकायु-बंध के बाद जीव सातवे गुणस्थान तक जा सकता है। यह बात छठें कर्मग्रन्थ की ११-३९ और ४२ वीं गाथा से स्पष्ट है। अतः जो जीव ७ वें गुणस्थान में भी जा सकता है, फिर उसे तप करने मे तो बाधा हो ही कैसे सकती है ? अतएव नरकायु बंध के बाद भी तप कर सकता है।

७९३ प्रश्न - मिथ्यात्वी की करणी भगवान् की आज्ञा में है, या नही ?

उत्तर - मिथ्यात्वी की करणी भगवान् की आज्ञा में नहीं है।

७९४ प्रश्न - मिथ्यात्वी, ग्रैवेयक तक जाता है, सो आराधक हो कर जाता है, या विराधक ?

उत्तर - तीन प्रकार की (ज्ञान, दर्शन और चारित्र की) आराधना सूत्र में बताई है। बिना समकित के कोई भी जीव, ज्ञानादि का वास्तविक आराधक नहीं हो सकता। मिथ्यात्वी जो नवग्रैवेयक में जाता है, वह बाह्य-क्रिया को बराबर पालन करके व्यवहार-दृष्टि से आराधक दिखाई देते हुए भी निश्चयनय से उसमें समकित और ज्ञान न होने से वह चारित्र का आराधक भी नहीं हो सकता। जैसे बिना पढ़ाई किये वास्तविक पास नहीं हो सकता, वैसे ही बिना ज्ञानादि के जीव आराधक नहीं हो सकता। अर्थात् जिसमें ज्ञानादि है ही नहीं, तो वह उसका आराधक होवे ही कैसे ?

७९५ प्रश्न - जो आराधक हैं, वे सभी भगवान् की आज्ञा में हैं क्या ?

उत्तर - जीव ज्ञानादि तीनों में से जिसका आराधक होता है, उस आराधना की अपेक्षा से वह भगवान् की आज्ञा में है।

७९६ प्रश्न - अभव्य जीव आराधक हो सकता है ?

उत्तर - अभव्य और मिथ्यात्वी जीव, वास्तव में आराधक नहीं हो सकते।

७९७ प्रश्न - तिर्यंच पंचेन्द्रिय के और मनुष्य के लगातार अधिक से अधिक जो आठ भव करते हैं, सो क्या वे आठवां भव युगलिये का ही करते हैं ?

उत्तर - तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य लगातार अधिक से अधिक आठ भव कर सकता है उसमें आठवां भव युगलिक का ही करता है। ऐसा एकांत नियम नहीं है।

७९८ प्रश्न - युगलिये देव-गति में ही जाते हैं। उनको वहाँ आयु कितनी मिलती है ?

उत्तर - युगलियों की यहाँ जितनी आयु होती है, उससे कम तथा बराबर आयु देवगति में मिल सकती है, उससे अधिक नहीं।

७९९ प्रश्न - जो असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय, देवगति में उत्पन्न होता है, वहाँ उसको उत्कृष्ट आयु कितनी मिलती है ?

उत्तर - असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय को देवगति में उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग की प्राप्त होती है। वह पल्योपम का असंख्यातवां भाग "पूर्व-कोटी (करोड़ पूर्व) प्रमाण" ही समझना चाहिये, अधिक नहीं।

८०० प्रश्न - कई महात्माओं का फरमाना है कि सुन्दरी महासती की दीक्षा भरत महाराज द्वारा खंड साधने के बाद हुई और कुछ का मत है कि पहिले। इन दोनों में से कौनसी मान्यता शास्त्र-संगत है ?

उत्तर - **"बंभी सुन्दरी पामोक्खाओ"** - इस 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' के पाठ में तो सुन्दरी महासती को भी प्रमुख (मुख्य) महासती बताई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य सब सतियों से इन (ब्राह्मी और सुन्दरी) की दीक्षा पहिले हुई थी तथा कथाकार जो सुन्दरी का दीक्षा समय भरत महाराज के खंड साधने के बाद का बताते हैं, वह इस पाठ से ठीक प्रतीत नहीं होता, परन्तु पहिले होना युक्ति संगत है।

८०१ प्रश्न - "चौसठ मण को मोती लटके, करणी के प्रमाणे" - इस वाक्य से जो सर्वार्थसिद्ध विमान में ६४ मन वजन का मोती बताते हैं, वह कहाँ और किस प्रकार बताया है ?

उत्तर - सर्वार्थसिद्ध महाविमान के मोतियों का वर्णन, 'भुवनभानु केवली के चरित्र' की फुटकर गाथाओं में है। उसका भाव इस प्रकार हैं - ऊपरी भाग के मध्यभाग में एक मोती ६४ मन का। उसके चारों ओर वलय रूप ४ मोती बत्तीस-बत्तीस मन के। दूसरे वलय में ८ मोती सोलह-सोलह मन के। तीसरे वलय में १६ मोती आठ-आठ मन के। चौथे वलय में ३२ मोती चार-चार मन के। पांचवें वलय में ६४ मोती दो-दो मन के और छठे वलय में १२८ मोती एक-एक मन के हैं। इस प्रकार कुल मोती २५३ बतलाये हैं। यह बात कथा की है। आगम में इस प्रकार का वर्णन उपलब्ध नहीं होता है।

विशेष प्रश्नोत्तर

(पूना निवासी सुश्रावक श्रीमान् सेठ घोंडीरामजी दलीचन्द जी खिंवसरा द्वारा दिनांक ३१-८-६४ का एक प्रश्न-पत्र, कई मुनिराजो की सेवा मे गया था और मेरे पास भी आया था। मैं उसमे के सभी प्रश्नो के उत्तर देने मे अपने को असमर्थ पाता था। उस समय बहुश्रुत श्रमण-श्रेप्ठ जोधपुर मे चातुर्मास काल व्यतीत कर रहे थे। मैं भी दर्शनार्थ गया था। दोपहर बाद की चर्चा के समय मैंने वे प्रश्न उपस्थित किये, तब सुश्रावक श्रीमान् धींगड़मल जी सा गिड़िया ने कहा - 'ये प्रश्न यहाँ भी आ चुके हं और इनके उत्तर भेजे जा चुके हैं। मॅने इनकी नकल रखी है।' मने उनसे उत्तरपत्र ले लिया था। वह यहॉ उपस्थित कर रहा हूँ। इनसे पाठको को निश्चय के एकान्तवाद की कूटजाल से बचने मे सहायता मिलगी-डोशी।)

८०२ प्रश्न - लोकालोक में स्थित प्रत्येक द्रव्य में निरन्तर उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य होता रहता है। क्या किसी भी द्रव्य में इसके अतिरिक्त चौथा कार्य भी हो सकता है या नहीं ?

उत्तर - लोकालोक में स्थित प्रत्येक द्रव्य सर्वदा काल ध्रुव है तथा उनमें प्रतिक्षण निरन्तर पूर्व-पर्याय का व्यय और अनन्तर पर्याय का उत्पाद होता रहता है।

प्रत्येक द्रव्य में जो भी कुछ होता रहता है, वे सभी कार्य, इन तीन कार्यों में ही समाविष्ट हो जाते हैं। किसी भी द्रव्य में ऐसा कोई भी कार्य नहीं; जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य-इन तीनों कार्यों में समाविष्ट न होकर पृथक् रह जाता हो।

८०३ प्रश्न - एक द्रव्य अपनी उत्पाद-व्यय रूप क्रिया को करता हुआ, पर-द्रव्य की उत्पाद-व्यय रूप क्रिया कर सकता है या नहीं ? यदि वह कर सकता है, तो वह क्रिया स्वद्रव्य से भिन्न होगी या अभिन्न ?

उत्तर - एक जीव-द्रव्य अपने पर्यायो की उत्पादव्ययरूप क्रिया करता हुआ पर-द्रव्य की पर्यायो की उत्पादव्ययरूप क्रिया भी कर सकता है।

एक जीव-द्रव्य अपने पर्यायों की उत्पाद-व्ययरूप क्रिया को उपादान रूप से और मुख्यरूप से करता है, जैसे - शिष्य रूप जीव-द्रव्य, अपने अज्ञान-गुण की पर्याय का व्यय और ज्ञान गुण की पर्याय का उत्पाद, उपादान रूप से और मुख्य रूप से करता है तथा एक (जीव) द्रव्य, पर-द्रव्य की पर्यायों की उत्पादव्यय रूप क्रिया को निमित्त रूप से और गौण रूप से करता है। जैसे गुरु रूप जीव-द्रव्य, शिष्य के अज्ञान-गुण की पर्याय की व्यय रूप क्रिया और ज्ञान-गुण की पर्याय की उत्पाद रूप क्रिया निमित्त रूप से और गौण रूप से करते हैं।

एक द्रव्य जो पर-द्रव्यों के पर्यायों की उत्पाद-व्ययरूप क्रिया को निमित्त रूप से करता है, वह निमित्त रूप से की गई क्रिया स्वद्रव्य से अभिन्न होती है। जैसे गुरु, जो शिष्य के अज्ञान-गुण पर्यायों की व्यय रूप क्रिया तथा ज्ञान-गुण के पर्यायों को उत्पाद रूप क्रिया को निमित्त रूप से करते हैं। वह क्रिया उन गुरु से अभिन्न होती है।

८०४ प्रश्न - क्या कोई द्रव्य, दूसरे द्रव्य की पर्याय का संवेदन कर सकता है ? यदि कर सकता है, तो किस प्रकार से ? क्योंकि दोनों द्रव्यों की पर्यायों में अत्यंताभाव रूप धर्म-द्रव्य, क्षेत्र काल और भावरूप से विद्यमान है।

उत्तर - संवेदन दो प्रकार का होता है- १. ज्ञान रूप संवेदन और २. भोगानुभव रूप संवेदन।

एक जीव द्रव्य छहों द्रव्यों की पर्यायों का ज्ञान रूप संवेदन कर सकता है, क्योंकि जीव-द्रव्य में प्रमातृत्व गुण होने से वह सब द्रव्यों की पर्यायों को जानने की शक्ति रखता है तथा छहों द्रव्यों की पर्यायों में प्रमेयत्व गुण होने से वे सभी पर्यायें जीव-द्रव्य से जानने योग्य हैं।

भोगानुभव रूप संवेदन जीव-द्रव्य, अजीव-द्रव्यों की पर्यायों का संवेदन कर सकता है, परन्तु अजीव-द्रव्य किसी द्रव्य की पर्यायों का संवेदन नहीं कर सकता, क्योंकि जीव चैतन्य युक्त होने से उसे ही परिभोक्ता माना है तथा अजीव-द्रव्य चैतन्यरहित होने से उन्हें मात्र परिभोग्य ही माना है।

जिस प्रकार दुर्बल और पंगु पुरुष, चलने के लिए लकड़ी का उपभोग करता है, वैसे ही जीव-द्रव्य, इन्द्रिय आदि रूप अजीव-द्रव्यों का ज्ञान आदि के लिए उपभोग करता है।

'अत्यन्ताभाव' का अर्थ मात्र इतना ही है कि एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य के रूप में, एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य के गुण के रूप में तथा एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय रूप में त्रिकाल में भी नहीं बदलती। अतः यदि जीव-द्रव्य, अजीव द्रव्य का भोगानुभव करे, तो इससे एक द्रव्य की पर्यायों में दूसरे द्रव्य की पर्यायों का अत्यन्ताभाव है। इस सिद्धान्त में कोई बाधा नहीं

आती, क्योंकि-जीव-द्रव्य, अजीव-द्रव्य का उपभोग करता है, तो उससे न तो जीव-द्रव्य में अजीव-द्रव्यों की पर्यायों का परिणमन होता है और न अजीव द्रव्य में जीव द्रव्य की पर्यायों का परिणमन होता है।

८०५ प्रश्न - जिन दो द्रव्यों में पर-चतुष्टय धर्म नास्ति स्वरूप से विद्यमान है, उन दो द्रव्यों में कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध बन सकता है या नहीं ? यदि बन सकता है, तो कैसे और नहीं बन सकता है तो कैसे ?

उत्तर - जिन दो द्रव्यों में पर-चतुष्टय धर्म नास्ति स्वरूप से विद्यमान है, उन दो द्रव्यों में कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध बन सकता है।

उसमें जीव-द्रव्य कर्त्ता रहेगा और अजीव-द्रव्य कर्म रहेगा।

कर्त्ता और कर्म का सम्बन्ध निमित्त रूप से बनता है, उपादान रूप से नहीं।

जैसे-जीव-द्रव्य कर्त्ता है और अजीव (कर्म-वर्गणा के पुद्गल) कर्म है। क्योंकि-जीव उन्हें कषाय एवं योग से कर्म रूप में परिणत करता है तथा वे कर्मवर्गणा के पुद्गल कर्म रूप से परिणत होते हैं।

जीव और कर्मवर्गणा के पुद्गलों का ऐसा कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध निमित्त रूप से है, उपादान रूप से नहीं।

निमित्त रूप से संबंध इसलिये कि जब तक जीव कषाय और योग प्रवर्तन करता है, तभी कर्म-वर्गणा के पुद्गल कर्म रूप से परिणत होते हैं, अन्यदा अयोगी अवस्था मे नहीं तथा जब तक कर्म-पुद्गल कर्मरूप में परिणित होते हैं, तब तक जीव कषाय-योग युक्त होता ही है। अन्यदा अयोगी अवस्था में नहीं।

उपादान रूप से सम्बन्ध इसलिये नहीं है कि - जीव जब

कषाय और योग प्रवर्तन करता है तब जीव ही कर्त्ता रूप में परिणत होता है, परन्तु कर्मवर्गणा के पुद्गल, कर्त्ता रूप में परिणत नहीं होते। इसी प्रकार जब कर्मवर्गणा के पुद्गल, कर्मरूप में परिणत होते हैं, तब वे ही कर्मरूप में परिणत होते हैं, परन्तु जीव कर्म रूप में परिणित नहीं होता है।

८०६ प्रश्न - द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से 'आत्म-द्रव्य शुद्ध है।' वस्तुतः इस वाक्य का क्या अर्थ किया जाय ?

उत्तर - द्रव्यार्थिक नय कई प्रकार के होते हैं, जो द्रव्यार्थिक नय, पर्याय-निरपेक्ष एवं अन्य द्रव्य-निरपेक्ष, मात्र शुद्ध द्रव्य की ही विवक्षा करता है या द्रव्य की मात्र शुद्ध पर्याय की ही गौण रूप से विवक्षा करता है, उस द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ही आत्मा शुद्ध द्रव्य है, जैसे - यदि आत्म-द्रव्य को पर्याय-निरपेक्ष और कर्म-द्रव्य निरपेक्ष देखा जाय या आत्म-द्रव्य की मात्र क्षायिक और पारिणामिक पर्यायों को ही गौण रूप से देखा जाय, तो आत्मा शुद्ध द्रव्य है।

परन्तु जो द्रव्यार्थिक नय, एक द्रव्य की अन्य द्रव्य-सापेक्ष विवक्षा करता है, अथवा द्रव्य की अशुद्ध पर्यायों की गौण रूप से विवक्षा करता है, उस द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा आत्मा अशुद्ध द्रव्य है। जैसे-यदि आत्म-द्रव्य को कर्म-द्रव्य सापेक्ष देखा जाय और आत्म-द्रव्य की उदय आदि पर्यायों को गौण रूप से देखा जाय, तो आत्मा अशुद्ध द्रव्य है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा आत्म-द्रव्य कथंचित् शुद्ध भी है तथा कथंचित् अशुद्ध भी है।

८०७ प्रश्न - प्रत्येक द्रव्य मे स्थित प्रत्येक गुण की प्रत्येक समय मे एक-एक पर्याय उत्पन्न होती है, प्रति समय उत्पन्न होने

वाली उस पर्याय को ही 'अशुद्ध' कहना चाहिये या भूत और भविष्य में विलय हो चुकी या अनुत्पन्न पर्यायो को भी अशुद्ध मानना चाहिए ?

उत्तर - द्रव्य में स्थित गुणों की भूत भावी तथा वर्तमान तीनों काल की पर्यायें कदाचित् शुद्ध भी हो सकती है और कदाचित् अशुद्ध भी हो सकती है। जैसे जीव-द्रव्य की सिद्ध अवस्थागत भूत, वर्त्तमान एवं भावी-तीनों काल की पर्याये शुद्ध होती हैं।

अथवा जैसे पुद्गल-द्रव्य की परमाणु अवस्थागत भूत भविष्य एवं वर्तमान-तीनों काल की पर्यायें शुद्ध होती हैं तथा स्कंध अवस्थागत भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान-तीनो काल की पर्यायें अशुद्ध होती हैं।

८०८ प्रश्न - प्रत्येक पर्याय, स्वकाल के प्राप्त होने पर उत्पन्न होती है, या उसके पूर्व और पीछे भी उत्पन्न हो सकती है ? यदि वह स्वकाल के पूर्व या पश्चात् उत्पन्न होगी, तो द्रव्य का स्वचतुष्ट्य कैसे बनेगा ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय स्वकाल के प्राप्त होने पर ही उत्पन्न होती है, पहले या पीछे नहीं।

किन्तु यहाँ ये दो बातें ध्यान मे रखने योग्य है - १. पहली यह कि जीव-द्रव्य की जो पर्याये उत्पन्न होती है, वे पर्याये यद्यपि स्वकाल प्राप्त होने पर ही उत्पन्न होती हैं, परन्तु वे पुरुषार्थ सापेक्ष उत्पन्न होती है, पुरुषार्थ-निरपेक्ष उत्पन्न नहीं होती। जब जीव का पुरुषार्थ शुभ होता है, तब जीव की पर्याये शुभ होती हैं तथा जब जीव का पुरुषार्थ अशुभ होता है, तब जीव की पर्यायें अशुभ होती है।

२ तथा पुद्गल द्रव्य की कर्म, शरीर, इन्द्रिय आदि पर्यायें

भी यद्यपि स्वकाल के प्राप्त होने पर उत्पन्न होती हैं, परन्तु वे पर्यायें जीव के विशिष्ट प्रयोग से सापेक्ष उत्पन्न होती हैं। जीव के विशिष्ट प्रयोग से निरपेक्ष उत्पन्न नहीं होती हैं।

८०९ प्रश्न - एक जीव के एक समय में एक गुण की एक पर्याय शुद्ध, अशुद्ध या शुद्धाशुद्ध रह सकती है ?

उत्तर - एक जीव के एक समय में एक गुण की एक पर्याय या तो शुद्ध रहेगी या अशुद्ध रहेगी, या शुद्धाशुद्ध रहेगी। जैसे सिद्ध के सम्यक्त्व गुण की प्रत्येक समयवर्ती प्रत्येक पर्याय शुद्ध रहेगी। मिथ्यात्वी के सम्यक्त्व गुण की मिथ्यात्व अवस्थागत प्रत्येक समयवर्ती प्रत्येक पर्याय अशुद्ध रहेगी तथा मिश्रदृष्टि के सम्यक्त्व गुण की मिश्र गुणस्थानगत प्रत्येक समयवर्ती प्रत्येक पर्याय शुद्धाशुद्ध रहेगी।

८१० प्रश्न - औदयिक आदि पांच भाव, जीव के असाधारण भाव हैं। उक्त पांच भावों में से कौन-कौन से भाव ऐसे हैं, जिनके सहारे या आलम्बन से जीव, सम्यग्-दर्शन को प्रकट कर सकता है और उक्त पांच भावों में से कितने भाव, पर्याय रूप हैं ?

उत्तर - सम्यग्-दर्शन को प्रकट करने में जीव के पांचों भाव कारणभूत बनते हैं। पांचों भावों में दर्शन-मोहनीय का क्षयोपशम, क्षय और उपशम-ये तीन भाव सम्यग्-दर्शन की प्रकटता के लिए उपादान रूप से कारण बनते हैं। क्योंकि सम्यग्-दर्शन इन तीन भाव स्वरूप ही है तथा चारित्र-मोहनीय (अनंतानुबंधी) आदि का क्षयोपशम और संज्ञी-पंचेन्द्रिय आदि का उदय, ये दोनों भाव, सम्यग्-दर्शन के लिए निमित्त रूप में कारण बनते हैं। क्योंकि इनकी विद्यमानता में ही सम्यग्-दर्शन प्रकट होता है एवं पारिणामिक भाव में सम्यग्-दर्शन परिणाम

उपादान रूप से कारण है एवं अन्य चारित्र परिणाम इन्द्रिय परिणाम आदि निमित्त रूप से कारण हैं।

८११ प्रश्न - क्या औदयिक भाव, आत्मा को पाप, पुण्य या धर्म करा सकता है ?

उत्तर - औदयिक भाव आत्मा के लिए पुण्य, पाप और धर्म तीनों में कारणभूत बन सकता है। जैसे नामकर्म के उदय से प्राप्त मनुष्यगति, जीव के लिए नरकादि गति योग्य पाप-बंध की कारण भी बन सकती है। स्वर्गादि गति योग्य पुण्य-बंध की कारण भी बन सकती है और सिद्धगति योग्य धर्म की कारण भी बन सकती है।

वैसे पाप पुण्य अथवा धर्म को आत्मा ही अपने शुभाशुभ पुरुपार्थ से करती है।

८१२ प्रश्न - सात नय सम्यग्ज्ञानमय है या मिथ्याज्ञानमय। तथा इनको पॉच ज्ञान में से कौन-से ज्ञान में स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर - सातों ही नय सम्यग्ज्ञानमय हैं तथा सातों ही नयाभास-दुर्नय मिथ्याज्ञानमय है। नयों का समावेश श्रुतज्ञान मे होता है।

८१३ प्रश्न - मिथ्याज्ञानपूर्वक की जाने वाली साध्वाचार की तथा श्रावकाचार की शुभ-क्रिया को सम्यग् व्यवहारनय, मोक्षमार्ग में स्वीकार करता है या नहीं ?

उत्तर - जिस जीव का मिथ्याज्ञान व्यवहार मे प्रकट है, उस जीव की मिथ्याज्ञानपूर्वक की जाने वाली साध्वाचार या श्रावकाचार की शुभ-क्रिया को सम्यग्व्यवहारनय मोक्षमार्ग में स्वीकार नही करता। परन्तु जिस जीव का मिथ्याज्ञान व्यवहार गम्य न हो कर

८१८ प्रश्न - जिस घड़ी में वायुकाय की अयतना होती है, क्या साधु-साध्वी, उस घड़ी से समय निर्धारण कर सकते हैं, या नहीं ?

उत्तर - साधु को समय-निर्धारण करने के लिए घड़ी रखना, रखाना या अनुमोदन करना, साध्वाचार विरुद्ध है। घड़ी में चाबी लगाने की प्रेरणा या संकेत करना, घड़ी रखने की अनुमोदना के अन्तर्गत है। अतएव ये कार्य भी साध्वाचार के विरुद्ध है। परन्तु किसी ने साधु से इतर अपने या पराये किसी के लिए घड़ी का प्रयोग किया हो, ऐसी उस घड़ी निर्दिष्ट समय का साधु उपयोग करे, तो वह कल्पविरुद्ध नहीं है। जैसे - ज्योतिष्क चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारक आदि के चार (गति) मे वायुकाय की अयतना तो होती है, परन्तु वे साधु के लिए न होने के कारण उनके द्वारा समय निर्धारण करना साधु के लिए शास्त्रों में विहित है।

८१९ प्रश्न - भगवती सूत्र शतक १० उद्देशक ५ में "पभू णं भंते....पाठ में प्रयुक्त 'जिण सकहाओ' शब्द के तीन अर्थ सुनने देखने में आते है, १. अस्थि २. दाढा-डाढ़ ३. जिनकथा, परन्तु ये तीनों अर्थ जड़-स्थापना के प्रतीक है, अस्तु उक्त पाठ के साथ "तिक्खुत्तो" का पूरा पाठ लगा कर सम्यग्दृष्टि देवों के लिए 'जिणस्स कहाओ' को वंदनीय और पूजनीय बताया है, इससे गुण-शून्य स्थापना निक्षेप वंदनीय एवं पूजनीय सिद्ध होता है। अतः स्थानकवासी समाज को यह पाठ मान्य है या नहीं ?

उत्तर - आपने जो पाठ लिखा है, उसमें 'जिणस्स कहाओ' लिखा है, वह अशुद्ध प्रतीत होता है। उस स्थान पर 'जिण-सकहाओ' - ऐसा पाठ है। अतएव यहाँ जिन-कथा अर्थ तो होता ही नहीं।

इसलिए अब जिन की डाढा या जिन की 'अस्थि' अर्थ को लेकर विचार करना रहा। इसका उत्तर यह है कि -

चंद्र सूर्य रूप इन्द्र, प्राणिश· असख्य है। तथा विजयादि देवता भी असंख्य है। वे सभी तीर्थकर निर्वाण के समय इस लोक मे आते भी नहीं है। तथा जो आते है, उन सब को जिन की डाढ़ा या अस्थि मिलती भी नहीं है। अत: सभी इन्द्रो के और देवो के माणवक-स्तम्भो मे वास्तविक '**जिण-सकहाओ**' नही होती, किंतु उनके समान कोई अन्य पुद्गल विशेप होते है।

उन '**जिण-सकहाओ**' को भी केवल देव-देवियॉ ही अपने जीताचार के कारण पूज्य मानते है, परन्तु चतुर्विध संघ उन्हे पूज्य नही मानता। जैसे - तीर्थकर निर्वाण के पश्चात् रहे हुए तीर्थकर के निर्जीव शरीर को देव-देवियाँ ही वन्दन-नमस्कार करते है। चतुर्विध संघ उसे वन्दन-नमस्कार नही करता।

देव-देवियॉ भी जो '**जिण-सकहाओ**' को अर्चनीय मानते है, वह भी इहलौकिक दृष्टि से तथा जीताचार के कारण इस भव के लिए ही पूज्य मानते है। किन्तु जैसे अन्यत्र तीर्थकर के दर्शन को धार्मिक दृष्टि से पर-भव मे भी कल्याणकारी बताया गया है, वैसे ही देवता '**जिण-सकहाओ**' को धार्मिक दृष्टि से परभव के लिए कल्याणकारी मानते हो-ऐसा नही बताया है।

इस प्रकार वे '**जिण-सकहाओ**' न तो सभी वास्तविक है, न चतुर्विध संघ के लिए पूज्य हैं और न परभव के लिए कल्याणकारी हैं। इत्यादि और भी अनेक बातो को देखते हुए इस पाठ से गुण-शून्य स्थापना-निक्षेप चतुर्विध संघ के लिए वंदनीय एवं पूजनीय सिद्ध नहीं होता।

साधुमार्गी जैन समाज को ही क्या ? प्रत्येक जिनवाणी के

रसिक को, जिनवाणी पूर्णरूपेण मान्य होनी ही चाहिए। और उसका जिनवाणी के अनुकूल किया गया अर्थ ही मान्य होना चाहिए, किन्तु प्रतिकूल किया हुआ अर्थ कदापि मान्य नहीं किया जाना चाहिए।

उत्तर इस प्रकार ध्यान में आया है। विशेष ज्ञानी कहें वही प्रमाण है।

टिप्पण - ये प्रश्न अमुक साधु के थे। उनकी रुचि निश्चयवाद की ओर झुकी हुई है, कुछ विद्रोही एवं स्वच्छन्द भी है। इसका अनुभव मैंने भी दो-तीन बार किया था। बाद में तो वे गुरु से विमुख होकर पृथक् भी हो गए।

एकधारी तर्क के आधार पर ही विचारों की प्रवृत्ति करने वाले, एक ही पहिये की गाडी से महापथ को पार करने जैसी असफल चेष्टा करते हैं। वे प्रत्यक्ष का अपलाप किस प्रकार कर सकते होंगे ? वे स्वयं पर को प्रभावित करने के लिए वचन-उपदेश-वांचनादि प्रवृत्ति करते है। उन खुद को भूख-प्यास सताती है, तब वे आकुल-व्याकुल हो जाते हैं और भोजन-पानी उदरस्थ होने पर संतुष्ट हो जाते हैं। यह पर का प्रभाव प्रत्यक्ष है। पत्थर या लकड़ी की चोट खाकर आत्मा का दुःखित होना प्रत्यक्ष देखा जाता है, भंग गाँजा और मदिरा रूप जड से आत्मा पर नशा चढ़ना तथा क्लोरोफार्म से बेहोशी प्रत्यक्ष देखी जाती है। यह सब जानते-देखते हुए भी, एकातवाद के जाल मे भटकते रहना-कोरी एकधारी तर्क है और असम्यक् है। सत्य यह है कि संयोग-सम्बन्ध में रहे हुए जीव अजीव, एक दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं-इससे इन्कार करना मिथ्यात्व है।

२. अस्थि अथवा जड-पूजा तो जिनागम के किसी भी विधान मे नहीं है, न भगवतीसूत्र के उक्त स्थल का ऐसा अभिप्राय है। उसे साधु या श्रावक के लिए वैधानिक मानना भूल है-डोशी।

॥ समर्थ समाधान भाग १ समाप्त ।